समयसार

मंगल प्रसंग

मांगलिक प्रणय प्रसंग

के पावन क्षणों में -

– ओम कोठारी निकुंज

परम पूज्य १०८ आचार्य श्री नि[illegible]नन्द जी

महाराज के आशीर्वाद एवम् प्रेरणा से

ओम कोठारी फाउन्डेशन की मुख्य ट्रस्टी

श्रीमती लाड् देवी धर्मपत्नी

श्री त्रिलोक चन्द्र कोठारी

सर्मर्पित, यशस्वी महामन्त्री

श्री भारत वर्षीय दिगम्बर जैन

महासभा के सौजन्य से

महासभा शताब्दि - महोत्सव की प्रथम बैठक

के सुअवसर पर सादर सप्रेम भेंट।

कुन्दकुन्द आइरिय

समयसार

श्री कुन्दकुन्द भारती

समय-प्रमुख आचार्य विद्यानन्द मुनि
सपादन बलभद्र जैन

आवरण (मूल सज्जा) कु मधु जैन, बड़ौत
आवरण (सस्कार) टाइम्स ऑफ इण्डिया

आवरण (रग-संयोजन)
नो कर्म (स्वर्णाभ)
द्रव्य कर्म (नीलाभ)
भाव कर्म (अग्न्याभ)
शुद्ध स्व-रूप

प्रथम आवृत्ति, मई १९७८, द्वितीय आवृत्ति, १९९४
विद्यार्थी संस्करण

मूल्य रु १५/-

प्रकाशन ·
श्री कुन्दकुन्द भारती,
18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली - 110067

समयसार आचार्य कुन्दकुन्द
Samayasara Acharya Kundkund
Religion 1978 1994

मुद्रण
विकल्प प्रिटर्स, 29 राजपुर रोड, देहरादून

मुन्नुडि*

आचार्य कुन्दकुन्द और उनका समय

मगल भगवदो वीरो, मंगलं गोदमो गणी।
मंगलं कोण्डकुदाइ, जेण्ह धम्मोत्थु मंगल[1] ॥

आचार्य उच्चकोटि का असामान्य साधक होता है। उसे तीर्थंकर के सदृश माना गया है; क्योंकि तीर्थंकर के अभाव में वह धर्म-तीर्थ का उपबृ हण करता है।

प्रात स्मरणीय आचार्य कुन्दकुन्द आत्मरसानुभवी महर्षि थे। जैन आचार्य-परम्परा मे उनका स्थान शीर्षस्थ है। अनेक आचार्यों ने उनका नाम-स्मरण अत्यन्त आदर के साथ किया है। प्रत्येक शुभ कार्य मे जिन चार मगलो का नाम-स्मरण किया जाता है, उनमें आचार्य का नाम भी सम्मिलित है। उत्तरकालीन प्रायश सभी आचार्यों ने अपने आपको कुन्दकुन्दाचार्य के 'कुन्दकुन्दान्वय'[2] बताते हुए गौरव का अनुभव किया है। श्रमण सस्कृति के समुन्नयन मे उनका योगदान अविस्मरणीय है।

वे दीर्घ तपस्वी, अनेक ऋद्धियो के धारक और अतिशय ज्ञान-सम्पन्न श्रमण थे। उनका प्रामाणिक एव विस्तृत जीवन-चरित्र इतिवृत्त उपलब्ध नही है, किन्तु प्रशस्तियो, पट्टावलियो, शिलालेखों तथा दर्शनसार आदि ग्रन्थों के आधार पर कुछ तथ्य सचय किये जा सकत है। इनके अनुसार उनका जन्म-स्थान आन्ध्र प्रान्त मे कुन्दकुन्दपुरम्[3] मे शार्वरी[4] नाम सवत्सर माघ शुक्ला ५ ईसा पूर्व १०८ मे हुआ था। उन्होने ११ वर्ष की अल्पायु मे ही श्रमण मुनि-दीक्षा ली तथा ३३ वर्ष तक मुनिपद पर रह कर ज्ञान और चारित्र की सतत साधना की। ४४ वर्ष की आयु मे (ई पू

---

[1] तीर्थंकर वर्धमान-महावीर मगल स्वरूप हैं। गणधर गौतम ऋषि (दिव्यध्वनि के सन्देश-वाहक तथा द्वादशाङ्ग आगम के रचयिता) मगलात्मक हैं। कुन्दकुन्दादि आचार्य-परम्परा (विद्यावश) मगलमय हैं। एतावता विश्व के सम्पूर्ण भव्यात्माओं को जैन धर्म मगल कारक है।

[2] वश - 'वश दो प्रकार का चलता था - विद्या और योनि सम्बन्ध से (विद्यायोनिसम्बन्धेभ्योवुञ् ४-३-७७, ऋतो विद्यायोनि सबन्धेभ्य ६-३-२३)। विद्यावश गुरु-शिष्य-परम्परा के रूप में चलता, जो योनि (पुरुवश, इक्ष्वाकुवश) सम्बन्ध के समान ही वास्तविक माना जाता था।'

[3] शिलालेख के अनुसार कोणुकुन्दे, प्रचलित नाम कोंडकुन्दी, गुण्टूर तहसील, आन्ध्र प्रदेश।

[4] ज्योतिष के प्रसिद्ध विद्वान् प बाहुबली।

* मुन्नुडि-कन्नड, पुरोवाक् (त्रिवचन)

६४) चतुर्विध (श्रमण, श्रमणा और श्रावक, श्राविका) सघ ने उन्हे आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित किया। वे ५१ वर्ष १० मास १५ दिन इस पद पर विराजमान रहे। उन्होंने ९५ वर्ष १० मास १५ दिन की दीर्घायु[५] पायी और ई पू १२ मे[६] समाधि-मरण द्वारा स्वर्गारोहण किया।

विन्ध्यगिरि के एक शिलालेख (श्रवणबेलगुल) के अनुसार उन्हे चारण ऋद्धि प्राप्त थी जिसके द्वारा वे भूमितल से चार अगुल ऊपर आकाश मे गमन[७] करते थे। उनके सम्बन्ध मे यह भी अनुश्रुति प्रचलित है कि वे विदेह क्षेत्र मे वर्तमान तीर्थंकर सीमन्धर भगवान के समवसरण में गये थे और उनकी दिव्यध्वनि का श्रवण[८] किया था। कई ग्रन्थो मे उनके पाँच नामों - 'पद्मनन्दि[९], कुन्दकुन्दाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य, गृद्धपिच्छाचार्य' का भी उल्लेख मिलता है।[१०] अभिधानराजेन्द्रकोश[११] में कुन्दकुन्दाचार्य का परिचय देते हुए विक्रम सवत् ४९ में उनकी विद्यमानता को स्वीकार किया है तथा उनके इन पाँचो नामो का भी उल्लेख किया है, केवल 'पद्मनन्दि' के स्थान पर 'मदननन्दि' नाम दिया है। 'बारस-अणुपेक्खा'[१२] मे उन्होने अपना नाम 'कुन्दकुन्द' ही दिया है। उन्होने

---

[५] दिगम्बर पट्टावलियों के आधार पर प्रो हार्नले द्वारा आचार्य श्री के जीवन का निर्णीत काल, *Indian Antiquary Vol XX XXI*, डॉ ए एन उपाध्ये, *Historical Introduction to Panchastikayasar* p 5, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

[६] डॉ राजबली पाण्डे, विक्रमादित्य, पृ १६१।

[७] विन्ध्यगिरि शिलालेख।

[८] दर्शन सार।

विदेह क्षेत्र में आचार्य कुन्दकुन्द के जाने की कथा विश्वसनीय नही जान पड़ती। आचार्य नेमिचन्द्र कृत गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा २३६ और प टोडरमल जी कृत उसकी टीका में बताया है कि किसी क्षेत्र का कोई प्रमत्तसयत मुनि औदारिक शरीर से दूसरे क्षेत्र में नहीं जा सकता। वह जिनेन्द्र अथवा जिनालय की वन्दनार्थ एव असयम दूर करने के लिए आहारक शरीर से जा सकता है। कुन्दकुन्द को आहारक शरीर प्राप्त था, इस प्रकार का कोई उल्लेख या प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

[९] जयउ सिरि पउमणदी जेण महातच्च पाहुडो सीला।
बुद्धि सिरेणुद्धरिओ समप्पिओ भव्वा लोगम्म।। - जयसेनाचार्य, तात्पर्यवृत्ति

[१०] षट्प्राभृत की श्रुतसागरी टीका।

[११] कुन्दकुन्द पु - स्वनामख्यातो दिगम्बराचार्य, भद्रबाहुर्गुप्तिगुप्तोमाघनन्दिर्जिनचन्द्र कुन्दकुन्दाचार्य इतितत्पट्टावल्या शिष्यपरम्परा अयमाचार्यो विक्रम स ४९ वर्षे वर्तमान आसीत्। अस्यैव वक्रग्रीव एलाचार्य गृद्धपिच्छ मदननन्दि दिव्यपराणि नामानि, अभिधानराजेन्द्र कोष ३-५७७

[१२] इदिणिच्छयववहार ज भणिदं कुदकुदं मुणिणाहे।
जो भावदि सुद्धमणो सो पावदि परिमणिव्वाण ।।९१।।

'बाधपाहुड'[13] में अपने आपको 'भद्रबाहु' का शिष्य बताया है तथा अन्यत्र उन्होंने 'भद्रबाहु' को अपना गमक गरु[14] माना है। इससे लगता है कि वे भद्रबाहु के साक्षात् शिष्य न होकर परम्परा-शिष्य थे।

उत्तरवर्ती अनेक आचार्यों ने कुन्दकुन्द का अनुकरण किया है। यहाँ उनमें से केवल उमास्वामी, शिवार्य, पूज्यपाद, सिद्धसेन और यतिवृषभाचार्य का नामोल्लेख करना पर्याप्त होगा। इससे यह स्वीकार करने में सहायता मिल सकेगी कि कुन्दकुन्द निश्चय ही इन आचार्यों से पूर्वोवर्त्ती थे।

आचार्य कुन्दकुन्द उपजीवि साहित्य-परम्परा लगभग दो सहस्र वर्षों तक किस प्रकार सुरक्षित और उपबृ हित[15] हुई है यह प्रत्यक्ष साक्षी है -

---

[13] ' सीसेण य भद्दबाहुस्स ॥६१॥

[14] सुदणाणि भद्दबाहू गमयगुरु भयवदो जयओ ॥६२॥
- 'मुदकेवलीभणिद ॥१॥ ममयसार

[15]

कुन्दकुन्द -	उमास्वामी - (ई की दूसरी शती के मध्य)
(क) दव्व सल्लक्खणिय उप्पादव्वयधुवत्तसजुत्त। गुणपज्जयासय वा ज त भण्णति सव्वण्हू ॥ - पचास्तिकाय १-१०	सद्द्रव्यलक्षणम् ॥- तत्त्वार्थसूत्र ५-२९ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तसत् ॥- ५-३० गुणपर्ययवद्द्रव्यम् ॥- ५-३८
देवा चउण्णिकाया ॥ - पचास्तिकाय १-१४	देवाश्चतुर्णिकाया ॥- ' ४-१
धम्मत्थि कायाभावे ॥ - नियमसार, १८५	धर्मास्तिकायाभावात् ॥- १०-८
कुन्दकुन्द -	शिवार्य - (ई की तीसरी शती)
(ख) ज अण्णाणी कम्म खेवदि भवमयसहस्सकोडीहिं। त णाणी तिहि गुत्तो खेवदि उस्सासमेत्तेण ॥ - प्रवचनमार ३-३८	ज अण्णाणी कम्म खेवदि भवसयसहस्सकोडीहि। त णाणी तिहिं गुत्तो खेवदि अतोमुहुत्तेण ॥ - भगवती आराधना २-१०
(ग) कुन्दकुन्द -	सिद्धसेन दिवाकर (ई की ५वीं शती)
जो चेव कुणदि सो चेव वेदगो जस्म एस सिद्धतो।' - समयसार १०-४०-३४७ अण्णो करेदि अण्णो परिभुजदि जस्स एस सिद्धतो। - ममयसार १०-४१-३४८	दव्वट्ठियस्स जो चेव कुणइ सो चेववेयइ णियमा। अण्णो करेइ अण्णो परिभुजइ पज्जवणस्स ॥ - सन्मति सूत्र १-५२
कुन्दकुन्द -	पूज्यपाद - (ई की ५वीं शती)
(घ) सुहेण भाविद णाण दुहे जादे विणस्मदि। तम्हा जहा बल जोइ अप्पा दुक्खेहिं भावए ॥ - मोक्षपाहुड, ६२	अदु ख भावित ज्ञान क्षीयते दु खसन्निधौ। तस्माद् यथा बल दु खैरात्मान भावयेन् मुनि। - समाधिशतक
कुन्दकुन्द -	यतिवृषभाचार्य - (ई की ५-६वीं शती के बीच)
(ङ) जाव ण वेदि विसेसतर आदासवाण दोण्ह पि। अण्णाणी ताव दु मो कोहादिसु वट्टदे जीवो ॥ - समयसार, ६९	जाव ण वेदि विसेसतर तु आदासवाण दोण्ह पि। अण्णाणी ताव दु सो विसयादि वट्टदे जीवो ॥ - तिलोयपण्णत्ति ९।६३

प्राकृत भाषाओं के क्रमिक विकास एव परिवर्तनो के अध्ययन मे हमे कुन्दकुन्द के ग्रन्थो से बडी सहायता प्राप्त होती है, इससे हम उनके काल का निर्णय भी कर सकते है। प्राकृत भाषा-शास्त्र के विद्वान्[१६] प्राकृत भाषा के क्रमिक विकास का विश्लेषण करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि त् और थ् में परिवर्तन होते-होते प्रथम तो वे द् और ध् हुए, फिर क्रमश द् का लोप हो गया और ध् के स्थान में ह् का प्रयोग होने लगा। ऐतिहासिक दृष्टि से भाषा-शास्त्रियो ने इस विकास-काल को ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी स्थिर किया है। 'समयसार' मे हमे रथ शब्द के स्थान मे रध[१७] और रह[१८] दोनो ही परिवर्तित रूपो का प्रयोग मिलता है।

हाथी गुफा शिलालेख का प्रारम्भ '**नमो सव सिधान**' से हुआ है और कुन्दकुन्द ने भी समयसार का प्रारम्भ '**वदित्तु सव्व सिद्धे**' से किया है अर्थात् दोनो ने ही समस्त सिद्धो को नमस्कार किया है। सभवत उस काल मे एकेश्वरवाद का जोर था। मगल नमस्कार करते समय यह भी दृष्टि मे रहा हो तो कोई आश्चर्य नही।

समय-सार की महत्ता

समयसार आचार्य कुन्दकुन्द के आत्मवैभव का प्रतीक है। उन्होने पहले शुद्ध आत्मा को साक्षात् किया फिर 'समयसार' की वाग्-धार मे उसे स्फूर्त्त भी किया। शायद इसी कारण वह सहज है और स्वाभाविक भी। समयसार कोरा शास्त्र नही है, उसमे आत्मानुभूति का दिव्य प्रकाश है, किन्तु उसे देखने के लिए अपनी आत्मा को ऊर्ध्वमुखी करना ही होगा। आचार्य कुन्दकुन्द स्वसमय के मन्त्र-दृष्टा थे, केवल मन्त्र-प्रस्तौता नही।

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने इस ग्रन्थ का नाम 'समय पाहुड' रखा था। ग्रन्थ की प्रथम गाथा मे 'वोच्छामि समयपाहुडमिण' कहा है और अन्तिम गाथा मे 'जो समयपाहुडमिण' दिया है। इससे सिद्ध है कि इस ग्रन्थ का मूल नाम 'समयपाहुड' है। यह नाम सोद्देश्य है। तीर्थंकर महावीर की वाणी द्वादशाग में गुम्फित है। इनमे बारहवे अग का नाम दृष्टिवाद है। उसमे चौदह पूर्व है। इनमे पाचवे पूर्व का नाम

---

[१६] ईसा के बाद जिन व्यञ्जनो में विकार आया, वे थे त् और थ्, जो स्वर मध्यम होने पर पहले तो सघोष (अर्थात् द् और ध्) हुए और तब इस द् का लोप तथा ध् का ह् में परिवर्तन हुआ। त् और थ् का सघोष में परिवर्तन पूर्वी एव पूर्वमध्य की विभाषाओं में ईसा पूर्व प्रथम शती में प्रतिष्ठित हो चुका था।
- तुलनात्मक पालि-प्राकृत-अपभ्रश व्याकरण, पृ १०, भूमिका डॉ सुकुमार सेन

[१७] समयसार गाथा ९८

[१८] समयसार गाथा २३६

ज्ञानप्रवाद है। उसमे बारह वस्तु अधिकार है। उनमें दसवे वस्तु अधिकार में 'समयपाहुड' है।

आचार्य कुन्दकुन्द को दसवे वस्तु अधिकार के 'समयपाहुड' का ज्ञान था। इसके प्रमाण-स्वरूप सहारनपुर की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति का उद्धरण प्रस्तुत किया जा सकता है - "चौदहपूर्व में ज्ञानप्रवाद नामा पचम पूर्व है तामे बारह वस्तु अधिकार है, तिनमें एक-एक वस्तु मे बीस-बीस प्राभृत अधिकार है, तिनमें दशवाँ वस्तु में समय नामा प्राभृत है, ताका ज्ञान कुदकुदाचार्यनिकूँ था, तातें समयप्राभृत ऐसा नाम धरिकै कहने की प्रतिज्ञा करिए है अथवा समय नाम आत्मा का भी है, ताका जो सार सो समयसार ऐसा जानना।"

उन्होने उसका स्वात्मा मे अनुभव किया था, उस अनुभव को ही उन्होने शब्दबद्ध किया था, इसलिए यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत 'समयपाहुड' वही है, जिसकी देशना भगवान महावीर ने की थी और जिसकी प्ररूपणा गौतम गणधर और श्रुतकेवलियो ने की थी। वही आचार्य-परम्परा से सुरक्षित रूप में आचार्य कुन्दकुन्द को प्राप्त हुआ था। इसलिए कुन्दकुन्द ने 'वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिद' कहा है। इसकी टीका करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र ने 'अर्हत्प्रवचनावयवस्य' कहा है अर्थात् इस तीर्थंकर भगवान के परमागम का अवयव (भाग) बताया है। आचार्य पूज्यपाद[१९] इस तथा ऐसे अन्य ग्रन्थो को अर्थरूप से तीर्थंकर की वाणी मानकर प्रमाणभूत मानते है।

इस ग्रन्थ मे तीन बार 'समयसार'[२०] शब्द का प्रयोग मिलता है। समय[२१] का अर्थ आत्मा है और सार का अर्थ है शुद्ध स्वरूप अर्थात् आत्मा का शुद्ध स्वरूप। जिन तीन स्थलो पर समयसार शब्द का प्रयोग किया गया है, उनमे दो स्थलो पर उसे नय पक्षातिक्रान्त और तीसरे स्थल पर अभेदरत्नत्रयस्वरूप कहा है। यही कार्य समयसार बताया है। तीसरे स्थल पर निश्चय कारण समयसार का निरूपण है। इस ग्रन्थ मे अभेदरत्नत्रयरूप शुद्धात्मस्वरूप का अर्थात् समयसार का वर्णन किया गया है, इसलिए इस ग्रन्थ का अपर नाम समयसार हो गया।

इस ग्रन्थ की दो टीकाएँ बहु प्रसुद्ध है - आचार्य अमृतचन्द्र की आत्मख्याति तथा आचार्य जयसेन की तात्पर्यवृत्ति। आत्मख्याति के अनुसार इस ग्रन्थ की गाथा सख्या ४१५ है, जबकि तात्पर्यवृत्ति के अनुसार यह सख्या ४३७ है। इस प्रकार दोनो

---

१९ 'तत्प्रमाणमर्थतस्तदेवेदमिति क्षीरार्णवजल घटगृहीतमिव - सर्वार्थसिद्धि १-२०-२११

२० गाथा क्र ३-७४, ३-७६, १०-१०६

२१ 'समयत एकीभावेन स्वगुणपर्यायान गच्छतीति समय'। समयसार गाथा ३, आत्मख्याति टीका

टीकाओ मे २२ गाथाओ का अन्तर है। दोनो टीकाओ की कुछ गाथाओ में क्रम-विपर्यय भी मिलता है। तात्पर्यवृत्ति की अधिक गाथाओ मे कई गाथाएँ अप्रासगिक हैं, पुनरुक्त हैं और अन्य ग्रन्थो की है। दोनों टीकाओ मे कही-कही पाठ-भेद और अर्थ-भेद भी दृष्टिगोचर होता है।

ग्रन्थराज 'समयसार' आध्यात्म का अनुपम ग्रन्थ है। इसमे निश्चय-नय की मुख्यता से आत्मा के शुद्धस्वरूप का वर्णन किया गया है। कई स्थलो पर व्यवहार और निश्चय दोनो ही नय-पक्षो[२२] का मत प्रस्तुत किया गया है। दोनो की हेयोपादेयता पर विचार करते हुए यह सकेत दिया गया है कि जिन्होने शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति कर ली है, उनके लिए निश्चय-नय है तथा जिन्हे शुद्धात्मभाव की प्राप्ति नही हुई, बल्कि जो साधक दशा मे स्थित है, उनके लिए व्यवहार-नय प्रयोजनवान है अर्थात् दोनो नयो की प्रयोजनवत्ता अपेक्षा-भेद से है, सर्वथा ऐकान्तिक नही है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार को दो रूपो मे प्रस्तुत किया है, जिन्हे टीकाकारो के अनुसार कारण समयसार और कार्य समयसार की सज्ञा दी गई है। जहाँ तक आत्मा के शुद्धस्वरूप के वर्णन का सम्बन्ध है, वह सब कारण समयसार है, क्योकि निश्चयनय भी एक विकल्प है और कोई विकल्प सर्वथा सत्य नही है। कार्य समयसार तो स्वानुभव की दशा है, वह दशा अनिर्वचनीय होती है, इसीलिए कुन्दकुन्द उसे नय पक्ष से रहित बताते है। इस प्रकार इस ग्रन्थ मे अनेकान्त दृष्टि से आत्मस्वरूप का वर्णन है।

यह कहा जा सकता है कि आत्मा के शुद्ध स्वरूप का वर्णन करने वाले समयसार की समता अन्य कोई ग्रन्थ नही कर सकता। इस दृष्टि से इसे ग्रन्थराज, आत्मधर्म का प्रतिनिधि-ग्रन्थ और जैनधर्म का एकमात्र प्राण-ग्रन्थ कहा जाए तो अत्युक्ति नही होगी। इस ग्रन्थ की सबसे बडी विशेषता यह है कि आत्मधर्म जैसे गूढ़ विषय को इसमे अत्यन्त सरल और सुबोध रीति से प्रतिपादित किया गया है। दुरूह विषय को भी दृष्टान्तो[२३] के माध्यम से सहज बनाया है। इससे कठिन विषय सुबोध हो गये है। वस्तुत मूलग्रन्थ अत्यन्त सरल और रोचक है। विद्वत्तापूर्ण टीकाओं के कारण यह कठिन लगता है। समाज मे इसके मूलपाठ के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है।

---

[२२] गाथा क्रमाक - १-१६, १-२८, १-२९, २-८, २-१०, २-१८, २-२१, २-२२ २-२९ ३-१५, ३-१६, ३-२९, ३-३०, ३-३८, ३-३९, ३-४०, ३-७३, ८-३६, ८-४०, १०-१७, १०-४६, १०-५३, १०-५८, १०-१०७

[२३] समयसार की ७६ गाथाओं में ३७ दृष्टान्तों द्वारा विषय को समझाया गया है।

समयसार ग्रन्थ का सबसे बडा माहात्म्य यह है कि इसे पढ़कर जो हृदयगम कर लेता है, वही इसका प्रेमी और भक्त बन जाता है। उसके भाव बदल जाते है और रुचियाँ मुड़ जाती है। वह आत्म-कल्याण की ओर उन्मुख हो जाता है। समयसार का स्वाध्याय करने मे पहले द्रव्यसग्रह, गोम्मटसार, पचास्तिकाय और पुरुषार्थ सिद्धयुपाय जैसे कुछ ग्रन्थो का अध्ययन कर लेना आवश्यक है। उससे समयसार सही रुप मे हृदयगम हो जाता है।

यह अध्यात्म ग्रन्थ है, किन्तु उत्तम कोटि का दर्शनशास्त्र भी[२४], एक ऐसा दर्शनशास्त्र, जिस पर मानव-समाज सहज ही गौरव का अनुभव कर सकता है। सम्पूर्ण चेतन-अचेतन जगत को समझकर सूक्ष्म चर्चा करने वाला यह ग्रन्थ अपने मे अनुपम है। उसकी कोई उपमा नही।

भाषा-विचार

प्राकृत भारतवर्ष की अत्यन्त प्राचीन भाषा है। विद्वानों ने प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की है - 'प्रकृत्या स्वभावेन सिद्ध प्राकृतम्' अथवा 'प्रकृतीणा साधारण-जनानामिद प्राकृतम्' अर्थात् प्रकृति स्वभाव से सिद्ध भाषा प्राकृत है अथवा सर्वसाधारण मनुष्य जिस भाषा को बोलते है, उसे प्राकृत कहते है। देश-भेद के कारण प्राकृत भाषा के कई भेद हो गये, यथा - मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, पाली, पैशाची। डॉ पिशल[२५] आदि विद्वानो ने[२६] जैन महाराष्ट्री और जैन शौरसेनी रुप भी स्वीकार किये हैं। अर्धमागधी जैन आगमो की भाषा है।

प्राकृत भाषा के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ सरयूप्रसाद अग्रवाल[२७] के मतानुसार दिगम्बर सम्प्रदाय की कुछ रचनाओ मे शौरसेनी की अधिकाश विशेषताएँ उपलब्ध होती है, इसलिए उसे जैन शौरसेनी माना गया है। कुन्दकुन्द की सभी रचनाएँ जैन शौरसेनी में रची गई है। पिशल के मतानुसार जैन शौरसेनी आशिक रुप मे जैन महाराष्ट्री से अधिक पुरानी है। इन दोनो भाषाओ के ग्रन्थ छन्दो मे हैं।

---

[२४] २३ गाथाओं में परमतों का परिहार किया है।

[२५] *Comparative Grammar of the Prakrit Languages*

[२६] 'शौरसेनी प्राकृत की स्वतन्त्र रचनाएँ तो उपलब्ध नहीं होती, परन्तु जैन शौरसेनी में दिगम्बर-सम्प्रदाय के ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। वैसे तो अर्धमागधी ही जैन ग्रन्थों की मुख्य भाषा है, परन्तु दिगम्बर-सम्प्रदाय की कुछ रचनाओं में शौरसेनी की अधिकाश विशेषताएँ उपलब्ध होती है, इसलिए उसे जैन शौरसेनी का रूप माना गया है। प्रथम शताब्दी में कुन्दकुन्दाचार्य रचित 'पवयणसार' जैन शौरसेनी की प्रारम्भिक प्रसिद्ध रचना है। कुन्दकुन्दाचार्य की प्राय सभी रचनाएँ इसी भाषा में हैं।' - प्राकृत विमर्श, पृ ३२

[२७] आर पिशल, पृ ३९

इस प्रकार प्राकृत भाषा के विद्वानों ने समयसार की भाषा को जैन शौरसेनी प्राकृत स्वीकार किया है। जैन शौरसेनी में महाराष्ट्री और अर्धमागधी के अनेक शब्द मिलते है, किंतु इन दोनों से उसमें कुछ बातो में भिन्नता है; जैसे- 'सुयकेवलीभणियं' इसका जैन शौरसेनी रूप 'सुदकेवलीभणिद' होगा। इस प्राकृत में क्रियापद में सस्कृत के क्त्वा प्रत्यय के स्थान मे दूण प्रत्यय लगता है; जैसे - पढिदूण, जाणिदूण, णादूण। अनेक शब्द जैन शौरसेनी के साँचे में ढलकर विशिष्ट रूप ग्रहण कर लेते हैं - जैसी अर्धमागधी का 'इक्क' जैन शौरसेनी मे 'एक्क' बन जाता है। इसी प्रकार समयसार मे प्रयुक्त जैन-शौरसेनी के व्याकरण-सम्मत शब्दरूप, धातुरूप अथवा अव्यय विशेष ध्यान देने योग्य है, यथा - चुक्के॑ज्ज, घे॑त्तव्व, हवे॑ज्ज, गिण्हदि, किह, अहक, मुयदि, बज्झे, तिण्णि, जाणे, करे॑ज्ज, भणे॑ज्ज, पो॑ग्गल आदि। समयसार की मुद्रित और लिखित प्रतियो मे अधिकाश भूलें भाषा-ज्ञान की कमी के कारण हुई है। हमें यह नही भूलना चाहिये कि कुन्दकुन्द केवल सिद्धान्त और आध्यात्म के ही मर्मज्ञ विद्वान् नही थे, अपितु वे भाषाशास्त्र के भी अधिकारी और प्रवर्त्तक विद्वान् थे। उन्होने अपनी प्रौढ़ रचनाओ द्वारा प्राकृत को नये आयाम दिये, उन्होंने उसका सस्कार किया, उसे सँवारा और नया रूप दिया, इसीलिए वे जैन शौरसेनी के आद्य कवि और रचनाकार माने जाते है।

समय-सार मे छन्द-विचार

जैन शौरसेनी के क्षेत्र में कुन्दकुन्द अविस्मरणीय थे। उन्हे 'कठोपनिषद्' मे वर्णित क्रान्तदृष्टा[२८] कवि कहा जा सकता है। शब्दशास्त्र और छन्दशास्त्र पर उनको पूर्ण अधिकार प्राप्त था। उन्होने अपनी सभी रचनाओं मे पद्य का आश्रय लिया। उन्होने पद्य मे शब्दशास्त्र और छन्दशास्त्र के नियमो का पूरा ध्यान रखा, इसलिए उनकी रचनाओ मे इन दोनो शास्त्रो की दृष्टि से कोई त्रुटि दृष्टिगोचर नही होती। कुछ विद्वानों की यह धारणा रही है कि कुन्दकुन्द इन शास्त्रों के किसी बन्धन में नही बँधे थे, किन्तु कुन्दकुन्द की प्राञ्जल-परिष्कृत भाषा, छन्द-शुद्धि, अलकारो का प्रयोग आदि को देखकर विश्वास करना पड़ता है कि उन्होने व्याकरण, छन्द आदि का पूर्ण ध्यान रखा है।

समयसार पर छन्दशास्त्र की दृष्टि से विचार करने पर हमे अनेक रोचक निष्कर्ष प्राप्त होते है -

---

२८ 'जो आत्मरमण करता हुआ भूत, भविष्य और वर्तमान की परिस्थितियों का ज्ञाता होता है, वह कवि क्रान्तदृष्टा कवि कहलाता है' - कठोपनिषद्

१ **छन्दोभङ्ग न कारयेत्** · छन्दशास्त्र के आचार्यो ने बताया है कि जैसे स्वर्ण-तुला स्वर्ण के न्यूनाधिक भार को सहन नही करती, इसी प्रकार श्रवण-तुला छन्दभंग से भ्रष्ट हुए छन्द को सहन नही करती।[२९]

जो मूर्ख, पण्डितो के समक्ष लक्षण-विहीन काव्य को पढ़ता है, वह अपने हाथ मे रही हुई तलवार से अपना ही मस्तक काटता[३०] है। समयसार मे कही छन्द-भग नही मिलता।

२ **जगण-विचार** जिस गाथा मे एक जगण (।ऽ।) होता है, वह कुलीन (श्लाघ्य) कहलाती है। दो जगणो के होने पर वह स्वय गृहीत सुख-ग्राह्य होती है। नायक जगण के होने पर वह रण्डा होती है तथा अनेक नायकों वाली वेश्या[३१] होती है।

इस दृष्टि से समयसार की गाथाओ पर विचार किया तो ज्ञात हुआ कि इसमे एक जगण वाली गाथाओ की सख्या १६६, दो जगण वाली गाथाओ की सख्या १०९ है।

३ **छन्द-विचार** समयसार की गाथा क्रमाक २५१, २५२, २७८, २७९, ३१२, ३१३, ३१४ और ३१५ को छोडकर शेष ४०७ गाथाओ मे गाहा[३२] छन्द का प्रयोग किया है। गाथा क्रमाक २५१ और २५२ मे उग्गाहा[३३] छन्द है। शेष गाथाओ के छन्द अभी अनिर्णीत है। सम्भव है, प्रतिलिपिकारो के प्रमाद से इनमे कुछ शब्द न्यूनाधिक हो गये है अथवा छद्मस्थ होन के नाते मै निर्णय नही कर सका हूँ।

४ **गाथा पढ़ने की विधि** [34] गाथा का प्रथम चरण हस-जैसी मन्थर गति से पढ़ना चाहिये, द्वितीय चरण सिह-विक्रम के समान अर्थात् तेज गति से, तृतीय चरण गज की-सी गति से तथा चतुर्थ चरण सर्प-जैसी गति से पढ़ना चाहिये।

प्राय पाठक गाथाओ को लय और स्वर के साथ नही पढते। कुछ लोग तो जल्दी-जल्दी पढते है। इससे उन्हे न भाषा का और न भावो का रसास्वाद हो पाता है।

---

[२९] जमण सहइ कणअतुला तिलतुलिअ अद्धअद्धेण।
तम ण सहइ सवणतुला अवछद छदभगेण ॥ - प्राकृत पैगलम्, पृ १३

[३०] अबुह बुहाण मज्झे कव्व जो पढइ लक्खण विहूण।
भूअग्ग लग्गखग्गहिँ सीस खुडिअ ण जाणेइ ॥ - प्राकृत पैगलम्, पृ १४

[३१] एक्के जे कुलमती वे णाअक्केहि होइ सगहिणी।
णायकहीणा रडा वेसा बहुणाअका होइ ॥ - प्राकृत पैगलम् गाहा ६३

[३२] जिसके प्रथम और तृतीय चरण में १२-१ मात्राएँ हों, द्वितीय चरण में १८ और चतुर्थ चरण में १५ मात्राएँ हों, वह गाहा छन्द कहलाता है।

[३३] जिसके पूर्वार्ध और उत्तरार्द्ध में ३०-३० मात्राएँ हों, वह उग्गाहा छन्द कहलाता है।

[३४] पढम वी हसपअ बी ए सहिस्स विक्कम जा आ।
तीए गअवर लुलिअ अहिवर लुलिअ चउत्थर गाहा ॥ - प्राकृत पैंगलम्, ६२

५ **रस-प्रयोग :** समयसार मे सर्वत्र माधुर्य के दर्शन होते है। कुन्दकुन्द ने समयसार में मुख्यत शान्तरस का प्रयोग किया है। शान्तरस का स्थायीभाव निर्वेद या शम है, जो समयसार के विषय के अनुरूप है। शान्तरस सम्यग्ज्ञान से उत्पन्न होता है। उसका नायक निस्पृह होता है। राग-द्वेष के नितान्त त्याग मे सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति[35] होती है। अत 'भवबीजाङ्कुरजनना' राग-द्वेष का परित्याग ही शान्त रस है। शान्तरस की इस व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि समयसार मे शान्तरस प्रवाहित है, क्योकि समयसार का विषय अध्यात्म है। गाथा-१५ में बताया हुआ है कि जो भव्यात्मा आत्मा को शान्त भावस्थित आत्मा मे अनुभव करता है, वही आत्मा सम्पूर्ण जिनशासन को जानता है।

६. ***अलकार-प्रयोग*** समयसार मे अलकारो का प्रयोग स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। दृष्टान्त अलकार का प्रयोग तो अनेक स्थलों पर हुआ है। गाथा क्र ३०४ मे हमे अनुप्रास अलकार के दर्शन होते है।

पाठ-शोधन की उपलब्धियाँ

समयसार जैन-धर्म का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। केवल जैनधर्म का ही क्या, समूचे अध्यात्म वाङमय का वह एक पीयूष ग्रन्थ है, ऐसा ग्रन्थ, जो खोजने पर भी अन्यत्र न मिलेगा।

यद्यपि समयसार की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियो के मूलपाठो मे सामान्य ढग से एकरूपता है, किन्तु कही-कही उनकी गाथाओ की सख्या मे भेद है, भाषा मे भेद है, पाठो मे भेद है। कभी किसी काल में किसी सस्कृतानुरागी व्यक्ति ने समयसार की मूल प्राकृत गाथाओ का सस्कृत छायानुवाद कर दिया। इसके पश्चात् तो इस ग्रन्थ के सभी सम्पादको और अनुवादको ने अपनी प्रति मे उसी छायानुवाद का अनुकरण किया और मूल गाथा के साथ उसे भी अवश्य दिया। इस गतानुगतिकता का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि मूल गाथाओ मे पाठ-भेद होने पर भी सस्कृत छाया प्राय सभी प्रतियो मे समान रही। प्रायश सभी सम्पादको ने तो सस्कृत-प्रेम के अत्युत्साह मे गाथा का अन्वयार्थ करने के स्थान मे सस्कृत छाया का अन्वयार्थ अपने ग्रन्थ मे दिया है। समयसार और प्राकृत भाषा के साथ यह कैसी उपेक्षा है -

उपलब्ध सभी मुद्रित प्रतियो का हमने भाषा-शास्त्र, प्राकृत-व्याकरण और छन्द-शास्त्र की दृष्टि से सूक्ष्म अवलोकन किया है। हमे ऐसा लगा कि उन प्रतियो मे परस्पर तो अन्तर है ही, भाषा-शास्त्र आदि की दृष्टि मे भी त्रुटियो की बहुलता है। अधिकाश कमियाँ जैन शौरसेनी भाषा के रूप को न समझने का परिणाम है।

[35] सम्यग्ज्ञान समुत्थान शान्तो निस्पृहनायक।
रागद्वेष परित्यागात्सम्यग्ज्ञानस्य चोद्भव ॥ - वाग्भट्टालकार, ५-३२

प्राकृत व्याकरण और छन्दशास्त्र के नियमो का ध्यान न रखने के कारण भी अनेक भूलें हुई जान पड़ती है।

ग्रन्थ का सपादन करते समय उपर्युक्त भूलो के अतिरिक्त हमे अनेक पाठों मे असगतियाँ भी प्रतीत हुई। ऐसे पाठों का मशोधन करना जोखिम का काम था, अत हमने अनेक स्थानो मे ताडपत्रीय और हस्तलिखित प्राचीन प्रतियो का सग्रह किया। सगृहीत सभी भाषाओ की मुद्रित प्रतियों की सख्या २२ और ताड़पत्रीय या हस्तलिखित प्रतियों की मख्या लगभग ३५ थी। ताडपत्रीय अथवा हस्तलिखित प्रतियो मे कुछ प्रतियाँ तो पर्याप्त प्राचीन थी। ये प्रतियाँ श्रवणबेलगोल, मूडबद्री, दिल्ली, आगरा, अजमेर, बड़ौत से मँगवाई जाती थी। इनमे मूडबद्री की ताडपत्रीय प्रति (कन्नड़ लिपि) शक मवत् १४६५ की, अजमेर और खजूर ममजिद दिल्ली की प्रतियाँ वि म १६०८ की, खजूर मसजिद की अन्य प्रति म १६१९ की, मोती कटरा, आगरा की प्रति स १७५२ की, नया मन्दिर दिल्ली की प्रति म १६६० की थी। मूडबद्री की ताडपत्रीय प्रति में बालचन्द मुनि की कन्नड टीका है तथा अन्य प्रतियो मे आत्म-ख्याति अथवा तात्पर्य-वृत्ति टीका है। मूडबद्री और श्रवणबेलगोल की ताडपत्रीय प्रतियो की लिपि कन्नड है। दोनो स्थानो के पूज्य चारुकीर्ति भट्टारको ने अपने विद्वानो से नागरी लिपि मे उनकी प्रतिलिपि कराने की अनुकम्पा की, अत मै उनका आभारी हूँ।

इन नाना प्रतियो के तुलनात्मक अध्ययन का उद्देश्य यही था कि समयसार के जैन शौरमेनी के मूलपाठ को सुरक्षित रक्खा जा सके। हमारा विश्वास है कि मूल प्राकृत पाठो मे जो भाव-गाम्भीर्य है, उमे दृष्टि मे रखते हुए इन मूलपाठो को सुरक्षित रखने की बडी आवश्यकता है। इन मूलपाठो के स्वाध्याय से आचार्य कुन्दकुन्द के भावो को समझने मे सहायता मिलेगी।

पाठ-मशोधन अथवा मपादन की हमारी शैली इस प्रकार रही है - हमने विभिन्न प्रतियो के पाठ-भेद सग्रह किये। प्रमग और ग्रन्थकार के अभिप्रेत के अनुमार उचित पाठ को प्राथमिकता दी। प्राथमिकता देते हुए अमृतचन्द्र के मन्तव्य को अवश्य ध्यान मे रखा। जहाँ अमृतचन्द्र मौन है, वहाँ जयसेन के मन्तव्य को पाठ के औचित्य के अनुमार स्वीकार किया। गाथा मे छन्दोभग न हो, भाषा मे विकृति न आने पाये एव शब्दो के रूप शब्द-शास्त्र की मर्यादा मे रहे, हमने यथाशक्ति ऐसा प्रयत्न किया है। इसके लिए हमने प्राकृत-भाषा का कोश, इतिहास, व्याकरण और छन्दशास्त्र के अध्ययन मे पर्याप्त समय दिया। हमने अपनी ओर से इसमें कुछ भी मिलाने का प्रयत्न नही किया। आर्ष और आचार्य-परम्परा से आये हुए प्रसिद्ध अर्थ (अजहत्स्वार्थ) के अनुमार ही हमने अन्वय और अर्थ किया है। यदि असावधानी, प्रमाद या अज्ञानवश कोई त्रुटि रह गई हो तो सहृदय विद्वान् मुझे

क्षमा करें। यदि वे त्रुटियो की ओर मेरा ध्यान आकर्षित कर सकें तो मै हृदय से उनका आभारी रहूँगा तथा आगामी सस्करण मे त्रुटियो का सशोधन कर सकूँगा।

कृतज्ञता-ज्ञापन

इस ग्रन्थ के सपादन की प्रेरणा मुझे पूज्य उपाध्याय श्री विद्यानन्दजी महाराज से प्राप्त हुई। इसके सपादन, सशोधन में पूज्यश्री की प्रतिभा, सूझबूझ, शोध-खोज और साहाय्य ने मेरा मार्ग प्रशस्त किया है। एक शब्द मे कहूँ तो यह सब पूज्य महाराज के ही अनुग्रह और आशीर्वाद का फल है। प्रारम्भ से ही मेरे प्रति आपका वात्सल्य और स्नेह रहा है। उनके प्रति मेरी हार्दिक और निश्छल विनय-भक्ति है। उन्हे पुन पुन मेरा नमोऽस्तु है।

हस्तलिखित ताडपत्रीय प्रतियो की कन्नड़ लिपि की नागरी लिपि मे रूपान्तर कराकर श्रवणबेलगोल और मूडबद्री के भट्टारक पूज्य चारुकीर्ति पण्डिताचार्य महाराज ने जो अनुग्रहपूर्ण कृपा की, उमसे मुझे बडी महायता मिली। मैं इन पूज्य भट्टारको का अनुगृहीत हूँ।

दिल्ली के विभिन्न शास्त्र-भण्डारो मे समयसार की अनेक प्रतियाँ लाकर लाला पन्नालालजी अग्रवाल दिल्लीवालो ने मुझे दी। विद्वानो के प्रति लालाजी का स्नेह, श्रुतभक्ति और गुरुसेवा के भाव प्रशसा के योग्य है। इसी प्रकार स्वनामधन्य सेठ भागचन्दजी सोनी ने एक हस्तलिखित प्रति भेजने की कृपा की। मोती कटरा, आगरा के शास्त्र-भण्डार के मत्री ने मेरी प्रार्थना पर हस्तलिखित प्रति देकर मुझे उपकृत किया। मै इन सभी सहृदय सज्जनो का आभारी हूँ।

मुझे पाठ-सशोधन करते समय व्याकरण और छन्दशास्त्र की दृष्टि मे श्री महावीरजी के प मूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री का अमूल्य सहयोग मिला। उनकी इस कृपा के लिए मै अनुगृहीत हूँ।

इनके अतिरिक्त जिन विद्वानो के ग्रन्थो से मुझे जो भी सहायता मिली, उनके प्रति मै कृतज्ञता-ज्ञापन करता हूँ।

डॉ नेमीचन्द जैन (इन्दौर) ने प्रूफ देखने तथा छपाई से सम्बद्ध व्यवस्था करने मे अत्यन्त दत्तचित्ततापूर्वक कार्य किया है, उनके प्रति मै भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

'अक्खर पयत्थहीण, मत्ताहीण च ज मए भणिय ।
तं खमउ णाणदेवय, मज्झ वि दुक्खक्खय दितु ॥'

अक्षय-तृतीया
१० मई, १९७८

विनम्र -
बलभद्र जैन

विद्वानो की चर्चा वीतराग होनी चाहिये

(1)

भाषा विज्ञान की दृष्टि से प्राकृतों के विकास पर पर्याप्त ऊहापोह होता रहा है। विभिन्न प्रदेशों की बोलियाँ ही उस प्रदेश के नाम पर भाषायें कही जाती थीं। बोलियाँ ही विकसित होकर भाषा का रूप धारण करती हैं। इस विकास-यात्रा में व्याकरण का विशेष अवदान होता है। भाषा को सुनिश्चित और स्थिर रूप प्रदान करने में व्याकरण का योगदान अनुपेक्षणीय होता है। बोलियों से बनने वाली भाषाएँ बोलियो से ही नये-नये शब्दों का आहरण करके पुष्ट होती है।

शका की जाती है कि भाषा पहले थी या व्याकरण पहले था। व्याकरण पहले था, यदि यह पक्ष स्वीकार किया जाय, तो इसका अर्थ यह होगा कि भाषा से पहले व्याकरण था। यह तर्कसगत नही लगता। जब भाषा ही नही थी, तो व्याकरण किसके लिये नियम बनाता था? दूसरी ओर यह भी विचारणीय प्रतीत होता है कि बोलियाँ जब साहित्यिक परिधान पहनती है, तो व्याकरण ही उस परिधान को सजाता-सवारता है। निष्कर्ष यह है कि भाषा पहले है, व्याकरण बाद मे बना। बोलियाँ बहती हुई जलधारा है। उनकी शोभा प्रवहमान बने रहने मे है। बोलियाँ बोलचाल की भाषाये होती है। जब वे साहित्य का रूप धारण करती है, तब उन्हे पहचान के लिये एक नाम-रूप दिया जाता है। बोलियाँ प्राकृत होती है, वे नैसर्गिक होती है। व्याकरण उन बोलियो को नही सवारता, बल्कि जब वे बोलियाँ साहित्यिक बाना पहनती है, तब व्याकरण उस बाने को समान अनुपात देता है, जिससे वे शिष्टजनोचित लगे।

व्याकरण भाषा के प्रवहमान स्वरूप का अवरोधक बनकर नहीं खड़ा होता। वह उसके विकास को रोकता नही, उसे एक पहचान देता है। प्राकृत बोलियो का व्याकरण उन बोलियो की गति को न रोकते हुए भी उनको एक आकार देता है। यही कारण है कि प्राकृत एक विकासशील भाषा के रूप मे सुप्रतिष्ठित रही। यह व्याकरण का ही माहात्म्य है कि प्रत्येक प्राकृत शताब्दियो और सहस्राब्दियो की विकास यात्रा के पश्चात् भी अपने नाम, रूप और आकार को सुरक्षित रखे हुए है। यह व्याकरण के सस्कारो का ही प्रभाव है कि सामान्य जन भी व्याकरण के नियमों के विरुद्ध नही बोलता।

जिस भाषा का व्याकरण भाषा के विकास पर प्रभाव डालने वाले नियमो से भाषा को जकड़ देता है, उस भाषा का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

प्राचीन भारत में प्राय दो भाषाओं मे ही साहित्य का सृजन हुआ - प्राकृत में और सस्कृत में। भाषा का सस्कृति से गहरा सम्बन्ध होता है। प्राकृत भाषा मुख्यत श्रमण सस्कृति की भाषा रही और सस्कृत मुख्यत ब्राह्मण सस्कृति की भाषा रही। श्रमण सस्कृति ने भाषा को कभी साध्य नही माना, बल्कि अपने धर्म-प्रसार का साधन माना। इसलिये श्रमण सस्कृति ने अपने साहित्य का सृजन न केवल प्राकृत में, अपितु सस्कृत तथा सभी प्रादेशिक भाषाओं मे किया। ब्राह्मण सस्कृति ने सस्कृत की शुद्धता को साध्य मान कर प्राय अपने साहित्य की रचना संस्कृत में की और व्याकरण के कठोर नियमों की बाड खडी करके उसे सुरक्षा प्रदान करने का बडा जागरुक प्रयत्न किया। फलत सस्कृत का विकास रुक गया। हमे यह स्वीकार करने मे कोई सकोच नही कि ससार की किसी भाषा का व्याकरण सस्कृत के समान सर्वांग सम्पूर्ण, अनुशासनबद्ध और नियमित नही है। किन्तु नियमो की कठोरता के कारण उसकी शब्द सम्पत्ति का वाछित विस्तार नही हो पाया और शब्द समाहरण की खिडकी बन्द होने के कारण ताजी वायु का प्रवेश नही हो पाया।

(2)

कई विद्वानो को जैनागम को समझने के लिये व्याकरण की उपयोगिता पर सन्देह है। उनका तर्क यह है कि "जैनागम व्याकरणातीत है। सभी प्राकृत व्याकरण सस्कृत मे रचे गये है। यदि उन्हे स्वीकार किया जायेगा, तो इससे आचार्य कुन्दकुन्द आदि आचार्य उन प्राकृत वैयाकरणो के पश्चाद्वर्ती माने जायेगे।" यह बालजनोचित तर्क है।

यहाँ हम आगम ग्रन्थो मे कुछ सन्दर्भ दे रहे है, जिनसे व्याकरण की महत्ता पर प्रकाश पडता है -

(१) आचार्य गुणधर कसाय पाहुड में कहते है -

"सव्वेसु चाणुभागेसु" - गाथा २८९

टीका - १४३१ - "सव्वेसु चाणुभागेसु सकमो मज्झिमो उदयो त्ति एद सव्व वागरण सुत्त।" पृष्ठ ८८२

इत्यादि। यह सब गाथा का उत्तरार्ध व्याकरण सूत्र है।

(२) आर्य नागहस्ती का परिचय आगम में इस प्रकार पाया जाता है -

"वागरण करण भंगिय कम्मपयडी पहाणाण" ॥३०॥

- कसाय पाहुड सुत्त प्रस्तावना, पृष्ठ ९

अर्थ - जो सस्कृत और प्राकृत भाषा के व्याकरणो के वेत्ता है।

- सपादक प हीरालाल जैन

(वीर शासन संघ कलकत्ता १९५५)

आचार्य नागहस्ती सम्कृत, प्राकृत व्याकरणों के वेत्ता थे, तो यह निश्चित और असदिग्ध तथ्य है कि उस समय इन भाषाओं के व्याकरण के ग्रन्थ भी विद्यमान होंगे।

(३) शुद्ध आत्म-दर्शन की सुन्दरता -

"एयत्त णिच्छयगदो, समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोगे।
बध कहा एयत्ते, तेण विसंबादिणो होदि॥"

- आचार्य कुन्दकुन्द, समयपाहुड ३

"एतन्मते 'विसवादिणो' पुल्लिग एव पाठ।"

- स प गजाधर लाल जैन

(भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सम्था काशी १९१४)

"एतन्मते 'विसवादिणो' पुल्लिग एव पाठ।"

- स आचार्य ज्ञान सागर जी अजमेर १९६९

"सा विसवादिणो विसवादिनो कोऽर्थ ? विसवादिणी। विसवादिनी कथा प्राकृत लक्षण बलात् पुल्लिगे स्त्रीलिग निर्देश। विसवादिनी असत्या होदि = भवति।"

- आचार्य जयसेन तात्पर्य वृत्ति। ताडपत्रीय प्रति, पृ १०

(४) 'पोग्गल कम्माण कत्तार"

- तात्पर्य वृत्ति, गाथा २४

'पोग्गल कम्माण पुद्गल द्रव्य कर्मादीना कत्तार कर्त्तेति। कर्त्तार इति कर्मपद कर्त्तेति चेत् प्राकृते क्वापि कारकव्यभिचारो लिगव्यभिचारश्च"

- पृष्ठ २४

यहाँ आचार्य जयसेन ने व्याकरण से ही कारक की सिद्धि की है।

(५) कुन्दकुन्द की रचनाएँ -

"दिगम्बर साहित्य के महान् प्रणेताओं में कुन्दकुन्द का मूर्धन्य स्थान है। इनकी सभी रचनाएँ शौरसेनी प्राकृत मे है। प्रवचनसार, समयसार, और पचास्तिकाय - ये तीन ग्रन्थ विश्रुत है।"

- प नेमीचन्द्र ज्योतिषाचार्य आरा
तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा
भाग २, पृष्ठ १११

इससे स्पष्ट है कि आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों की भाषा शौरसेनी है।

(६) "आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण में परमात्म प्रकाश से अनेक उदाहरण दिये है।"

- डॉ ए एन उपाध्ये
परमात्म प्रकाश प्रस्तावना, पृष्ठ १०५, आगास

(3)

पं बलभद्र का निरवद्य सम्पादन -

प बलभद्र वृद्ध मनीषी विद्वान् है। सम्पादन के क्षेत्र मे उनका व्यापक अनुभव है। विषय और भाषा पर उनका अधिकार है। उन्होंने अनेक विषयो और भाषाओ के ग्रन्थों का सफल सम्पादन किया है और अनेक मौलिक ग्रन्थो का प्रणयन किया है। वे धार्मिक वृत्ति के सरल स्वभावी विद्वान् है। उन्होने हमारी प्रेरणा से समयसार, नियमसार, रयणसार, अष्ट पाहुड, वारस अणुपेक्खा, द्रव्य सग्रह आदि ग्रन्थो का सम्पादन किया। उन्होंने अनेक ताडपत्रीय, हस्तलिखित और मुद्रित प्रतियो का तुलनात्मक अध्ययन करके अपने सम्पादन के कुछ सूत्र निर्धारित किये और उन सूत्रों के अनुसार, प्रचलित परम्परा की लीक से कुछ हट कर और छात्रोपयोगी सम्पादन किया। यह सर्वथा नवीन प्रयोग था, जो उन्होने अपने सम्पादन में अपनाया। उन्होने प्राकृत गाथाओ की सस्कृत छाया नही दी, बल्कि गाथाओं के मूल प्राकृत शब्दो का अन्वयार्थ दिया। सस्कृत छाया का अन्वयार्थ देने मे ग्रन्थकर्त्ता आचार्य का हार्द स्पष्ट नही हो पाता। भाषा के अन्तर से हार्द में अन्तर होना स्वाभाविक है।

पण्डित जी यह संकल्प लेकर चले थे कि मूल पाठों को सुरक्षित रक्खा जाय। उनके विरुद्ध यह आरोप लगाना विद्वानों के योग्य नहीं प्रतीत होता कि पडित जी ने आगमों की भाषा में परिवर्तन किया या आगमों के भाषिक ढाँचे में हेरफेर किया है। यह आरोप, ऐसा लगता है, सद्भावना से नही लगाया गया, क्योकि पण्डित जी द्वारा बार-बार पूछने पर भी आरोपकर्त्ता फेरबदल का एक भी उदाहरण नहीं दे पाये। पण्डित जी ने जो पाठ दिये है, वे अपूर्व नही है और वे अन्य अनेक प्रतियों में भी मिलते है। आरोपकर्त्ता बार बार पूछने पर भी यह नही बता पाये कि वे समयसार की किस प्रति को आदर्श प्रति या सर्वशुद्ध प्रति मानते हैं। वे इस प्रश्न का भी कोई स्पष्ट उत्तर नही दे पाये कि जीवन भर देव, गुरु और शास्त्र के प्रति श्रद्धा रखने वाले पण्डित जी जैनागम में किस प्रलोभन या प्रयोजन से फेरबदल करते।

- आचार्य श्री विद्यानन्द

महावीर जयन्ति
बड़ौत (उ प्र)
२४-४-१९९४

विसयाणुक्कमणिका

सार-सहित विषयानुक्रमणिकां

गाथा १ -

पूर्वार्द्ध मे इष्टदेव-सिद्ध भगवान का मगल-स्मरण किया है तथा उत्तरार्द्ध मे 'समयपाहुड' ग्रन्थ के कथन की प्रतिज्ञा की है।

गाथा २-१२, पीठिका -

स्वभाव मे स्थित जीव स्वसमय है और पुद्गल कर्मप्रदेश मे स्थित जीव परसमय है। परमार्थभूत शुद्धात्मतत्त्व में गुणभेद नही है, किन्तु गुणभेद निरूपक व्यवहार के बिना परमार्थ का कथन नही हो सकता। साधकदशा मे व्यवहारनय और सिद्धदशा मे निश्चय नय प्रयोजनवान है।

गाथा १३-३७ जीवाधिकार -

निश्चय नय के विषयभूत आत्मा को जानना ही सम्यग्ज्ञान है। इसी से निश्चय और व्यवहार स्तुति का अन्तर ज्ञात होता है।

गाथा ३८, उपसहार -

ज्ञानी की अन्तर्भावना होती है कि मै एक हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञान-दर्शनमय हूँ, अरूपी हूँ, परमाणु-मात्र भी परद्रव्य मेरा नही है।

गाथा ३९-४८, अजीवभाव -

देह-रागादि औपाधिक भाव है, निश्चयनय से वे जीव नही है।

गाथा ४९-६०, शुद्ध जीव का स्वरूप -

निश्चय नय से जीव मे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, सस्थान, लिग, राग, द्वेष, मोह, प्रत्यय आदि नही है। ये सब पुद्गल के परिणाम है, किन्तु व्यवहार से जीव के कहे गये है।

गाथा ६१-६८, मुक्त जीव -

शुद्ध जीव मे वर्णादि भाव, जीवसमास, गुणस्थान, इन्द्रियाँ, बादर और सूक्ष्म आदि का तादात्म्य नही है। ये भाव ससारदशा के है।

तिदियो कत्तिकम्माधियारो ३-७६-१४४ ५१-१०६

गाथा ६९-७४, ज्ञानी और अज्ञानी जीव -

जब तक जीव शुद्धात्मा और क्रोधादि आस्रवो का स्वरूप नहीं जानता, तब तक वह अज्ञानी कहलाता है। जब वह स्वसवेदन के द्वारा क्रोधादि-आस्रवो से भिन्न शुद्धात्मस्वरूप को जान लेता है, तब ज्ञानी कहलाता है। अज्ञानी के कर्मबन्ध होता है, ज्ञानी के कर्मबन्ध नही होता। स्वसवेदन और रागादि आस्रवो की निवृत्ति एक ही काल में होती है।

गाथा ७५-८४, निमित्तनैमित्तिक व्यवस्था -

जीव और पुद्गल कर्म अपने भावो से परिणमन करते है, परद्रव्यरूप परिणमन नही करते, किन्तु उनका परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। निश्चय नय से आत्मा अपने को ही करता और भोगता है और व्यवहार नय से अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों को करता और भोगता है।

गाथा ८५-१०८, द्विक्रियावादित्व का निराकरण -

यदि जीव अपने परिणामों के समान पुद्गल कर्मों को भी करता और भोगता है तो इससे दो द्रव्यो की क्रियाओ का अभेद हो जाएगा। यह जैन-मत के विरुद्ध है। जीव अपने भावो का कर्त्ता है, किन्तु अज्ञान मे अपने को परभाव का कर्त्ता मानता है।

गाथा १०९-१४१, कर्तृत्त्व के सम्बन्ध में व्यवहार और निश्चय -

व्यवहार नय म अज्ञान के कारण जीव पुद्गल कर्म का कर्त्ता है, किन्तु निश्चय नय मे कर्त्ता नही है।

गाथा १४२-१४४, समयसार -

निश्चय और व्यवहार नय है और समयसार सभी नयो से रहित है।

चउत्थो पुण्णपावाधियारो ४-१९-१६३ १०७-१२१

गाथा १४५-१५०, पुण्य और पाप की हेयता -

पुण्य और पाप दोनो ही बन्धकारक और ससार के कारण है। यदि पुण्य स्वर्ण की बेडी है तो पाप लोहे की जञ्जीर है, इसलिए दोनो ही त्यागने योग्य हैं। राग कर्म-बन्ध का कारण है और विराग मुक्ति का।

गाथा १५१-१५४, ज्ञान ही परमार्थ है -

ज्ञान परमार्थ है, क्योंकि वही शुद्ध आत्म-स्वरूप है। परमार्थ मे स्थित मुनि निर्वाण प्राप्त करते है। जो परमार्थ से बाह्य है, उनका व्रत, चारित्र, समिति और तप आदि सब कुछ अज्ञान-मूलक है और इसलिए ससार का कारण है।

गाथा १५५-१६३, मोक्ष-मार्ग -

मोक्ष-मार्ग निश्चय और व्यवहार के भेद से दो प्रकार का होता है। कर्मो का क्षय निश्चयमार्ग के अवलम्बन से होता है। उसमें सम्यक्त्व, चारित्र और ज्ञान मुख्य है। मिथ्यात्व, अज्ञान और कषाय संसार के कारण है।

पंचमो आसवाधियारो ५-१७-१८० १२२-१३३

गाथा १६४-१६९, सम्यग्दृष्टि को बन्ध नही होता -

मिथ्यात्व, अविरमण, कषाय और योग, जीव तथा पुद्गल के विकार है। पुद्गल के विकार जीव के ज्ञानावरणादि के कारण है और जीव के राग-द्वेष आदि परिणाम पुद्गल कर्मो के आने के कारण हैं। रागादि परिणाम न होने से सम्यग्दृष्टि अबन्धक कहा गया है। वह सत्ता मे पडे हुए कर्मो को जानता है। उदय मे आने पर वे कर्म झड जाते है।

गाथा १७०-१७२, बन्ध के कारण -

ज्ञानी मे बुद्धि-पूर्वक 'अज्ञानमय राग-द्वेष' का अभाव है, अत वह निरास्रव है। उसमे क्षयोपशम ज्ञान के कारण दर्शन, ज्ञान और चारित्र जघन्य भाव से परिणमन करते है, अत उसको कर्म का बन्ध तो होता है, किन्तु रागादि के अभाव की अपेक्षा उसे निरास्रव कहा गया है।

गाथा १७३-१८०, द्रव्यास्रव बन्ध का कारण नही है -

पूर्व मे, अज्ञान अवस्था मे बँधे हुए कर्म, सत्ता मे रहते हुए, भोगने योग्य नही होते। वे उदय मे आते ही भोग्य हो जाते है। उस समय जीव के राग-द्वेष आदि विकारी भाव होते है, उनके अनुसार कर्म-बन्ध होता है। केवल द्रव्य कर्म आस्रव का कारण नही है। शुद्ध नय से छूटने पर ही ज्ञानी कर्म-बन्ध करता है। वह बन्ध ज्ञानावरणादि रूप हो जाता है।

छट्ठमो संवराधियारो ६-१२-१९२ १३४-१३९

गाथा १८१-१८३, भेदविज्ञान -

उपयोग चैतन्य का परिणाम है। वह ज्ञान-स्वरूप है। भावकर्म, द्रव्य कर्म और नौकर्म पुद्गल के परिणाम है। वे जड-रूप है। उनमे प्रदेश-भेद है। उपयोग मे 'कर्म-

नौकर्म' अथवा 'कर्म-नौकर्म' मे उपयोग नही है। ज्ञान मे क्रोधादि नही है और क्रोधादि मे ज्ञान नही है। इस भेदविज्ञान के होने पर शुद्धात्मा अन्य किसी प्रकार का भाव नही करता।

गाथा १८४-१८९, शुद्धात्मोपलब्धि -

भेदविज्ञान से ज्ञानी अपने शुद्धात्मस्वरूप को नही छोडता और अज्ञानी राग को ही आत्मा मानता है। ज्ञानी शुद्धात्मा के ज्ञान से शुद्धात्मा को प्राप्त कर लेता है और अज्ञानी अशुद्धात्मा के ज्ञान से अशुद्धात्मा को प्राप्त करता है।

गाथा १९०-१९२, सवर का क्रम -

अध्यवसान ज्ञानी के राग-द्वेष के निमित्त नही होते। उसके कारण आस्त्रव नही होता, अत क्रमश कर्म, नौकर्म और ससार का निरोध होता है।

सत्तमो णिज्जराधियारो ७-४४-२३६ १४०-१७७

गाथा १९३-२००, ज्ञान वैराग्य का सामर्थ्य -

कर्म का उदय होने पर सुख-दु ख होत है। ज्ञानी उसमे राग-द्वेष नही करता, अत वह कर्म तो झड ही जाता है, उसके नवीन कर्मो का बन्ध नही होता। जैसे - वैद्य विष का उपयोग करने पर भी मरण को प्राप्त नही होता। वह अपने आपको ज्ञायक स्वभाव मानता है।

गाथा २०१-२०२, राग सम्यग्दर्शन का प्रतिबन्धक है -

जिसके स्वल्प भी रागादिभाव है, वह शास्त्रो का ज्ञाता भले ही हो, किन्तु वह आत्मा को नही जानता, न अनात्मा को जानता है, अत वह सम्यग्दृष्टि नही है।

गाथा २०३-२०६, ज्ञानपद का माहात्म्य -

शुद्ध नय का विषयभूत ज्ञान ही निर्वाण और सौख्य को देता है।

गाथा २०७-२१६, ज्ञानी अपरिग्रही है -

ज्ञानी परद्रव्य की इच्छा नही करता, वह तो उसका ज्ञाता-मात्र है, अत वह अपरिग्रही है। वह वर्त्तमान काल मे प्राप्त भोगो के प्रति विरागसम्पन्न है और भविष्य के भोगो के प्रति निष्काम है।

गाथा २१७-२२७, ज्ञानी को राग नही है -

ससार के भोगो और देह के सुख-दु खादि मे ज्ञानी के राग नहीं होता, अत उसे कर्म-पक नही लगता। अज्ञानी को सब द्रव्यो मे राग है, अत वह कर्म-पक में लिप्त होता है। भोगो को भोगते हुए भी ज्ञानी अज्ञानी नही होता। भोगोपभोग उसके

ज्ञान को अज्ञान नहीं कर सकते, वह स्वय अज्ञान-रूप परिणमन करके ज्ञान को अज्ञान-रूप कर सकता है।

गाथा २२८-२३६, अष्टांग सम्यग्दर्शन -

सम्यग्दृष्टि अष्टाग सम्यग्दर्शन से युक्त होता है। ये आठ अग निश्चय सम्यग्दर्शन के होते है।

गाथा २३७-२४६, बन्ध का निमित्त -

मिथ्यादृष्टि के कर्म का बन्ध होता है। उसके कर्मबन्ध मे मन-वचन-काय की क्रियाएँ अथवा सचित्त-अचित्त द्रव्यो का घात कारण नही है। उसके उपयोग मे जो रागादि भाव है, वे ही बन्ध का कारण है। सम्यग्दृष्टि के उपयोग मे रागादिभाव नही होते, अत उसके कर्मों का बन्ध नही होता।

गाथा २४७-२७१, मिथ्या अध्यवसान बन्ध का कारण है -

मै पर को मारता हूँ, जिलाता हूँ, सुख-दु ख देता हूँ, दूसरे मुझे मारते, जिलाते और सुख-दु ख देते है, यह मिथ्या अध्यवसान ही बन्ध का कारण है। सुख-दु ख, जीवन-मरण सब कर्माधीन है, जीव को मारो या न मारो, जीव के मारने का जो अध्यवसान है, उससे कर्म का बन्ध होता है। कर्म का बन्ध वस्तु से नही, अध्यवसान से होता है। अध्यवसान से ही पर मे आत्मबुद्धि होती है।

गाथा २७२-२७७, व्यवहार और निश्चय का दृष्टिभेद -

निश्चय नय आत्माश्रित है, व्यवहार नय पराश्रित है। पराश्रित अध्यवसान ही बन्ध का कारण है। इसी कारण निश्चय नय की दृष्टि से व्यवहार नय का निषेध किया गया है। पराश्रित दृष्टि का श्रद्धा-हीन शास्त्र-ज्ञान, भोग-निमित्तक धर्म मे निष्ठा और व्रतादिरूप चारित्र को कर्म-बन्ध का कारण माना है। निश्चय नय मे तो आत्मा ही ज्ञान, दर्शन, चारित्र, प्रत्याख्यान और सवर है।

गाथा २७८-२८२, ज्ञानी और अज्ञानी का भेद -

ज्ञानी आत्मा शुद्ध है। पर द्रव्य के सम्बन्ध मे रागादि होते है। उसमे वह रागादि रूप परिणमन करता है। वस्तु स्वभाव को जान कर ज्ञानी स्वय रागादिरूप परिणमन नही करता, अत वह उन भावो का कर्त्ता नही है। अज्ञानी उन भावो का कर्त्ता है, अत कर्मों का बन्ध करता है।

गाथा २८३-२८७, ज्ञानी पुद्गल द्रव्य का कर्त्ता नही है -

प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान के दो भेद है - द्रव्य और भाव। द्रव्य प्रतिक्रमण निमित्त है और भाव प्रतिक्रमण नैमित्तिक है। यही बात प्रत्याख्यान की है। अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान भी द्रव्य और भाव रूप से दो प्रकार का है। ये दोनों ही पुद्गल द्रव्य के परिणाम है। ज्ञानी इन्हे जानता है, करता नही। इसी प्रकार अध कर्म, औद्देशिक भोजन आदि भी पुद्गलमय है। ज्ञानी इनका कर्त्ता नही है।

णवमो मोक्खाधियारो ९-२०-३०७ २११-२२५

गाथा २८८-२९३, मोक्ष के लिए पुरुषार्थ -

कर्मों को जानने का अर्थ कर्मों से मुक्त होना नही है। कर्मों का स्वरूप, उनकी स्थिति, उदय, कारण और जीव के साथ उनका बन्ध, यह सब जानकारी एक बात है और उनसे मुक्ति अन्य बात है। मुक्त होने के लिए उसे कर्मबन्ध के कारणभूत राग-द्वेष का नाश करना होगा।

गाथा २९४-३००, भेदविज्ञान ही मोक्ष का उपाय है -

जीव और कर्मबन्ध दोनो के लक्षण भिन्न-भिन्न है। भेदविज्ञान रूपी छैनी से दोनो को विभक्त करके बन्ध का काटना चाहिए, तभी शुद्धात्मा प्राप्त हो सकती है। सतत ध्यान मे लाना चाहिए कि मै शुद्ध आत्मा हूँ, ज्ञातादृष्टा हूँ, इसके अतिरिक्त सब भाव पर है, वे मेरे नही है, अत त्याज्य है।

गाथा ३०१-३०५, परद्रव्य का ग्रहण करना अपराध है -

लोक मे भी पर के द्रव्य को ग्रहण करना चोरी कहलाती है। उसको अपराध माना जाता है और उसके लिए अवश्यम्भावी दण्ड निर्धारित है। परद्रव्य को ग्रहण करने पर आत्मा भी अपराधी कहा जाता है। जो व्यक्ति परद्रव्य को अपना नही मानता और शुद्ध आत्मा की सिद्धि करता है, वह नि शंकित रहता है और निरपराधी होता है।

गाथा ३०६, ३०७, निश्चय नय से प्रतिक्रमणादि विषकुम्भ है -

व्यवहार नय से कहा जाता है कि द्रव्य या भाव प्रतिक्रमणादि करने मे आत्मा शुद्ध होता है, किन्तु निश्चय नय मे प्रतिक्रमणादि पुद्गलाधीन है। वे बन्ध के कारण है। शुद्धात्म तत्त्व तो प्रतिक्रमणादि-रहित है। इस दृष्टि मे द्रव्य या भाव प्रतिक्रमणादि विषकुम्भ है और अप्रतिक्रमणादि अमृततुल्य है।

गाथा ३०८-३२०, मोक्ष पदार्थ की चूलिका -

जीव अपने निश्चित परिणामों से उत्पन्न होता है और उन परिणामो के साथ उसका तादात्म्य है। अपने परिणामों को छोड़ कर वह अन्य में नहीं जाता। जीव का अजीव के साथ कार्य-कारण भाव नहीं है; किन्तु अनादिकालीन अज्ञान से यह जीव प्रकृति को अपना मानता रहा है। फलत दोनों का निमित्त-नैमित्तिक भाव से बन्ध है और उससे ससार है। अपनत्व छोड़े बिना ससार से मुक्ति नही है। अज्ञानी और ज्ञानी में यह अन्तर है कि अज्ञानी कर्म के उदय को अपना जान कर भोगता है और ज्ञानी कर्म के उदय को अपना स्वभाव नही मानता, अत उसे भोगता नही, केवल जानता है। ज्ञानी पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष, कर्म और कर्मफल सब को जानता है, किन्तु उनका कर्त्ता नही है।

गाथा ३२१-३४४, जीव का कर्त्तृत्व -

कुछ एकान्तवादी जीव को षट्काय आदि का कर्त्ता मानते है, कुछ अन्य एकान्तवादी जीव को अकर्त्ता मानते है और सुख-दु ख, जीवन-मरण आदि का कर्त्ता कर्म को मानते है। अनेकान्त दृष्टि मे जीव कर्त्ता है और अकर्त्ता भी। अज्ञान दशा मे वह मिथ्यात्वादि भावो का कर्त्ता है और भेदविज्ञान होने पर आत्मा को ही आत्मा के रूप मे जानता है, अत वह मिथ्यात्वादि भावो का अकर्त्ता है।

गाथा ३४५-३६५, जीव का कर्त्तृत्व और भोक्तृत्व -

कुछ एकान्तवादी मानते है कि जो करता है, वह नही भोगेता और जो भोगता है, वह नही करता। आर्हत् मत अनेकान्त दृष्टि से जीव को 'द्रव्य पर्यायात्मक' मानता है। द्रव्य दृष्टि से जीव नित्य है और पर्याय दृष्टि से क्षणभगुर है, अर्थात् द्रव्य दृष्टि से देखा जाए तो जो करता है वही भोगता है और पर्याय दृष्टि मे जो करता है वह नही भोगता है। जीव पुण्य-पाप-रूप पुद्गल कर्म को करता है, मन-वचन-काय आदि पुद्गल कारणो द्वारा करता है, उनके सुख-दु ख रूप फल को भोगता है। यह निमित्त-नैमित्तिक व्यवस्था-मात्र है। जीव परद्रव्यो मे तन्मय नही होता। निश्चय नय से उसका दर्शन, ज्ञान और चारित्र गुण निर्मल रहता है। व्यवहार नय से जीव परद्रव्यो को जानता, देखता, छोड़ता और श्रद्धा करता है।

गाथा ३६६-३८२, रागादि अज्ञान भाव जीव मे होते हैं -

जीव मे दर्शन, ज्ञान, चारित्र गुण विद्यमान है। वे परद्रव्य मे नही है और न अज्ञान रूप है, अत उनको नष्ट नही किया जा सकता। रागादि अज्ञान भाव हैं,

अत वे दर्शनादि गुणों मे नही होते। कोई द्रव्य अन्य द्रव्य में गुण उत्पन्न नहीं कर सकता। रागादि की उत्पत्ति अज्ञान से अपने में ही होती है, वे अपने ही अशुद्ध परिणाम है। कोई व्यक्ति या द्रव्य दूसरे जीव में राग-द्वेष उत्पन्न नहीं करता। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द जीव को रागी-द्वेषी नहीं बनाते, जीव ही उनको शुभ-अशुभ मान कर अज्ञान से राग-द्वेष करता है।

गाथा ३८३-४०७, ज्ञानचेतना, कर्मचेतना, कर्मफल चेतना -

जो जीव कर्म में कर्तृत्त्व और कर्मफल में भोक्तृत्त्व मानता है और सुखी-दुखी होता है, वह आठ प्रकार के कर्मों का बन्ध करता है। यही कर्म चेतना और कर्मफल चेतना कहलाती है। ये दोनो अज्ञान चेतना है। इनसे आठ प्रकार के कर्मों का बन्ध होता है, इसलिए ज्ञानी पुरुष भूत, भविष्य और वर्त्तमान के समस्त पापों का प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना करके स्वात्मस्वरुप में स्थित होता है। वही आत्मा निश्चय से चारित्र-स्वरुप है। यही ज्ञानचेतना कहलाती है। ज्ञानी जानता है कि शब्द, शास्त्र, रूप, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, कर्म, धर्म, अधर्म, काल, आकाश, अध्यवसान ये सब ज्ञान नही है, अपितु ज्ञान ही दीक्षा, सयम, अगपूर्वगतसूत्र, धर्म, अधर्म और सम्यग्दृष्टि है। आत्मा परद्रव्य को न ग्रहण करता है, न उसका त्याग करता है।

गाथा ४०८-४१२, लिग मोक्षमार्ग नही है -

मुनि या गृहस्थ लिग मोक्षमार्ग नही है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र ही मोक्षमार्ग है। इस मोक्षमार्ग मे ही आत्मा को स्थित करना चाहिए, उसका ध्यान करना चाहिए और उसी मे विहार करना चाहिए।

गाथा ४१३-४१५, उपसहार -

जो जीव नाना प्रकार के लिगों मे ममत्व करते है, वे समयसार को नही जानते। व्यवहार नय मुनि और श्रावक इन दो लिगो को मोक्षमार्ग कहता है, किन्तु निश्चय नय किसी लिग को मोक्षमार्ग मे इष्ट नही मानता। शुद्ध आत्मा न श्रमण है न श्रावक है। जो व्यक्ति इस 'समयपाहुड' को अर्थ और तत्त्व से जान कर इसके अर्थ मे स्थित होता है, वह उत्तम सुख अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है।

ससार मे 'समयसार' से उत्तम कुछ नही है।

ॐ

नम समयसाराय

सिरि कुन्दकुन्दाइरिय

समय पाहुडं

अह मंगलायरणं

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुयमचलमणोवम गदिं पत्ते ।
वोॅच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं ।।१-१।।

सान्वय अर्थ - आचार्य कुन्दकुन्द कहते है कि मै (धुव) ध्रुव-शाश्वत (अचल)[१] अचल और (अणोवमं) अनुपम (गदिं) गति पंचम-गति को (पत्ते) प्राप्त हुए (सव्वसिद्धे) सभी सिद्धो को (वंदित्तु) नमस्कार करके (ओ) हे भव्यजीवो ! (सुदकेवलीभणिदं) श्रुत केवलियो द्वारा कहे गये (इण) इस (समयपाहुड) समयप्राभृत को (वोॅच्छामि) कहूँगा।

अर्थ - हे भव्यजीवो ! मै शाश्वत, अचल और (निखिलोपमारहित) पचम गति को प्राप्त सर्व सिद्धो को नमस्कार करके श्रुत केवलियो द्वारा कहे गये इस समयप्राभृत को कहूँगा।

विशेष *- वोॅच्छामि पद का प्रयोग आचार्य कुन्दकुन्द ने 'सुदकेवलीभणिद' की समीचीन सगति के लिए किया है। इस पद के प्रयोग से उन्होने कहा है कि मै श्रुतकेवली प्रणीत का वक्ता मात्र हूँ, कर्त्ता नही।*

'ओ' पद का प्रयोग आचार्य ने समस्त भव्य प्राणियो के सबोधनार्थ दिया है।

---

[१]अचल, अमल इत्यपि पाठान्तरम् ।

पढमो जीवाधियारो

स्वसमय और परसमय का लक्षण -

जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमय जाणे ।
[1]पौंग्गलकम्मपदेसट्ठिद च त जाण परसमयं ॥१-२-२

सान्वय अर्थ - (जीवो) **जो जीव** (चरित्तदसणणाणठिदो) **शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र मे स्थित है** (त) **उसे** (हि) **निश्चय से** (ससमय) **स्वसमय** (जाणे) **जानो** (च) **और** (पौंग्गलकम्मपदेसट्ठिद) **जो जीव पौद्गलिक कर्म प्रदेशो मे स्थित है** (त) **उसको** (परसमय) **पर समय** (जाण) **जानो।**

अर्थ - जो जीव शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र मे स्थित है, उसे निश्चय से स्वसमय जानो। और जो जीव पौद्गलिक कर्मप्रदेशो मे स्थित है, उसको परसमय जानो।

विशेष - यहाँ जाणे पद मुमुक्षुओ के लिए स्वेच्छापूर्वक जानने के आशय मे प्रयुक्त हुआ है, अर्थात् यह पद इच्छावाचक है और जाण पद आज्ञावाचक है।

जो जीव शुद्ध आत्माश्रित है, वे स्वसमय कहलाते है। अरहन्त और सिद्ध ही स्वसमय है, क्षीणमोह गुणस्थान तक जीव परसमय है।

---

[1]पोंग्गल शब्द जैन शौरसेनी प्राकृत का है। 'आत्मयोगे' ॥८-१-११६॥ (हैम) इत्युकारस्यौकार ।

'समय' की सुन्दरता -

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ संदरो लोगे ।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी[१] होदि ।।१-३-३

सान्वय अर्थ - (एयत्तणिच्छयगदो) **एकत्व निश्चय को प्राप्त जो** (समओ) **समय-शुद्ध आत्मा है वह** (लोगे) **लोक में** (सव्वत्थ) **सर्वत्र** (संदरो) **सुंदर है,** (तेण) **इसलिए** (एयत्ते) **एकत्व में** (बंधकहा) **दूसरे के साथ बन्ध की कथा - बात** (विसवादिणी) **विसंवाद करने वाली** (होदि) **होती है।**

अर्थ - एकत्व निश्चय को प्राप्त (निश्चय से अपने स्वभाव में स्थित) शुद्ध आत्मा ही लोक में सर्वत्र सुदर है (शोभा को प्राप्त होता है), इसलिए एकत्व में (दूसरे के साथ) बन्ध की कथा विसवाद करने वाली है।

विशेष - *जीव अपने स्वभाव मे स्थित रहने पर ही शोभा को प्राप्त होता है। (यद्यपि 'समय' शब्द से - धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल एव जीव - सभी द्रव्य लिये जाते है, तथापि यहाँ आत्मा अभिप्रेत है। पुद्गल कर्म के साथ जीव का बन्ध होने पर जीव मे विसवाद खडा होता है। इसी प्रकार धर्म, अधर्म आदि सभी अपने-अपने स्वभाव मे स्थित ही सुन्दर होते है।)*

[१] 'एतन्मते 'विसवादिणो' पुल्लिग एव पाठ। आत्मख्यातौ।' तात्पर्य

एकत्व की दुर्लभता -

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबधकहा ।
एयत्तस्सुवलभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ।।१-४-४

सान्वय अर्थ - (कामभोगबधकहा) **काम, भोग और बन्ध की कथा** (सव्वस्स वि) **सभी जीवो की** (सुदपरिचिदाणुभूदा) **सुनी हुई है, परिचित है और अनुभव मे आई हुई है** (णवरि) **केवल** (बिहत्तस्स) **रागादि से भिन्न** (एयत्तस्स) **एकत्व की** (उवलभो) **प्राप्ति** (सुलहो) **सुलभ** (ण) **नही है।**

अर्थ - काम (स्पर्शन और रसना इन्द्रिय), भोग (घ्राण, चक्षु और श्रोत्र) इन पाँचो इन्द्रियो के सम्बन्ध की और बन्ध की कथा सभी जीवो की सुनी हुई है, परिचित है और अनुभव मे आई हुई है, केवल रागादि से भिन्न एकत्व की प्राप्ति सुलभ नही है।

विशष - सुदपरिचिदाणुभूदा-सुद (ज्ञान), परिचिद (श्रद्धा), अणुभूदा (चारित्र) अर्थात् इस पद से यहाँ मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्र लिये गये है।

आचार्य की प्रतिज्ञा -

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण ।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केंज्ज[1] छलं ण घेत्तॅव्वं ।। १-५-५

सान्वय अर्थ - (त) उस पूर्वोक्त (एयत्तविहत्त) एकत्वविभक्त-अभेदरत्नत्रय रुप आत्म-स्वरुप को (अप्पणो) आत्मा के (सविहवेण) निज वैभव से (दाएह) मैं दिखलाता हूँ (जदि) यदि (दाएज्ज) मैं दिखाऊँ (पमाण) तो उसे प्रमाण मानना, (चुक्केंज्ज) यदि कही चूक जाऊँ तो (छल) विपरीत भाव-दुर्जन के समान विपरीत अभिप्राय - (ण) नही (घेत्तॅव्व) ग्रहण कर लेना।

अर्थ - (आचार्य कुन्दकुन्द कहते है कि) मै उस एकत्व विभक्त (अभेद रत्नत्रय रुप आत्मस्वरुप) को आत्मा के निजवैभव से दिखाता हूँ। यदि मै दिखाऊँ तो उसे प्रमाण मानना। यदि मै कही चूक जाऊँ तो विपरीत अभिप्राय ग्रहण न कर लेना।

विशेष *- वक्ता के कथन के अभिप्राय को उलटकर उस वाक्य के अर्थ को अनर्थ मे परिवर्तित कर देना 'छल' है।*

---

[1]उत्तम पुरुष, चुक्केंज्ज-क्रियातिपत्ति में ज्ज, ज्जा प्रत्यय जोड़ने के पूर्व सभी पुरुष और वचनों में अकार को एकार अर्थात् ए हो जाता है। चुक्क-चूकना। चुक्क-प्रमाद, प्राकृत प्रकाश ४-३४, पृ ४६

चुक्क-भ्रश धातु, चुक्क-भुल्ल ।। (हैम) ८-४-१७७

यही रुप विधिलिङ् में भी आता है - आर पिशल, पृ ६७९

शुद्धात्मा का स्वरुप -

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो ।
एव भणंति सुद्ध णादो जो सो दु सो चेव ।।१-६-६

सान्वय अर्थ - (जो दु) जो (जाणगो भावो) **ज्ञायक भाव है - वह** (ण वि) **न ही** (अप्पमत्तो) **अप्रमत्त** (होदि) **है** (ण) **न** (पमत्तो) **प्रमत्त है** (एव) **इस प्रकार उसे** (सुद्ध) **शुद्ध** (भणंति) **कहते है** (च) **और** (जो णादो) **जो ज्ञायक रुप से ज्ञात** हुआ (सो दु) **वह तो स्वरुप जानने की अवस्था में भी** (सो एव) **ज्ञायक ही है।**

अर्थ - जो ज्ञायक भाव है, वह न ही अप्रमत्त है और न प्रमत्त है। इस प्रकार उसे शुद्ध कहते है, और जो (ज्ञेयाकार अवस्था मे ज्ञायक रुप से) ज्ञात हुआ, वह तो (स्वरुप जानने की अवस्था में भी) ज्ञायक ही है।

व्यवहार और निश्चयनय -

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्तदंसणं णाणं।
ण वि णाण ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥ १-७-७

सान्वय अर्थ - (णाणिस्स) **ज्ञानी के** (चरित्तदसण णाण) **चारित्र, दर्शन, ज्ञान ये तीन भाव** (ववहारेण) **व्यवहार नय से** (उवदिस्सदि) **कहे जाते हैं, निश्चयनय से** (ण वि णाण) **न ही ज्ञान है** (ण चरित्त) **न चारित्र है** (ण दसण) **न दर्शन है वह तो** (जाणगो) **ज्ञायक** (सुद्धो) **शुद्ध भाव है।**

अर्थ - ज्ञानी के चारित्र, दर्शन, ज्ञान ये तीन भाव व्यवहार नय से कहे गये है। निश्चय नय से न ही ज्ञान है, न चारित्र है, न दर्शन है। वह तो शुद्ध ज्ञायक भाव है।

व्यवहार की आवश्यकता -

जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभास विणा दु गाहेदु ।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्क ।।१-८-८

सान्वय अर्थ - (जह) जैसे (अणज्जो) अनार्य को (अणज्जभास विणा दु) **अनार्य भाषा के बिना** (गाहेदु) **अर्थ ग्रहण कराना-समझाना** (ण वि सक्क) **शक्य नही है** (तह) **उसी प्रकार** (ववहारेण विणा) **व्यवहार के बिना** (परमत्थुवदेसण) **परमार्थ का उपदेश करना** (असक्क) **अशक्य है।**

अर्थ - जैसे अनार्य को अनार्य भाषा के बिना अर्थग्रहण कराना (आशय समझाना) शक्य नही है, उसी प्रकार व्यवहार नय के बिना परमार्थ का उपदेश करना अशक्य है।

श्रुत केवली -

जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिण तु केवल सुद्ध ।
त सुदकेवलिमिसिणो भणति लोयप्पदीवयरा ।। १-९-९

जो सुदणाण सव्व जाणदि सुदकेवलि तमाहु जिणा ।
सुदणाणमाद[1] सव्व जम्हा सुदकेवली तम्हा ।। १-१०-१०

सान्वय अर्थ - (जो) **जो जीव** (हि) **वास्तव मे** (सुदेण तु) **श्रुतज्ञान-भावश्रुत से** (इण) **इस अनुभवगोचर** (केवल सुद्ध) **केवल एक शुद्ध** (अप्पाण) **आत्मा का** (अहिगच्छादि) **अनुभव करता है** (त) **उसको** (लोयप्पदीवयरा) **लोक के प्रकाशक** (इसिणो) **ऋषि** (सुदकेवलि) **श्रुतकेवली-निश्चय श्रुतकेवली** (भणति) **कहते है** (जो) **जो जीव** (सव्व) **समस्त** (सुदणाण) **श्रुतज्ञान को-द्वादशाङ्ग द्रव्यश्रुत को** (जाणदि) **जानता है** (त) **उसे** (जिणा) **जिनदेव** (सुदकेवलि) **श्रुतकेवली-व्यवहार श्रुतकेवली** (आहु) **कहते है** (जम्हा) **क्योंकि** (सव्व) **सम्पूर्ण** (सुदणाण) **श्रुतज्ञान-द्रव्यश्रुतज्ञान के आधार से उत्पन्न भावश्रुत** (आद) **आत्मा है** (तम्हा) **इस कारण** (सुदकेवली) **श्रुतकेवली है।**

अर्थ - जो जीव वास्तव मे भावश्रुत से अनुभवगोचर केवल एक शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है, उसको लोक प्रकाशक ऋषि (निश्चय) श्रुतकेवली कहते है

जो जीव समस्त श्रुतज्ञान को (द्वादशाङ्ग द्रव्यश्रुत को) जानता है, उसे जिनदेव (व्यवहार) श्रुतकेवली कहते है। क्योंकि सम्पूर्ण श्रुतज्ञान (द्रव्य श्रुतज्ञान के आधार से उत्पन्न भावश्रुत) आत्मा है। इस कारण उसे श्रुतकेवली कहते है।

---

[1] णाण आदा सव्व तथा णाण अप्पा सव्व इत्यपि पाठान्तरम्। जैन शौरसेनी में आत्मा के लिए आद शब्द भी मिलता है । - पिशल, पृ १६५

निश्चयनय भूतार्थ है और व्यवहार नय अभूतार्थ है -

ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ ।
भूदत्थ मस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो ॥१-११-११

सान्वय अर्थ - (ववहारो) **व्यवहार नय** (अभूदत्थो) **अभूतार्थ है** (दु) **और** (सुद्धणओ) **शुद्धनय** (भूदत्थो) **भूतार्थ है ऐसा** (देसिदो) **ऋषियों ने बताया है** (जीवो) **जो जीव** (भूदत्थमस्सिदो) **भूतार्थ के आश्रित है** (खलु) **निश्चय ही वह** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (हवदि) **है।**

अर्थ - व्यवहार नय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है, (ऐसा ऋषियो ने) बताया है। जो जीव भूतार्थ के आश्रित है - भूतार्थ का आश्रय लेता है, निश्चय ही वह सम्यग्दृष्टि है।

व्यवहार नय भी प्रयोजनवान है -

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहि ।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ठिदा भावे ॥१-१२-१२

सान्वय अर्थ - (परमभावदरिसीहि) **परमभाव-शुद्धात्मभाव के दर्शियो के द्वारा** (सुद्धादेशो) **शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला** (सुद्धो) **शुद्धनय-निश्चयनय** (णादव्वो) **जानने योग्य है** (पुण) **और** (जे दु) **जो जीव** (अपरमेभावे) **अशुद्ध भाव मे - श्रावक की अपेक्षा शुभोपयोग मे एव प्रमत्त अप्रमत्त की अपेक्षा भेदरत्नत्रय मे** (ठिदा) **स्थित है** (ववहार देसिदा) **उनके लिये व्यवहार नय का उपदश किया गया है।**

अर्थ - शुद्धात्मभाव क दर्शियो के द्वारा शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला शुद्धनय-निश्चयनय जानने योग्य है। और जो जीव अशुद्ध भाव मे (श्रावक की अपेक्षा शुभोपयोग मे एव प्रमत्त-अप्रमत्त की अपेक्षा भेदरत्नत्रय मे) स्थित है, उनके लिए व्यवहार नय का उपदेश किया गया है।

शुद्धनय से जानना सम्यक्त्व है -

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपाव च ।
आसवसवरणिज्जरबधो मोॅक्खो य सम्मत्त ।।१-१३-१३

सान्वय अर्थ - (भूदत्थेणाभिगदा) **भूतार्थ - शुद्ध निश्चय नय से जाने हुए** (जीवाजीवा य) **जीव और अजीव** (पुण्णपाव च) **पुण्य और पाप** (आसवसवरणिज्जरबधो) **आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध** (मोॅक्खो य) **और मोक्ष** (सम्मत्त) **सम्यक्त्व है।**

अर्थ - शुद्ध निश्चयनय से जाने हुए जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, सवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष ये नवतत्व सम्यक्त्व है (अभेदोपचार से सम्यक्त्व का विषय और कारण होने से सम्यक्त्व है अथवा शुद्धनय से नवतत्त्वो को जानने से आत्मा की अनुभूति होती, अत सम्यक्त्व है)

विशेष - *इन्ही नव तत्त्वो के आधार पर समयसार ग्रथ की रचना की गई है।*

शुद्धनय का लक्षण -

जो पस्सदि अप्पाण अबद्धपुट्ठ अणण्णय णियद ।
अविसेसमसजुत्त त सुद्धणयं वियाणाहि ।।१-१४-१४

सान्वय अर्थ - (जो) **जो नय** (अप्पाण) **आत्मा-शुद्धात्मा को** (अबद्धपुट्ठ) **बन्धरहित और पर के स्पर्श से रहित** (अणण्णय) **अन्यत्व रहित** (णियद) **चलाचलता-रहित** (अविसेस) **ज्ञान दर्शनादि के भेद से रहित** (असजुत्त) **अन्य के सयोग से रहित ऐसे छह भावरुप** (पस्सदि) देखता है (त) उसे (सुद्धणय) **शुद्धनय** (वियाणाहि) **जानो।**

अर्थ - जो नय शुद्धात्मा को बन्ध रहित, पर के स्पर्श से रहित, अन्यत्वरहित, नियत (चलाचलतादि रहित) ज्ञान दर्शनादि के भेद से रहित और अन्य के सयोग से रहित ऐसे छह भावरुप (आत्मा से) देखता है, उसे शुद्धनय जानो।

जो आत्मा को देखता है वही जिनशासन को जानता है -

जो पस्सदि अप्पाण अबद्धपुट्ठ अणण्णमविसेसं ।
[1]अपदेस-संत-मज्झ पस्सदि जिणसासण सव्वं ॥१-१५-१५

सान्वय अर्थ - (जो) जो भव्यात्मा (अप्पाण) आत्मा को (अबद्धपुट्ठ) अबद्ध और अस्पृष्ट (अणण्ण) अनन्य और (अविसेस) अविशेष, तथा उपलक्षण से पूर्वोक्त गाथा मे कथित नियत और असंयुक्त (अपदेस) अखण्ड एव (सत) शांत भावस्थित (मज्झ) आत्मा मे (पस्सदि) देखता है, जानता है, अनुभव करता है - वही आत्मा (सव्व) सम्पूर्ण (जिणसासणं) जिनशासन को (पस्सदि) जानता है।

अर्थ - जो भव्यात्मा आत्मा को अबद्ध, अस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष (तथा उपलक्षण मे पूर्वोक्त गाथा मे कथित नियत और असयुक्त) निरश-अखण्ड एव परम शान्त भावस्थित आत्मा मे देखता है, जानता है, अनुभव करता है - वही आत्मा सम्पूर्ण जिनशासन - स्वसमय और परसमय को जानता है।

---

[1] 'शुद्धनयादेशात् उपयोग स्वभावस्य अत्मन अप्रदशत्वम्। - राजवा ५/८/२२

रत्नत्रय ही आत्मा है -

दसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्च ।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाण चेव णिच्छयदो ॥१-१६-१६

सान्वय अर्थ - (साहुणा) **साधु को** (दसणणाणचरित्ताणि) **दर्शन, ज्ञान और चारित्र की** (णिच्च) **निरन्तर** (सेविदव्वाणि) **सेवन-उपासना करनी चाहिये** (पुण च) **और** (ताणि तिण्णि वि) **उन तीनो को** (णिच्छयदो) **निश्चय नय से** (अप्पाण एव) **एक आत्मा ही** (जाण) **जानो।**

अर्थ - साधु को (व्यवहार नय मे) सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की सदा ही उपासना करनी चाहिये, और उन तीनो को निश्चय नय से एक ही आत्मा जानो।

रत्नत्रय के सेवन का क्रम -

जह णाम को वि पुरिसो रायाण जाणिदूण सद्दहदि ।
तो त अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ।।१-१७-१७

एव हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो ।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोॅक्खकामेण ।।१-१८-१८

सान्वय अर्थ - (जह णाम) **जैसे** (को वि) **कोई** (अत्थत्थीओ पुरिसो) **धन का इच्छुक पुरुष** (रायाण) **राजा को - छत्रचमर आदि राजचिह्नो से** (जाणिदूण) **जानकर** (सद्दहदि) **श्रद्धा करता है - निश्चय करता है** (पुणो तो) **और उसके बाद** (त) **उसको** (पयत्तण) **प्रयत्नपूर्वक** (अणुचरदि) **सेवा करता है** (एव हि) **इसी प्रकार** (मोॅक्खकामेण) **मोक्ष के इच्छुक को** (जीवराया) **जीव रुपी राजा का** (णादव्वो) **ज्ञान करना चाहिये** (तह य) **तथा** (सद्दहेदव्वो) **श्रद्धान करना चाहिये** (पुणो य) **फिर** (सो चेव दु) **उसी का** (अणुचरिदव्वो) **अनुचरण-अनुभव करना चाहिये।**

अर्थ - जैसे कोई धन का इच्छुक पुरुष राजा को (छत्र, चमर आदि राजचिह्नो से) पहचान कर श्रद्धान-निश्चय करता है और उसके बाद प्रयत्नपूर्वक उसकी सेवा करता है। इसी प्रकार मोक्षार्थी पुरुष को जीव रुपी राजा का ज्ञान करना चाहिये तथा उसी का श्रद्धान करना चाहिये फिर उसी का अनुचरण-अनुभव करना चाहिये।

आत्मा तब तक अज्ञानी रहता है -

कम्मे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहकं च[1] कम्म णोकम्मं ।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ।।१-१९-१९

सान्वय अर्थ - (जा) **जब तक इस आत्मा की** (कम्मे) **कर्म में - द्रव्यकर्म भावकर्म मे** (णोकम्मम्हि य) **और शरीरादि नोकर्म मे** (अह) **यह मैं हूँ** (च) **और** (अहक) **मुझमे** (कम्म णोकम्म इदि) **कर्म और नोकर्म है** (एसा खलु बुद्धी) **ऐसी बुद्धि है** (ताव) **तब तक** (अप्पडिबुद्धो) **अप्रतिबुद्ध-अज्ञानी** (हवदि) **है।**

अर्थ - जब तक इस आत्मा की द्रव्यकर्म, भावकर्म और शरीगदि नोकर्म में 'यह मै हूँ' और 'मुझ में कर्म और नोकर्म है' ऐसी बुद्धि रहती है, तब तक यह आत्मा अज्ञानी है (रहता है)।

---

[1]महाराष्ट्री प्राकृत में अहअ, जैन महाराष्ट्री में अहय तथा अर्धमागधी में अहग रुप बनता है। अर्धमागधी शौरसेनी और जैन महाराष्ट्री में 'क' लुप्त हो जाता है। अशोक के शिलालेख में 'हक मिलता है ।
— पिशल

ज्ञानी और अज्ञानी जीव की पहचान -

> अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं ।
> अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा ।।१-२०-२०
>
> आसि मम पुव्वमेदं अहमेदं चावि पुव्वकालम्हि ।
> हेहिदि पुणो वि मज्झं अहमेदं चावि होस्सामि ।।१-२१-२१
>
> एवं तु असंभूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो।
> भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो ।।१-२२-२२

सान्वय अर्थ - (अण्णं) अपने से अन्य (जं) जो (सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा) स्त्री-पुत्रादिक सचित्त-चेतन, धन-धान्यादिक अचित्त-अचेतन और ग्रामनगरादि मिश्र चेतनाचेतन (परदव्वं) जो परद्रव्य है, इनके सम्बन्ध मे ऐसा समझे कि (अहमेदं) यह मैं हूँ (एदमहं) ये द्रव्य मुझ स्वरुप है (अहमेदस्सेव होमि) मैं इसका ही हूँ (एदं मम) यह मेरा है (मम पुव्वमेदं आसि) यह पूर्व मेरा था (पुव्वकालम्हि अहं चावि एदं) पूर्वकाल मे मैं भी इस रुप था (पुणो वि मज्झं होहिदि) भविष्य मे भी ये मेरे होगे (अहमेदं चावि होस्सामि) भविष्य मे मैं भी इस रुप होऊँगा (एवं तु) इस प्रकार का (असंभूदं) मिथ्या (आदवियप्पं) आत्म-विकल्प (करेदि) जो करता है (संमूढो) वह अज्ञानी-बहिरात्मा है (दु) और जो (भूदत्थं) भूतार्थ-परमार्थ वस्तुस्वरुप को (जाणंतो) जानता हुआ (तं) वैसा झूठा विकल्प (ण करेदि) नही करता, वह (असंमूढो) ज्ञानी-अन्तरात्मा है।

अर्थ - अपने से अन्य जो स्त्री-पुत्रादिक चेतन, धन-धान्यादिक अचेतन और ग्रामनगरादि चेतनाचेतन परद्रव्य है, इनके सम्बन्ध मे ऐसा समझे कि 'यह मै हूँ', 'यह द्रव्य मुझ स्वरुप है', 'मै इसका ही हूँ', 'यह मेरा है', 'यह पूर्व मे मेरा था', 'पूर्वकाल मे मै भी इस रुप था', 'भविष्य मे भी यह मेरा होगा', 'भविष्य मे मै भी इस रुप होऊँगा' इस प्रकार का मिथ्या आत्म विकल्प जो करता है, वह अज्ञानी (बहिरात्मा) है; और जो परमार्थ वस्तुस्वरुप को जानता हुआ वैसा झूठा विकल्प नही करता, वह ज्ञानी अन्तरात्मा है।

आचार्य द्वारा प्रतिबोध -

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिण भणदि पोंग्गल दव्व ।
बद्धमबद्ध च तहा जीवो बहुभावसजुत्तो ।।१-२३-२३

सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्च ।
किह सो पोंग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं ।।१-२४-२४

जदि सो पोंग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागद इदरं ।
तो सक्का वोंत्तु जे मज्झमिण पोंग्गल दव्व ।।१-२५-२५

सान्वय अर्थ - (अण्णाणमोहिदमदी) **अज्ञान से जिसकी बुद्धि मोहित है** (बहुभावसजुत्तो) **मिथ्यात्व रागादि अनेक भावो से युक्त** (जीवो) **जीव** (भणदि) **कहता है कि** (इण) **यह** (बद्ध) **बद्ध-सम्बद्ध देहादि** (तहा अबद्ध च) **तथा अबद्ध देह से भिन्न स्त्री पुत्रादि** (पोंग्गल दव्व) **पुद्गल द्रव्य** (मज्झ) **मेरा है,** किन्तु (सव्वण्हुणाणदिट्ठो) **सर्वज्ञ के ज्ञान मे देखा गया जो** (णिच्च उवओगलक्खणो) **सदा उपयोगलक्षण वाला** (जीवो) **जीव है** (सो) **वह** (पोंग्गलदव्वीभूदो) **पुद्गलद्रव्यरुप** (किह) **कैसे हो सकता है** (ज) **जो** (भणसि) **कहता है कि** (मज्झमिण) **यह पुद्गल द्रव्य मेरा है** (जदि) **यदि** (सो) **जीवद्रव्य** (पोंग्गलदव्वीभूदो) **पुद्गलद्रव्य रुप हो जाय और** (इदर) **पुद्गल द्रव्य** (जीवत्तमागद) **जीवत्व को प्राप्त हो जाय** (तो) **तो** (वोंत्तु सक्का) **कहा जा सकता** (जे) **कि** (इण पोंग्गल दव्व) **यह पुद्गल द्रव्य** (मज्झ) **मेरा है।**

अर्थ - *अज्ञान से मोहित बुद्धि वाला और मिथ्यात्व रागादि अनेक भावो से युक्त जीव कहता है कि यह बद्ध-सम्बद्ध देहादि तथा अबद्ध देह से भिन्न स्त्री-पुत्रादि पुद्गल द्रव्य मेरा है, किन्तु सर्वज्ञ के ज्ञान मे देखा गया जो सदा उपयोगलक्षण वाला जीव है, वह पुद्गल द्रव्य रुप कैसे हो सकता है, जो कहता है कि यह पुद्गल द्रव्य मेरा है। यदि जीवद्रव्य पुद्गल द्रव्य रुप हो जाय और पुद्गल द्रव्य जीवत्व को प्राप्त हो जाय तो कहा जा सकता था कि यह पुद्गल द्रव्य मेरा है।*

शिष्य पुन शका करता है -

जदि जीवो ण सरीर तित्थयरायरियसथुदी चेव ।
सव्वा वि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो ॥१-२६-२६

सान्वय अर्थ - कोई अज्ञानी शिष्य पूछता है - (जदि) **यदि** (जीवो) **जीव** (सरीर) **शरीर** (ण) **नही है तो** (तित्थयरायरियसथुदी) **तीर्थकरो और आचार्यों की स्तुति** (सव्वा वि) **सभी** (मिच्छा) **मिथ्या** (हवदि) **है** (तेण दु) **इसलिए हम मानते है कि** (आदा) **आत्मा** (देहाचेव) **देह ही** (हवदि) **है।**

अर्थ - (कोई अज्ञानी शिष्य कहता है कि) यदि जीव शरीर नही है तो तीर्थकरो और आचार्यों की स्तुति करना सभी मिथ्या हो जायगा, इसलिए (हम मानते है कि) आत्मा देह ही है।

आचार्य उत्तर देते हैं -

ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को ।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एक्कट्ठो ।।१-२७-२७

सान्वय अर्थ - **शिष्य का समाधान करते हुए आचार्य कहते है** - (ववहारणओ) **व्यवहार नय** (भासदि) **कहता है कि** (जीवो देहो य) **जीव और देह** (खलु) **वस्तुत** (एक्को) **एक** (हवदि) **है और** (णिच्छयस्स दु) **निश्चय नय के अभिप्राय के अनुसार तो** (जीवो देहो य) **जीव और देह** (कदावि) **कभी** (एक्कट्ठो) **एक पदार्थ** (ण) **नही हैं।**

अर्थ - (शिष्य का समाधान करते हुए आचार्य कहते है) - व्यवहार नय कहता है कि जीव और देह वस्तुत एक है और निश्चय नय के अभिप्राय के अनुसार तो जीव और देह कभी एक पदार्थ नही है।

व्यवहार नय से केवली की स्तुति -

इणमण्णं जीवादो देहं पोंग्गलमय थुणित्तु मुणि ।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं ।।१-२८-२८

सान्वय अर्थ - (जीवादो) **जीव से** (अण्ण) **भिन्न** (इण) **इस** (पोंग्गलमय देह) ***पुद्गलमय देह की*** *(थुणित्तु)* ***स्तुति करके*** *(मुणि)* ***मुनि*** *(मण्णदि हु)* ***ऐसा मानता है कि*** *(मए)* ***मैने*** *(केवली भयव)* ***केवली भगवान की*** *(सथुदो)* ***स्तुति की और*** *(वदिदो)* ***वंदना की।***

अर्थ - जीव से भिन्न इस पुद्गलमय देह की स्तुति करके मुनि ऐसा मानता है कि मैने केवली भगवान की स्तुति की और वदना की।

निश्चयनय से केवली की स्तुति -

तं णिच्छये ण जुञ्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो ।
केवलिगुणे थुणदि जो सो तच्चं केवलि थुणदि ॥१-२९-२९

सान्वय अर्थ - (त) **वह स्तुति** (णिच्छये) **निश्चय नय में** (ण जुञ्जदि) **उचित नहीं है क्योंकि** (सरीरगुणा) **शरीर के शुक्ल कृष्णादि गुण** (केवलिणो) **केवली भगवान के** (ण हि होंति) **नही होते** (जो) **जो** (केवलिगुणे) **केवली भगवान के गुणों की** (थणुदि) **स्तुति करता है** (सो) **वह** (तच्च) **परमार्थ से** (केवलि) **केवली भगवान की** (थुणदि) **स्तुति करता है।**

अर्थ - वह स्तुति निश्चय नय में उचित नही है क्योकि शरीर के (शुक्ल कृष्णादि) गुण केवली भगवान के नही होते। जो केवली भगवान के गुणों की स्तुति करता है, वह परमार्थ से केवली भगवान की स्तुति करता है।

देह-स्तुति गुण-स्तुति नहीं है -

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि ।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति ।।१-३०-३०

सान्वय अर्थ - (जह) जैसे (णयरम्मि) नगर का (वण्णिदे वि) वर्णन करने पर भी (रण्णो) राजा का भी (वण्णणा) वर्णन (कदा) किया हुआ (ण होदि) नहीं होता, इसी प्रकार (देहगुणे) देह के गुणो की (थुव्वते) स्तुति करने पर (केवलिगुणा) केवली भगवान के गुणो की (ण थुदा होंति) स्तुति नहीं होती।

अर्थ - जैसे नगर का वर्णन करने पर भी राजा का वर्णन किया हुआ नही होता, इसी प्रकार देह के गुणो की स्तुति करने पर केवली भगवान के गुणों की स्तुति नहीं होती।

आत्मज्ञानी ही जितेन्द्रिय है -

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आद ।
तं खलु जिदिदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू ।।१-३१-३१

सान्वय अर्थ - (जो) **जो** (इदिये) **इन्द्रियो को** (जिणित्ता) **जीतकर** (णाणसहावाधिय) **ज्ञान स्वभाव से अधिक-शुद्धज्ञान-चेतना गुण से परिपूर्ण** (आद) **आत्मा को** (मुणदि) **जानता है - अनुभव करता है** (त) **उस पुरुष को** (जे) **जो** (णिच्छिदा) **निश्चय नय मे स्थित** (साहू) **साधु है** (ते) **वे** (खलु) **निश्चय ही** (जिदिदिय) **जितेन्द्रिय** (भणति) **कहते है।**

अर्थ - जो इन्द्रियों को जीतकर ज्ञानस्वभाव से अधिक (शुद्धज्ञानचेतना गुण से परिपूर्ण) आत्मा को जानता है (अनुभव करता हैं) उस पुरुष को जो निश्चय नय मे स्थित साधु है, वे निश्चय ही जितेन्द्रिय कहते है।

मोहविजेता साधु -

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधिय मुणदि आदं ।
तं जिदमोह साहुं परमट्ठवियाणया विंति ।।१-३२-३२

सान्वय अर्थ - (जो तु) **जो** (मोह) **मोह को** (जिणित्ता) **जीत कर** (णाणसहावाधियं) **ज्ञान स्वभाव से अधिक - शुद्ध ज्ञानचेतना गुण से परिपूर्ण** (आद) **आत्मा को** (मुणदि) **जानता है - अनुभव करता है** (त साहु) **उस साधु को** (परमट्ठवियाणया) **परमार्थ के जानने वाले पूर्वाचार्य** (जिदमोह) **मोहविजेता** (विंति) **कहते है।**

अर्थ - जो (साधु) मोह को जीतकर ज्ञान स्वभाव से अधिक (शुद्धज्ञानचेतना गुण से परिपूर्ण) आत्मा को जानता है (अनुभव करता है), उस साधु को परमार्थ के जानने वाले पूर्वाचार्य मोहविजेता कहते है।

क्षीणमोह साधु -

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हवेज्ज साहुस्स ।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहि ।।१-३३-३३

सान्वय अर्थ - (जइया) **जब** (जिदमोहस्स) **जिसने मोह जीत लिया है ऐसे** (साहुस्स) **साधु का** (मोहो) **मोह** (खीणो) **क्षीण** (हवेज्ज) **हो जाता है** (तइया) **तब** (णिच्छयविदूहि) **निश्चय के जानने वाले** (सो) **उस साधु को** (हु) **निश्चय से** (खीणमोहो) **क्षीणमोह** (भण्णदि) **कहते हैं।**

अर्थ - जब जिसने मोह जीत लिया है उस साधु का मोह क्षीण हो जाता है, तब निश्चय के जानने वाले उस साधु को निश्चय ही क्षीणमोह कहते हैं।

प्रत्याख्यान ज्ञान है -

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खादी परे त्ति णादूण ।
तम्हा पच्चक्खाण णाण णियमा मुणेदव्व ।।१-३४-३४

सान्वय अर्थ - (जम्हा) **यत** (सव्वे भावा) **सब भावो को** (परे) **पर है** (त्ति णादूण) **यह जानकर** (पच्चक्खादी) **त्याग देता है** (तम्हा) **इस कारण** (पच्चक्खाण) **प्रत्याख्यान** (णाण) **ज्ञान ही है ऐसा** (णियमा) **नियम से - निश्चय से** (मुणेदव्व) **मननपूर्वक जानना चाहिए।**

अर्थ - यत सब भावो को पर है यह जानकर त्याग देता है। इस कारण प्रत्याख्यान ज्ञान ही है, ऐसा निश्चय से (मननपूर्वक) जानना चाहिए।

ज्ञानी द्वारा परभावो का त्याग -

जह णाम को वि पुरिसो परदव्वमिण ति जाणिदुं मुयदि ।
तह सव्वे परभावे णादूण विमुञ्चदे णाणी ।।१-३५-३५

सान्वय अर्थ - (जह णाम) **जैसे लोक में** (को वि पुरिसो) **कोई पुरुष** (इण परदव्व) **यह परद्रव्य है** (ति जाणिदुं) **ऐसा जानकर** (मुयदि) **उसे त्याग देता है** (तह) **उसी प्रकार** (णाणी) **ज्ञानी पुरुष** (सव्वे परभावे) **समस्त परभावो को** (णादूण) **ये परभाव हैं ऐसा जानकर उन्हे** (विमुञ्चदे) **छोड़ देता है।**

अर्थ - जैसे लोक में कोई पुरुष यह पर द्रव्य है ऐसा जानकर उसे त्याग देता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष समस्त परभावों को, ये परभाव है ऐसा जान कर उन्हे छोड देता है।

मोह से निर्ममत्व -

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को ।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विति ।।१-३६-३६

सान्वय अर्थ - (बुज्झदि) **जो ऐसा जानता है कि** (मोहो) **मोह** (मम) **मेरा** (को वि णत्थि) **कुछ भी नही है** (एक्को) **एक** (उवओग एव अह) **ज्ञान-दर्शनोपयोग रुप ही मैं हूँ** (त) **इस प्रकार जानने को** (समयस्स) **सिद्धान्त के अथवा आत्मतत्त्व के** (वियाणया) **जानने वाले पूर्वाचार्य** (मोहणिम्ममत्त) **मोह से निर्ममत्व** (विति) **कहते हैं।**

अर्थ - जो ऐसा जानता है कि मोह मेरा कुछ भी नही है, एक ज्ञान-दर्शनोपयोग रुप ही मै हूँ, इस प्रकार जानने को सिद्धान्त या आत्मस्वरुप के ज्ञाता पूर्वाचार्य मोह से निर्ममत्व कहते है।

धर्मद्रव्य से निर्ममत्व -

णत्थि हि मम धम्मादी बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को ।
त धम्मणिम्ममत्त समयस्स वियाणया विति ।।१-३७-३७

सान्वय अर्थ - (बुज्झदि) **जो ऐसा जानता है कि** (धम्मादी) **धर्म आदि द्रव्य** (मम हि णत्थि) **निश्चय ही मेरे नही है** (एक्को) **एक** (उवओग एव अह) **उपयोग रुप ही मै हूँ** (त) **ऐसा जानने को** (समयस्स) **सिद्धान्त या आत्मतत्त्व के** (वियाणया) **जानने वाले पूर्वाचार्य** (धम्मणिम्ममत्त) **धर्म द्रव्य से निर्ममत्व** (विति) **कहते है।**

अर्थ - जो ऐसा जानता है कि धर्म आदि द्रव्य निश्चय ही मेरे नही है, एक ज्ञान-दर्शनोपयोग रुप ही मै हूँ। इस प्रकार जानने को सिद्धान्त या आत्मतत्त्व के जाननेवाले पूर्वाचार्य धर्म द्रव्य स निर्ममत्व कहत है।

उपसहार -

अहमेक्को[1] खलु सुद्धो दसणणाणमइओ सयारुवी ।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्ण परमाणुमेत्त पि ॥१-३८-३८

सान्वय अर्थ - **ज्ञानी आत्मा यह जानता है कि** (अह) **मै** (एक्को) **एक हूँ** (खलु) **निश्चय ही** (सुद्धो) **शुद्ध हूँ** (दसणणाणमइओ) **दर्शन ज्ञानमय हूँ** (सयारुवी) **रुप, रस, गन्ध, स्पर्श के अभाव के कारण सदा अरुपी हूँ** (किञ्चि वि अण्ण) **कोई भी परद्रव्य** (परमाणुमेत्त पि) **परमाणु मात्र भी** (मज्झ) **मेरा** (ण वि अत्थि) **नही है।**

अर्थ - (ज्ञानी आत्मा यह जानता है कि) मै एक हूँ, निश्चय ही शुद्ध हूँ, दर्शन ज्ञानमय हूँ, (रुप, रस, गध, स्पर्श के अभाव के कारण) सदा अरुपी हूँ, कोई भी अन्य पर द्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा नही है।

इदि पढमो जीवाधियारो समत्तो

[1] सभी प्राकृत प्रतियो मे एक्का है। पिशल पृ ६४४

दुदियो जीवाजीवाधियारो

जीव के सम्बन्ध मे विभिन्न मान्यतायें -

अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई ।
जीव अज्झवसाणं कम्म च तहा परुविति ॥२-१-३९

अवरे अज्झवसाणे सु तिव्वमंदाणुभावग जीव ।
मण्णति तहा अवरे णोकम्म चावि जीवो त्ति ॥२-२-४०

कम्मस्सुदयं जीव अवरे कम्माणुभागमिच्छति ।
तिव्वत्तणमदत्तण गुणेहि जो सो हवदि जीवो ॥२-३-४१

जीवो कम्म उहय दोण्णि वि खलुके वि जीवमिच्छति ।
अवरे सजोगेण दु कम्माण जीवमिच्छति ॥२-४-४२

एव विहा बहुविहा परमप्पाण वदति दुम्मेहा ।
ते ण परमट्ठवादी णिच्छयवादीहि णिद्दिट्ठा ॥२-५-४३

सान्वय अर्थ - (अप्पाणमयाणता) आत्मा को न जानते हुए (परप्पवादिणो) परद्रव्य को आत्मा कहने वाले (केई मूढा दु) कोई मूढ़ अज्ञानी तो (अज्झवसाण) रागादि अध्यवसान को (तहा च) और (कम्म) कर्म को (जीव) जीव (परुविति) कहते है (अवरे) अन्य कुछ लोग (अज्झवसाणेसु) रागादि अध्यवसानो मे (तिव्वमदाणुभावग) तीव्र, मन्द तारतम्य स्वरुप शक्ति-माहात्म्य को (जीव) जीव (मण्णति) मानते है (तहा) तथा (अवरे) अन्य कोई (णोकम्म) नोकर्म-शरीरादि को (चावि) भी (जीवो त्ति) जीव है ऐसा मानते है (अवरे) अन्य कुछ लोग (कम्मस्सुदय) कर्म के उदय को (जीव) जीव मानते है, कुछ लोग (जो) जो (तिव्वत्तणमदत्तणगुणेहि) तीव्रता-मन्दता रुप गुणो से भेद को प्राप्त होता है (सो) वह (जीवो) जीव (हवदि) है इस प्रकार (कम्माणुभाग) कर्मों के अनुभाग को (इच्छति) जीव है ऐसा

इष्ट करते है - मानते है (के वि) **कोई** (जीवोकम्म उहय) **जी**
(दोण्णि वि) **दोनों मिले हुओ को ही** (खलु जीवमिच्छति) **जी**
(अवरे दु) **और दूसरे** (कम्माण सजोगेण) **कर्मों के सयोग से** (
जीव मानते है (एव विहा) **इस प्रकार के** (बहुविहा) **तथा अन्**
प्रकार के (दुम्मेहा) **दुर्बुद्धि मिथ्या दृष्टि लाग** (पर) **पर को** (अप
(वदति) **कहते हैं** (ते) **ऐसे एकान्तवादी** (परमटठवादी) **परमार्थवा**
है - ऐसा (णिच्छयवादीहि) **निश्चयवादियो ने** (णिद्दिट्ठा) **कहा है**

अर्थ - आत्मा को न जानत हुए परद्रव्य आत्मा को कहने वाले मूर
रागादि अध्यवसान का और कर्म का जीव कहत है। अन्य कुछ
अध्यवसानो म तीव्रमन्द तारतम्य स्वरुप शक्ति-माहात्म्य को जीव म
अन्य कोई नोकर्म-शरीरादि को भी जीव है ऐसा मानते है। अन्य कुछ
उदय को जीव मानत है। कुछ लाग जो तीव्रता-मन्दता रूप गुणों म
होता है, वह जीव है, इस प्रकार कर्मो के अनुभाग को जीव है ऐसा इ
मानत है। कोई जीव और कर्म दानो मिल हुआ का ही जीव मानते है
कर्म क सयोग म जीव मानत है। इस प्रकार के तथा अन्य भी बहुत
लाग पर का आत्मा कहत है। ऐसे एकान्तवादी परमार्थवादी न
निश्चयवादियो न कहा है।

अध्यवसानादि जीव नहीं है -

> एदे सव्वे भावा पोंग्गलदव्व परिणामणिप्पण्णा ।
> केवलिजिणेहि भणिदा किह[1] ते जीवो त्ति वुच्चति ।।२-६-४४

सान्वय अर्थ - (एदे) ये - पूर्वोक्त अध्यवसानादिक (सव्वे भावा) समस्त भाव (पोंग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा) पुद्गल द्रव्यकर्म के परिणाम से उत्पन्न हुए है इस प्रकार (केवलिजिणेहि) केवली जिनेन्द्र भगवान ने (भणिदा) कहा है (ते) वे (जीवो) जीव है (त्ति) ऐसा (किह) किस प्रकार (वुच्चति) कहा जा सकता है।

अर्थ - ये पूर्वोक्त अध्यवसानादिक समस्त भाव पुद्गल द्रव्यकर्म के परिणाम से उत्पन्न हुए है, इस प्रकार केवली जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। वे जीव है, ऐसा किस प्रकार कहा जा सकता है।

---

[1]प्राचीन ताड़पत्रीय प्रतियों में किह पाठ उपलब्ध होता है। प्राकृत व्याकरण के अनुसार अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में भी किह बनता है । - पिशल, पैरा १०३ ।

आठो कर्म पुद्गलमय है -

अट्ठविह पि य कम्मं सव्व पोंग्गलमय जिणा विति ।
जस्स फल त वुच्चदि दुक्ख ति विपच्चमाणस्स ।। २-७-४५

सान्वय अर्थ - (अट्ठविह पि य) **आठो प्रकार के** (सव्व कम्म) **समस्त कर्म** (पोंग्गलमय) **पुद्गलमय है ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विति) **कहते है** (विपच्चमाणस्स) **पककर उदय मे आने वाले** (जस्स) **जिस कर्म का** (फल) **फल** (त) **प्रसिद्ध** (दुक्ख) **दु ख है** (ति वुच्चदि) **ऐसा कहा है।**

अर्थ - आठो प्रकार के समस्त कर्म पुद्गल मय है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते है। पककर उदय मे आने वाले जिस कर्म का फल प्रसिद्ध दु ख है, ऐसा कहा है।

व्यवहार नय से रागादि भाव जीव है -

ववहारस्स दरीसणमुवदेसो वण्णिदो जिणवरेहिं ।
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा ॥२-८-४६

सान्वय अर्थ - (एदे) **ये** (सव्वे) **समस्त** (अज्झवसाणाद ओ) **अध्यवसानादिक** (भावा) **भाव** (जीवा) **जीव हैं - ऐसा** (जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेवो ने** (उवदेसो वण्णिदो) **जो उपदेश दिया है वह** (ववहारम्स) **व्यवहार नय का** (दरीसण) **दर्शन-कथन है।**

अर्थ - ये समस्त अध्यवसानादिक भाव जीव हैं ऐसा जिनेन्द्रदेवों ने जो उपदेश दिया है, वह व्यवहार नय का कथन है।

व्यवहार और निश्चय से जीव का कथन -

राया खु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो ।
ववहारेण दु बुच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया ।।२-९-४७

एमेव य ववहारो अज्झवसाणादि अण्णभावाण ।
जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो ।।२-१०-४८

सान्वय अर्थ - (बलसमुदयस्स) **सेना के समूह को निकलते देख कर** (राया खु) राजा ही (णिग्गदो) **निकला है** (त्ति य आदेसो) **इस प्रकार का जो कथन है वह** (ववहारेण दु) **व्यवहार नय से** (वुच्चदि) **किया जाता है** (तत्थ) **वहाँ तो वास्तव मे** (एक्को राया) **एक ही** (राया) **राजा** (णिग्गदो) **निकला है** (एमेव य) **इसी प्रकार** (अज्झवसाणादि अण्णभावाण) **जीव से भिन्न अध्यवसानादि भावो को** (सुत्ते) **परमागम मे** (जीवोत्ति) **ये जीव है यह** (ववहारो) **व्यवहार** (कदो) **किया गया है - व्यवहार नय से कहा है किन्तु** (तत्थ) **उन रागादि परिणामो मे** (णिच्छिदो) **निश्चय नय से** (जीवो) **जीव तो** (एक्को) **एक ही है।**

अर्थ - सेना के समूह को (निकलते देखकर) 'राजा ही निकला है' इस प्रकार का जो कथन है, वह व्यवहार नय से किया जाता है। वास्तव मे तो वहाँ एक ही राजा निकला है। इसी प्रकार जीव से भिन्न अध्यवसानादि भाव जीव है, परमागम मे यह व्यवहार किया गया है (व्यवहार नय से कहा गया है), किन्तु निश्चय नय से उन रागादि परिणामो मे जीव तो एक ही है।

परमार्थ जीव का स्वरुप -

अरसमरुवमगंध अव्वत्त चेदणागुणमसद्द ।
जाण अलिगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाण ।।२-११-४९

सान्वय *अर्थ* - (अरस) **जो रसरहित है** (अरुव) **रुपरहित है** (अगध) **गन्धरहित है** (अव्वत्त) **अव्यक्त - इन्द्रियो के अगोचर है** (चेदणागुण) **चेतना गुण से युक्त है** (असद्द) **शब्द रहित है** (अलिगग्गहण) **किसी चिह्न या इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नही होता** (अणिद्दिट्ठसठाण) **और जिसका आकार बताया नही जा सकता** (जीव) **उसे जीव** (जाण) **जानो।**

अर्थ - जो रसरहित है, रुपरहित है, गन्धरहित है, इन्द्रियो के अगोचर है, चेतना गुण से युक्त है, शब्दरहित है, किसी चिह्न या इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नही होता और जिसका आकार बताया नहीं जा सकता, उसे जीव जानो।

वर्णादि भाव जीव के परिणाम नहीं हैं -

जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो ।
ण वि रुव ण सरीरं ण वि सठाण ण सहणण ।।२-१२-५०

जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो ।
णो पच्चया ण कम्म णोकम्म चावि से णत्थि ।।२-१३-५१

जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई ।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभागठाणा वा ।।२-१४-५२

जीवस्स णत्थि केई जोगट्ठाणा ण बंधठाणा वा ।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई ।।२-१५-५३

णो ठिदि बधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा ।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा ।।२-१६-५४

णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स ।
जेण दु एदे सव्वे पोंग्गलदव्वस्स परिणामा ।।२-१७-५५

सान्वय अर्थ - (जीवस्स) **जीव के** (वण्णो) **वर्ण** (णत्थि) **नही है** (ण वि गधो) **गन्ध भी नही है** (ण वि रसो) **रस भी नही है** (ण वि य फासो) **और स्पर्श भी नही है** (ण वि रुव) **रुप भी नही है** (ण सरीर) **शरीर भी नही है** (ण वि सठाण) **आकार भी नही है** (ण सहणण) **सहनन भी नही है** (जीवस्स) **जीव के** (रागो) **राग** (णत्थि) **नही है** (ण वि दोसो) **द्वेष भी नही है** (मोहो) **मोह** (णेव विज्जदे) **भी नही है** (पच्चया णो) **आस्रव भी नही है** (ण कम्मं) **न कर्म है** (णोकम्म चावि) **नोकर्म भी** (से) **उसके** (णत्थि) **नही है** (जीवस्स) **जीव के** (वग्गो) **वर्ग** (णत्थि) **नही है** (ण वग्गणा) **न वर्गणा है** (केई) **कोई** (फड्ढया णेव) **स्पर्धक भी नही है** (णो अज्झप्पट्ठाणा) **न अध्यात्मस्थान है** (य) **और** (अणुभागठाणा वा) **अनुभागस्थान भी** (णेव) **नही है** (जीवस्स) **जीव के** (कई जोगट्ठाणा) **कोई योगस्थान** (णत्थि) **नही है** (बधठाणा वा ण) **बन्धस्थान भी नही है** (य) **और** (उदयट्ठाणा) **उदयस्थान** (णेव) **भी नही हैं** (केई मग्गणट्ठाणया ण) **कोई मार्गणास्थान भी नही हैं** (जीवस्स) **जीव**

के (ठिदिबधट्ठाणा णो) **स्थितिबधस्थान भी नहीं हैं** (ण सकिलेसठाणा वा) **न सक्लेशस्थान हैं** (णेव विसोहिट्ठाणा) **विशुद्धिस्थान भी नही है** (सजमलद्धिठाणा वा णो) **सयमलब्धिस्थान भी नही हैं** (य) **और** (णेव जीवट्ठाणा) **जीवस्थान भी नही हैं** (य) **और** (जीवस्स) **जीव के** (गुणट्ठाणा) **गुणस्थान** (ण अत्थि) **नही हैं** (जेण दु) **क्योंकि** (एदे सव्वे) **ये सब** (पोंग्गलदव्वस्स) **पुद्‌गल द्रव्य के** (परिणामा) **परिणमन है।**

अर्थ - जीव के वर्ण नहीं है, गन्ध भी नहीं है, रस भी नहीं है, स्पर्श भी नहीं है, रुप भी नही है, शरीर भी नहीं है, सस्थान (आकार) भी नही है, संहनन भी नही है। जीव के राग नही है, द्वेष भी नहीं है, मोह भी नही है, आस्त्रव भी नहीं है, कर्म भी नही है, उसके नोकर्म भी नही है। जीव के वर्ग नही है, वर्गणा नही है, कोई स्पर्धक भी नही है, अध्यात्मस्थान भी नही है और अनुभागस्थान भी नही है। जीव के कोई योगस्थान नही है, बंधस्थान भी नही है और उदयस्थान भी नही है, कोई मार्गणास्थान भी नही है। जीव के स्थितिबधस्थान भी नही है, सक्लेशस्थान भी नही है, विशुद्धिस्थान भी नही है, सयमलब्धिस्थान भी नही है और जीवस्थान भी नही है और जीव के गुणस्थान नही है, क्योंकि ये सब पुद्‌गल के परिणमन है।

जीव का नयसापेक्ष स्वरूप -

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया ।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ।।२-१८-५६

सान्वय अर्थ - (एदे) ये (वण्णमादीया) वर्ण से लेकर (गुणठाणता) गुणस्थान पर्यन्त (भावा) भाव (ववहारेण दु) व्यवहार नय से (जीवस्स) जीव के (हवति) होते हैं (दु) परन्तु (णिच्छयणयस्स) निश्चय नय के मत में (केई ण) उनमें से कोई नहीं है।

अर्थ - ये वर्ण से लेकर गुणस्थानपर्यन्त भाव व्यवहार नय से जीव के होते है, परन्तु निश्चय नय के मत में उनमे से कोई भी जीव के नही है।

जीव का पुद्गल के साथ सम्बन्ध -

> एदेहि य संबंधो जहेव खीरोदय[1] मुणेदव्वो ।
> ण य होंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा ।। २-१९-५७

सान्वय अर्थ - (एदेहि य) **इन वर्णादिक भावों के साथ** (संबधो) **जीव का सम्बन्ध** (खीरोदय जहेव) **दूध और जल के समान-संयोग सम्बन्ध** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये** (य) **और** (ताणि) **वे - वर्णादिक भाव** (तस्स दु) **उस जीव के** (ण होंति) **नही है** (जम्हा) **क्योंकि** (उवओगगुणाधिगो) **जीव उपयोग गुण से परिपूर्ण है।**

अर्थ - इन वर्णादिक भावो के साथ जीव का सबध दूध और जल के समान (सयोग-सम्बन्ध) मननपूर्वक जानना चाहिये; और वे वर्णादिक भाव जीव के नही है क्योकि जीव उपयोगगुण से परिपूर्ण है।

---

[1] कभी-कभी शौरमेनी और मागधी मे क ही बना रहता है। अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री और जैन शौरसेनी में इसके स्थान मे ग और य रहते हैं। अन्य प्राकृत बोलियों में क का अ हो जाता है। पचास्तिकाय गाथा ११० में 'उदग' आया है ।

जीव में वर्णादि का कथन व्यवहार नय से है -

पथे मुस्सत पस्सिदूण लोगा भणति ववहारी ।
मुस्सदि एसो पथो ण य पथो मुस्सदे कोई ।।२-२०-५८

तह जीवे कम्माण णोकम्माण च पस्सिदु वण्ण ।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहि ववहारदो उत्तो ।।२-२१-५९

गधरसफासरुवा देहो सठाणमाइया जे य ।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसति ।।२-२२-६०

सान्वय अर्थ - (पथे) **मार्ग मे** (मुस्मत) **किसी को लुटता हुआ** (पस्सिदूण) **देखकर** (ववहारी लोगा) **व्यवहारी जन** (भणति) **कहते है कि** (एसो पथो) **यह मार्ग** (मुस्सदि) **लुटता है, किन्तु** (कोई पथो) **कोई मार्ग** (ण य) **नही** (मुस्मदे) **लुटता** (तह) **उसी प्रकार** (जीवे) **जीव मे** (कम्माण) **कर्मो का** (णोकम्माण च) **और नोकर्मों का** (वण्ण) **वर्ण** (पस्सिदु) **देखकर** (जीवस्स) **जीव का** (एस वण्णो) **यह वर्ण है - ऐसा** (जिणेहि) **जिनेन्द्रदेव ने** (ववहारदो) **व्यवहार से** (उत्तो) **कहा है - इसी प्रकार** (गधरमफामरुवा) **गन्ध, रस, स्पर्श, रुप** (देहो) **शरीर** (जे य) **और जो** (सठाणमाइया) **सस्थान आदि जीव के है** (सव्वे य) **वे सब** (ववहारस्स) **व्यवहार से** (णिच्छयदण्हू) **निश्चयदर्शी** (ववदिसति) **कहते है।**

अर्थ - मार्ग मे किसी को लुटता हुआ देखकर व्यवहारी जन कहते है कि यह मार्ग लुटता है, किन्तु कोई मार्ग नही लुटता (वस्तुत पथिक लुटते है), इसी प्रकार जीव मे कर्मों और नोकर्मो का वर्ण देखकर जीव का यह वर्ण है, ऐसा जिनन्द्रदेव ने व्यवहार से कहा है। इसी प्रकार गन्ध, रस, स्पर्श, रुप, शरीर और जो सस्थान आदि जीव के है, वे सब व्यवहार से निश्चयदर्शी कहते है।

ससारी जीवो के वर्णादि का सम्बन्ध -

तत्थ भवे जीवाण संसारत्थाण होंति वण्णादी ।
ससारपमुक्काणं णत्थि दु वण्णादओ केई ॥ २-२३-६१

सान्वय अर्थ - (तत्थ भवे) **संसार अवस्था मे** (ससारत्थाण जीवाणं) **ससारी जीवो के** (वण्णादी) **वर्णादि भाव** (होंति) **होते है** (ससारपमुक्काण) **संसार से मुक्त जीवो के** (दु) **तो** (केई) **कोई** (वण्णादओ) **वर्णादि** (णत्थि) **नही है।**

अर्थ - ससार अवस्था में ससारी जीवो के वर्णादि भाव होते है। ससार मे मुक्त जीवो के तो कोई वर्णादि नही है।

जीव और वर्णादि का तादात्म्य मानने मे दोष -

जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि ।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई ॥२-२४-६२

सान्वय अर्थ - **जीव का वर्णादि से तादात्म्य सम्बन्ध मानने वालो को समझाते हुए कहते है** - (जदिहि) **यदि तू** (त्ति मण्णसे) **ऐसा मानता है कि** (एदे) **ये** (सव्वे) **समस्त** (भाव) **भाव** (हि) **वास्तव मे** (जीवो चेव) **जीव ही है** (दु) **तो** (दे) **तेरे मत मे** (जीवस्साजीवस्स य) **जीव और अजीव के मध्य** (कोई) **कोई** (विसेसो) **भेद** (णत्थि) **नही रहता।**

अर्थ - जीव का वर्णादि मे तादात्म्य सम्बन्ध मानने वालो को समझाते हुए कहते है - यदि तू ऐसा मानता है कि ये समस्त भाव वास्तव मे जीव ही है तो तेरे मत में जीव और अजीव के मध्य कोई भेद नही रहता।

पूर्वोक्त कथन का और स्पष्टीकरण -

अह संसारत्थाण जीवाण तुज्झ होंति वण्णादी ।
तम्हा ससारत्था जीवा रुवित्तमावण्णा ।।२-२५-६३

एवं पोंग्गलदव्वं जीवो तहलक्खणेण मूढमदी ।
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पोंग्गलो पत्तो ।।२-२६-६४

सान्वय अर्थ - (अह) **अथवा यदि** (तुज्झ) **तेरे मत मे** (ससारत्थाण जीवाण) **संसार में स्थित जीवो के** (वण्णादी) **वर्णादिकतादात्म्य रुप से** (होंति) **होते है** (तम्हा) **तो इस कारण से** (ससारत्था) **ससार मे स्थित** (जीवा) **जीव** (रुवित्तमावण्णा) **रुपीपने को प्राप्त हो गये** (एव) **इस प्रकार** (मूढमदी) **हे मूढ़मते!** (तहलक्खणेण) **रुपित्व लक्षण पुद्‌गल द्रव्य का होने से** (पोंग्गलदव्व) **पुद्‌गल द्रव्य ही** (जीवो) **जीव कहलाया** (य) **और** (णिव्वाणमुवगदो वि) **निर्वाण प्राप्त होने पर भी** (पोंग्गलो) **पुद्‌गल ही** (जीवत्त) **जीवत्व को** (पत्तो) **प्राप्त हो गया।**

अर्थ - अथवा यदि तेरे मत मे ससार मे स्थित जीवो के वर्णादिक (तादात्म्य रुप से) होते है तो इस कारण ससार मे स्थित जीव रुपीपने को प्राप्त हो गये। इस प्रकार हे मूढमते! रुपित्व लक्षण पुद्‌गल द्रव्य का होने से पुद्‌गल द्रव्य ही जीव कहलाया और (ससार-दशा मे ही नही) निर्वाण-प्राप्त होने पर भी (निर्वाण-अवस्था मे भी) पुद्‌गल ही जीवत्व को प्राप्त हो गया।

जीवस्थान जीव नहीं हैं -

एक्क च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पच इंदिया जीवा ।
वादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स ।।२-२७-६५

एदाहि य णिव्वत्ता जीवट्ठाणा दु करणभूदाहि ।
पयडीहि पोंग्गलमइहि ताहि किह भण्णदे जीवो ।।२-२८-६६

सान्वय अर्थ - (एक्क च) **एकेन्द्रिय** (दोण्णि) **दोइन्द्रिय** (तिण्णि य) **तीन इन्द्रिय** (चत्तारि य) **चार इन्द्रिय** (पच इदिया) **पचेन्द्रिय** (वादरपज्जत्तिदरा) **वादर, पर्याप्त और इनसे इतर सूक्ष्म और अपर्याप्त** (जीवा) **जीव - ये** (णामकम्मस्स) **नामकर्म की** (पयडीओ) **प्रकृतियाँ है** (एदाहि य) **इन** (करणभूदाहि) **करणभूत** (पयडीहि) **प्रकृतिओ मे जो** (पोंग्गलमइहि) **पौद्गलिक है** (ताहि) **उनसे** (दु) **तो** (जीवट्ठाणा) **जीवस्थान** (णिव्वत्ता) **रचे गये है तब वे** (जीवो) **जीव** (किह) **किस प्रकार** (भण्णदे) **कहे जा सकत है।**

अर्थ - एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पचेन्द्रिय, वादर पर्याप्त ओर इनमे इतर सूक्ष्म और अपर्याप्त जीव ये नामकर्म की प्रकृतियाँ है। इन करणभूत प्रकृतिया मे, जो पौद्गलिक है उनसे तो जीवस्थान रचे गये है। तब वे जीव किस प्रकार कहे जा सकते है?

देह की जीव मज्ञा व्यवहार से है -

पज्जत्तापज्जत्ता जं सुहुमा वादरा य जे जीवा[1] ।
देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता ।।२-२९-६७

सान्वय अर्थ - (जे) **जो** (पज्जत्तापज्जत्ता) **पर्याप्त तथा अपर्याप्त** (य) **और** (जे) **जो** (मुहुमावादरा) **सूक्ष्म तथा वादर** (जीवा) **जीव कहे गये है वे** (देहस्म) **देह की अपेक्षा** (जीवसण्णा) **जीव सज्ञाएँ है, वे सब** (सुत्ते) **परमागम मे** (ववहारदो) **व्यवहार से** (उत्ता) **कही गई हैं।**

अर्थ - जो पर्याप्त तथा अपर्याप्त और जो सूक्ष्म तथा वादर जीव कहे गये है, वे देह की अपेक्षा जीव सज्ञाएँ है। वे मब परमागम में व्यवहार नय मे कही गई है।

---

[1] जे चेव इत्यपि पाठ । जे जीवा - ताडपत्रप्रति पाठ ।

गुणस्थान जीव नही है -

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिदा जे इमे गुणट्ठाणा ।
ते किह हवंति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता ।।२-३०-६८

सान्वय अर्थ - (जे इमे) **जो ये** (गुणट्ठाणा) **गुणस्थान है वे** (मोहणकम्मस्सुदया दु) **मोहनीय कर्म के उदय से** (वण्णिदा) **बतलाये गये है** (जे) **जो** (णिच्चमचेदणा) **नित्य अचेतन** (उत्ता) **कहे गये है** (ते) **वे** (जीवा) **जीव** (किह) **किस प्रकार** (हवंति) **हो सकते है।**

अर्थ - जो ये गुणस्थान है, वे मोहनीय कर्म के उदय से बतलाये गये है। जो नित्य अचेतन कहे गये है, वे जीव किस प्रकार हो सकते है।

इदि दुदियो जीवाजीवाधियारो समत्तो

तिदियो कत्तिकम्माधियारो

जीव के कर्म-बन्ध कैसे होता है -

जाव ण वेदि विसेसतर तु आदासवाण दोण्हं पि ।
अण्णाणी ताव दु सो कोहादिसु वट्टदे जीवो ।।३-१-६९

कोहादिसु वट्टतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदि ।
जीवस्सेव बधो भणिदो खलु सव्वदरिसीहि ।।३-२-७०

सान्वय अर्थ - (जीवो) **जीव** (जाव) **जब तक** (आदासवाण) **आत्मा और आस्त्रव** (दोण्ह पि तु) **दोनो के ही** (विसेसतर) **भिन्न-भिन्न लक्षण और भेद को** (ण वेदि) **नही जानता है** (ताव दु) **तब तक** (सो) **वह** (अण्णाणी) **अज्ञानी** (कोहादिसु) **क्रोधादिक आस्त्रवो में** (वट्टदे) **प्रवृत्त रहता है** (कोहादिसु) **क्रोधादिक आस्त्रवो मे** (वट्टतस्स) **वर्तते हुए** (तस्स) **उसके** (कम्मस्स) **कर्मों का** (सचओ) **सचय** (होदि) **होता है** (खलु) **वास्तव मे** (एव) **इस प्रकार** (जीवस्स) **जीव के** (बधो) **कर्मों का बन्ध** (सव्वदरिसीहि) **सर्वज्ञ-देवो ने** (भणिदो) **बताया है।**

अर्थ - जीव जब तक आत्मा और आस्त्रव दोनो के ही (भिन्न-भिन्न) लक्षण और भेद को नही जानता है, तब तक वह अज्ञानी क्रोधादिक आस्त्रवो मे प्रवृत्त रहता है। क्रोधादिक आस्त्रवों मे वर्तते हुए उसके कर्मों का सचय होता है। वास्तव मे जीव के इस प्रकार कर्मों का बन्ध सर्वज्ञदेवो ने बताया है।

ज्ञान से बन्ध का निरोध -

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव ।
णाद होदि विसेसतर तु तइया ण बधो से ।।३-३-७१

सान्वय अर्थ - (जइया) **जब** (इमेण जीवण) **यह जीव** (अप्पाण) **आत्मा का** (तहेव य) **तथा** (आसवाण) आस्त्रवो का (विसेसतर) **भिन्न-भिन्न लक्षण और भेद** (णाद होदि) **जान लेता है** (तइया तु) **तब** (से) **उसके** (बधो) **कर्मबन्ध** (ण) **नही होता।**

अर्थ - जब यह जीव आत्मा का और आस्त्रवो का (भिन्न-भिन्न) लक्षण और भेद जान लता है, तब उसके कर्मबन्ध नही होता।

भेदज्ञान से आस्रव-निवृत्ति -

णादूण आसवाणं, असुचित्त च विवरीदभाव च ।
दुक्खस्स कारण त्ति य, तदो णियत्ति कुणदि जीवो ॥३-४-७२

सान्वय अर्थ - (आसवाण) **आस्रवों का** (असुचित्त च) **अशुचिपना** (विवरीदभाव च) **विपरीतता** (य) **और** (दुक्खस्स कारण) **वे दुःख के कारण है** (त्ति) **यह** (णादूण) **जानकर** (जीवो) **जीव** (तदो णियत्ति) **उनसे निवृत्ति** (कुणदि) **करता है।**

अर्थ - आस्रवो का अशुचिपना, इनका विपरीत भाव और वे दु ख के कारण है, यह जानकर जीव उनसे निवृत्ति करता है।

आत्म स्वभाव मे स्थिति मे आस्रवो का क्षय -

अहमेक्को खलु सुद्धो य णिम्ममो णाणदसणसमग्गो ।
तम्हि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खय णेमि ।।३-५-७३

सान्वय अर्थ - ज्ञानी विचार करता है कि (अह) मै (खलु) निश्चय ही (एक्को) एक हूँ (सुद्धो) शुद्ध हूँ (य) और (णिम्ममो) ममत्वरहित हूँ (णाणदसणसमग्गो) ज्ञान और दर्शन मे परिपूर्ण हूँ (तम्हि ठिदो) उक्त लक्षण वाले शुद्धात्मस्वरुप मे स्थित (तच्चित्तो) अपने सहजानन्द स्वरुप मे तन्मय हुआ मै (एद सव्व) इन सब क्रोधादिक आस्रवो को (खय) नष्ट (णेमि) कर देता हूँ।

अर्थ - (ज्ञानी विचार करता है कि) मै निश्चय ही एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममत्वरहित हूँ और ज्ञान-दर्शन मे परिपूर्ण हूँ। (उक्त लक्षण वाले) शुद्धात्मस्वरुप मे स्थित और सहजानन्द स्वरुप मे तन्मय हुआ मै इन सब (क्रोधादिक आस्रवो) को नष्ट करता हूँ।

ज्ञानी आस्त्रवों से निवृत्त होता है -

जीवणिबद्धा एदे अधुव अणिच्चा तहा असरणा य ।
दुक्खा दुक्खफला त्ति य णादूण णिवत्तदे तेहि ।।३-६-७४

सान्वय अर्थ - (एदे) ये आस्त्रव (जीवणिबद्धा) जीव के साथ निबद्ध है (अधुव) अध्रुव है (अणिच्चा) अनित्य है (तहा य) तथा (असरणा) अशरण है - रक्षा करने मे समर्थ नहीं है (य) और ये (दुक्खा) दुःखरुप है (दुक्खफला) दु:खरुप फल देने वाले हैं (त्ति णादूण) यह जानकर ज्ञानी (तेहि) उन आस्त्रवो से (णिवत्तदे) निवृत्त होता है।

अर्थ - ये क्रोधादि आस्त्रव जीव के साथ निबद्ध है, अध्रुव है, अनित्य है तथा अशरण है (रक्षा करने मे समर्थ नही है) और ये दु:खरुप है और दु:खरुप फल देने वाले है। यह जानकर (ज्ञानी) उन आस्त्रवो से निवृत्त होता है।

ज्ञानी की पहिचान -

कम्मस्स य परिणाम णोकम्मस्स य तहेव परिणाम ।
ण करेदि एदमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी ।।३-७-७५

सान्वय अर्थ - (जो) **जो** (आदा) **आत्मा** (एद) **इस** (कम्मस्स य) **कर्म के** (परिणाम) **परिणाम को** (तहेव य) **इसी प्रकार** (णोकम्मस्स) **नोकर्म के** (परिणामं) **परिणाम को** (ण) **नही** (करेदि) **करता है, अपितु जो** (जाणदि) **जानता है** (सो) **वह** (णाणी) **ज्ञानी** (हवदि) **है।**

अर्थ - जो आत्मा इस कर्म के परिणाम को, इसी प्रकार नोकर्म के परिणाम को नही करता है, अपितु जो जानता है, वह ज्ञानी है।

ज्ञानी में परिणमन नहीं करता -

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि[1] उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
णाणी जाणंतो वि हु पॉग्गलकम्म अणेयविहं ॥३-८-७६

सान्वय अर्थ - (णाणी) ज्ञानी (अणेयविह) अनेक प्रकार के (पॉग्गलकम्म) पौद्‌गलिक कर्मों को (जाणतो वि) जानता हुआ भी (हु) निश्चय से (परदव्वपज्जाए) परद्रव्य की पर्यायो मे (ण वि परिणमदि) न उन स्वरुप परिणमन करता है (ण गिण्हदि) न उन्हे ग्रहण करता है (ण उप्पज्जदि) न उन रुप उत्पन्न होता है।

अर्थ - ज्ञानी अनेक प्रकार के पौद्‌गलिक कर्मों को जानता हुआ भी निश्चय से परद्रव्य की पर्यायो मे न उन स्वरूप परिणमन करता है, न उन्हें ग्रहण करता है, न उन रुप उत्पन्न होता है।

---

[1]जैन शौरसेनी में गिण्हदि तथा शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी में गेण्हदि रुप बनता है । 2।
- पिशल, पृ ७४७

ज्ञानी अपने परिणामों को जानता है -

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
णाणी जाणतो वि हु सगपरिणाम अणेयविहं ।।३-९-७७

सान्वय अर्थ - **(णाणी) ज्ञानी** (अणेयविह) **अनेक प्रकार के** (सगपरिणाम) **अपने परिणामों को** (जाणतो वि) **जानता हुआ भी** (हु) **निश्चय से** (परदव्वपज्जाए) **परद्रव्य की पर्यायो में** (ण वि परिणमदि) **न तो परिणमन करता है** (ण गिण्हदि) **न उन्हे ग्रहण करता है** (ण उप्पज्जदि) **न उन रुप उत्पन्न ही होता है।**

अर्थ - ज्ञानी अनेक प्रकार के अपने परिणामों का जानता हुआ भी निश्चय से परद्रव्य की पर्यायो मे न तो परिणमन करता है, न उन्हे ग्रहण करता है, न उन रुप उत्पन्न ही होता है।

ज्ञानी कर्म-फल को जानता है -

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
णाणी जाणंतो वि हु पोंग्गलकम्मफलं अणंतं ॥३-१०-७८

सान्वय अर्थ - (णाणी) **ज्ञानी** (अणत) **अनन्त** (पोंग्गलकम्मफल) **पौद्गलिक कर्मों के फल को** (जाणतो वि) **जानता हुआ भी** (हु) **निश्चय से** (परदव्वपज्जाए) **पर द्रव्य के पर्यायो में** (ण वि परिणमदि) **न तो परिणमन करता है** (ण गिण्हदि) **न ग्रहण करता है** (ण उप्पज्जदि) **न उनरुप उत्पन्न होता है।**

अर्थ - ज्ञानी पौद्गलिक कर्मों के अनन्त फल का जानता हुआ भी निश्चय से परद्रव्यों के पर्यायों मे न तो परिणमन करता है, न उन्हें ग्रहण करता है, न उनरुप उत्पन्न होता है।

पुद्गल द्रव्य पररुप परिणमन नही करता -

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
पोंग्गलदव्वं पि तहा परिणमदि सगेहि भावेहि ।।३-११-७९

सान्वय अर्थ - (पोंग्गलदव्व पि) **पुद्गल द्रव्य भी** (परदव्वपज्जाए) **परद्र की पर्यायों में** (तहा) उस रुप (ण वि परिणमदि) **न तो परिणमन करता** (ण गिण्हदि) **न उन्हे ग्रहण करता है** (ण उप्पज्जदि) **न उन रुप उत्पन्न हो है, क्योंकि वह तो** (सगेहि भावेहि) **अपने ही भावो से** (परिणमदि) **परिण करता है।**

अर्थ - पुद्गल द्रव्य भी परद्रव्य की पर्यायों मे उस रुप न तो परिणमन करता है, उन्हे ग्रहण करता है, न उन रुप उत्पन्न होता है, क्योंकि वह तो अपने ही भावो परिणमन करता है।

जीव और पुद्गल के परिणामों मे निमित्त-नैमित्तिक भाव है -

जीव परिणामहेदुं कम्मत्त पोंग्गला परिणमंति ।
पोंग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि ॥३-१२-८०

ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्म तहेव जीवगुणे ।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणाम जाण दोण्ह पि ॥३-१३-८१

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सगेण भावेण ।
पोंग्गलकम्मकदाण ण दु कत्ता सव्वभावाण ॥३-१४-८२

सान्वय अर्थ - (पोंग्गला) **पुद्गल** (जीव परिणामहेदु) **जीव के परिणाम के निमित्त से** (कम्मत्त) **कर्मरुप से** (परिणमंति) **परिणमित होते है** (तहेव) **इसी प्रकार** (जीवो वि) **जीव भी** (पोंग्गलकम्मणिमित्त) **पुद्गल कर्म के निमित्त से - रागादि भाव रुप से** (परिणमदि) **परिणमन करता है** (जीव) **जीव** (कम्मगुणे) **कर्म के गुणो को** (ण वि कुव्वदि) **नही करता है** (तहेव) **इसी प्रकार** (कम्म) **कर्म** (जीवगुणे) **जीव के गुणो को नही करता है** (दु) **परन्तु** (अण्णोण्णणिमित्तेण) **एक-दूसरे के निमित्त से** (दोण्ह पि) **इन दोनो के** (परिणाम) **परिणाम** (जाण) **जानो** (एदेण कारणेण दु) **इस कारण से** (आदा) **आत्मा** (सगेण भावेण) **अपने ही भावो से** (कत्ता) **कर्त्ता है** (दु) **परन्तु** (पोंग्गलकम्मकदाण) **पुद्गल कर्म से किये गये** (सव्वभावाण) **समस्त भावो का** (कत्ता ण) **कर्त्ता नही है।**

अर्थ - पुद्गल जीव के (रागादि) परिणाम के निमित्त से कर्म रुप मे परिणमित होते है। इसी प्रकार जीव भी (मोहनीय आदि) पुद्गलकर्म निमित्त से (रागादि भाव रुप मे) परिणमन करता है। जीव कर्म के गुणो को नही करता है। इसी प्रकार कर्म जीव के गुणो को नही करता है, परन्तु एक-दूसरे के निमित्त मे इन दोनो के परिणाम जानो। इस कारण से आत्मा अपने ही भावो से कर्त्ता है, परन्तु पुद्गल कर्म के द्वारा किये गये समस्त भावों का कर्त्ता नही है।

निश्चयनय मे आत्मा अपना ही कर्त्ता और भोक्ता है -

णिच्छयणयस्स एव आदा अप्पाणमेव हि करेदि ।
वेदयदि पुणो त चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ।।३-१५-८३

सान्वय अर्थ - (णिच्छयणयस्स) **निश्चयनय का** (एव) **इस प्रकार मत है कि** (आदा) **आत्मा** (अप्पाणमेव हि) **अपने को ही** (करेदि) **करता है** (दु पुणो) **और फिर** (अत्ता) **आत्मा** (त चेव अत्ताण) **अपने को ही** (वेदयदि) **भोगता है** (जाण) **ऐसा तू जान।**

अर्थ - (निश्चयनय का इस प्रकार मत है कि) आत्मा अपने को ही करता है और फिर आत्मा अपने को ही भोगता है, ऐसा तू जान।

व्यवहार से आत्मा पुद्गल कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता है -

ववहारस्स दु आदा पोंग्गलकम्म करेदि णेयविह ।
त चेव य वेदयदे पोंग्गलकम्मं अणेयविह ।।३-१६-८४

सान्वय अर्थ - (ववहारस्म दु) **व्यवहार नय का मत है कि** (आदा) **आत्मा** (णेयविह) **अनेक प्रकार के** (पोंग्गलकम्म) **पुद्गल कर्मों को** (करेदि) **करता है** (चेव य) **और** (त) **उसी** (अणेयविह) **अनेक प्रकार के** (पोंग्गलकम्म) **पुद्गल कर्म को** (वेदयदे) **भोगता है।**

अर्थ - व्यवहार नय का मत है कि आत्मा अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों का करता है और उन्हीं अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों को भोगता है।

व्यवहार की मान्यता में दोष -

जदि पोंग्गलकम्ममिण कुव्वदि त चेव वेदयदि आदा ।
दोकिरियावदिरित्तो पसज्जदे सो[1] जिणावमदं ॥३-१७-८५

सान्वय अर्थ - (जदि) **यदि** (आदा) **आत्मा** (इण) **इस** (पोंग्गलकम्म) **पुद्गल कर्म को** (कुव्वदि) **करता है** (च) **और** (त एव) **उसी को** (वेदयदि) **भोगता है** ता (दोकिरियावदिरित्तो) **दो क्रियाओं से अभिन्न होने का जीव अपनी तथा पुद्गल की क्रिया का कर्त्ता और भोक्ता होने से दोनो से अभिन्न**ता का (पसज्जदे) **प्रसग आता है** (सो जिणावमद) **ऐसा मानना जिनेन्द्रदेव के मत के विपरीत है।**

अर्थ - यदि आत्मा इस पुद्गल कर्म को करता है और उसी को भोगता है तो दो क्रियाओ से अभिन्न होने का प्रसग आता है। ऐसा मानना जिनेन्द्रदेव के मत के विपरीत है।

विशेषार्थ - *क्रिया वस्तुत परिणाम है और परिणाम क्रिया के कर्त्ता परिणामी से अभिन्न होता है। जीव जिस प्रकार अपने परिणाम को करता है और उसी को भोगता है, उसी प्रकार यदि वह पुद्गलकर्म को करे और उसी को भोगे तो जीव अपनी और पुद्गल की - दोनो की - क्रियाओ से अभिन्न हो जाएगा। दो द्रव्यो की क्रिया एक द्रव्य करता है, ऐसा मानना जिनेन्द्रदेव के सिद्धान्त के विरुद्ध है।*

[1] पसज्जदि मम्म   तात्पर्यवृत्तौ ।

दो किरियावादी मिथ्यादृष्टि है -

जम्हा दु अत्तभावं पॉग्गलभाव च दो वि कुव्वंति ।
तेण दु मिच्छादिट्ठी दो किरियावादिणो होंति ।।३-१८-८६

सान्वय अर्थ - (जम्हा दु) **क्योंकि आत्मा** (अत्तभाव) **आत्मा के भाव को** (च) **और** (पॉग्गलभाव) **पुद्गल के भाव-परिणाम को** (दो वि) **दोनो को** (कुव्वति) **करता है** (तेण दु) **ऐसा कहने के कारण** (दो किरियावादिणो) **दो क्रियावादी - एक द्रव्य द्वारा दो द्रव्यो के परिणाम किये जाते है ऐसा मानने वाले** (मिच्छादिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि** (होंति) **होते है।**

अर्थ - क्योंकि आत्मा आत्मा के भाव का और पुद्गल के भाव (परिणाम) को - दोनो को - करता है। ऐसा मानने क कारण दो किरियावादी (एक द्रव्य द्वारा दो द्रव्यो के परिणाम किये जाते है ऐसा मानने वाले) मिथ्यादृष्टि हाते है।

मिथ्यात्वादि भाव दो प्रकार के है -

मिच्छत्त पुण दुविह जीवमजीवं तहेव अण्णाणं ।
अविरदि जोगो मोहो कोहादीया इमे भावा ।।३-१९-८७

सान्वय अर्थ - (पुण) पुन (मिच्छत्त) **मिथ्यात्व** (दुविह) **दो प्रकार का है** (जीवमजीव) **जीव मिथ्यात्व और अजीव मिथ्यात्व** (तहेव) **इसी प्रकार** (अण्णाम) **अज्ञान** (अविरदि) **अविरति** (जोगो) **योग** (मोहो) **मोह** (कोहादीया) **क्रोध** आदिक (इमे भावा) **ये सभी भाव जीव-अजीव के भेद से दो-दा प्रकार के है।**

अर्थ - पुन मिथ्यात्व दो प्रकार का है - जीवमिथ्यात्व और अजीवमिथ्यात्व। इसी प्रकार अज्ञान, अविरति, योग, मोह और क्रोध आदि कषाय - ये सभी भाव (जीव-अजीव के भेद से) दो-दो प्रकार के है।

अजीव और जीव मिथ्यात्वादि भाव -

पोंग्गलकम्म मिच्छ जोगो अविरदि अणाणमज्जीवं ।
उवओगो अण्णाण अविरदि मिच्छ च जीवो दु ॥३-२०-८८

सान्वय अर्थ - जो (मिच्छ) मिथ्यात्व (जोगो) योग (अविरदि) अविरति और (अणाण) अज्ञान (अजीव) अजीव है वे (पोंग्गलकम्म) पुद्गल कर्म हैं (च) और जो (अण्णाण) अज्ञान (अविरदि) अविरति (मिच्छ) और मिथ्यात्व (जीवो दु) जीव है वे (उवओगो) उपयोग रुप है।

अर्थ - जो मिथ्यात्व, योग, अविरति और अज्ञान अजीव है, वे पुद्गल कर्म है और जो अज्ञान, अविरति और मिथ्यात्व जीव है, वे उपयोगरुप है।

मोहयुक्त जीव के अनादिकालीन परिणाम -

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स ।
मिच्छत्त अण्णाण अविरदिभावो य णादव्वो ।।३-२१-८९

सान्वय अर्थ - (मोहजुत्तस्स) **मोह से युक्त** (उवओगस्स) **उपयोग के** (तिण्णि) **तीन** (अणाई) **अनादिकालीन** (परिणामा) **परिणाम है, वे** (मिच्छत्त) **मिथ्यात्व** (अण्णाण) **अज्ञान** (य अविरदिभावो) **और अविरतिभाव** (णादव्वो) **जानने चाहिए।**

अर्थ - मोह से युक्त उपयोग के तीन अनादिकालीन परिणाम हैं। वे (तीन परिणाम) मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरतिभाव जानने चाहिये।

उपयोग विकारी भाव का कर्त्ता है -

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो ।
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ।।३-२२-९०

साम्वय अर्थ - (एदेसु य) **मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति इन तीनो का निमित्त मिलने पर भी** (उवओगो) **आत्मा का उपयोग** (सुद्धो) **यद्यपि निश्चय नय से शुद्ध** (णिरजणो) **निरजन** (भावो) **एकभाव है, फिर भी** (तिविहो) **तीन प्रकार के परिणामवाला** (सो) **वह** (उवओगो) **उपयोग** (जं) **जिस** (भाव) **विकारी भाव को** (करेदि) **करता है** (सो) **वह** (तस्स) **उसी भाव का** (कत्ता) **कर्त्ता है।**

अर्थ - (मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति) इन तीनों का निमित्त मिलने पर भी आत्मा का उपयोग (यद्यपि निश्चय नय से) शुद्ध, निरजन और एकभाव है, फिर भी तीन प्रकार के परिणामवाला वह उपयोग जिस (विकारी) भाव को करता है, वह उसी भाव का कर्त्ता होता है।

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स ।
कम्मत्तं परिणमदे तम्हि सयं पोंग्गल दव्व ।।३-२३-९१

सान्वय अर्थ - (आदा) आत्मा (जं भाव) जिस भाव को (कुणदि) करत (सो) वह (तस्स भावस्स) उस भाव का (कत्ता) कर्त्ता (होदि) होता है (तं उसके कर्त्ता होने पर (पोंग्गल दव्व) पुद्गल द्रव्य (सयं) स्वयं (कम्म कर्मरुप (परिणमदे) परिणमित होता है।

अर्थ - आत्मा जिस भाव को करता है, वह उस भाव का कर्त्ता होता है। उ कर्त्ता होने पर पुद्गल द्रव्य स्वयं कर्मरुप परिणमित होता है।

अज्ञान से कर्मों का कर्तृत्व है -

परमप्पाणं कुव्वं अप्पाणं पि य परं करंतो सो ।
अण्णोणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि ॥३-२४-९२

सान्वय अर्थ - (पर) पर को (अप्पाण) अपने रूप (कुव्वं) करता हुआ (य) और (अप्पाण) अपने को (पि) भी (पर) पररूप (करतो) करता हुआ (सो) वह (अण्णोणमओ) अज्ञानी (जीवो) जीव (कम्माण) कर्मों का (कारगो) कर्त्ता (होदि) होता है।

अर्थ - पर को अपने रूप करता हुआ और अपने को पररूप करता हुआ वह अज्ञानी जीव कर्मों का कर्त्ता होता है।

ज्ञानी कर्मों का कर्त्ता नहीं होता -

परमप्पाणमकुव्वं अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो ।
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारगो होदि ।।३-२५-९३

सान्वय अर्थ - जो (पर) पर को (अप्पाण) अपने रुप (अकुव्व) नही क (य) और जो (अप्पाणं पि) अपने को भी (पर) पर रुप (अकुव्वतो) करता (सो) वह (णाणमओ) ज्ञानमय - ज्ञानी (जीवो) जीव (कम्माण) क का (अकारगो) अकर्त्ता (होदि) होता है।

अर्थ - जो पर को अपने रुप नही करता और जो अपने को भी पर रुप करता, वह ज्ञानी जीव कर्मों का कर्त्ता नही होता।

अज्ञानी अपने विकारी भाव का कर्त्ता है -

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि कोहोहं ।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ।।३-२६-९४

सान्वय अर्थ - (एस) **यह** (तिविहो) **तीन प्रकार का** (उवओगो) **उपयोग** (कोहोह) **मै क्रोध हूँ ऐसा** (अप्पवियप्प) **आत्मविकल्प** (करेदि) **करता है** (सो) **वह** (तम्स उवओगस्स) **उस उपयोग रुप** (अत्तभावस्स) **अपने भाव का** (कत्ता) **कर्त्ता** (होदि) **होता है।**

अर्थ - यह (मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति रुप) तीन प्रकार का उपयोग 'मै क्रोध हूँ' ऐसा आत्मविकल्प करता है। वह आत्मा उस उपयोग रुप उपने भाव का कर्त्ता होता है।

इसी बात को विशेष रुप से कहते है -

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्प करेदि धम्मादी ।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ।।३-२७-९५

सान्वय अर्थ - (एम्) यह (तिविहो) **तीन प्रकार का** (उवओगो) **उपय** (धम्मादि) **मैं धर्मादिक हूँ** ऐसा (अप्पवियप्प) **आत्मविकल्प** (करेदि) **करता** (सो) **वह आत्मा** (तस्स) उस (उवओगस्स) **उपयोगरुप** (अत्तभावस्स) **अ** **भाव का** (कत्ता) **कर्त्ता** (होदि) **होता है।**

अर्थ - वह (मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरतिरुप) तीन प्रकार का उपयोग धर्मादिक हूँ' ऐसा आत्मविकल्प करता है। वह आत्मा उस उपयोगरुप अपने भाव कर्त्ता होता है।

कर्तृत्व का मूल अज्ञान है -

एवं पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि मंदबुद्धीए।
अप्पाण अवि य परं करेदि अण्णाणभावेण ॥३-२८-९६

सान्वय अर्थ - (एव) इस प्रकार (मदबुद्धीए)[1] मन्दबुद्धि (अण्णाणभावेण) अज्ञान भाव से (पराणि दव्वाणि) पर द्रव्यों को (अप्पय) अपने रूप (कुणदि) करता है (य) और (अप्पाण अवि) अपने को भी (पर) पररूप (करेदि) करता है।

अर्थ - इस प्रकार मन्दबुद्धि (अज्ञानी) अज्ञानभाव से परद्रव्यों को अपने रूप करता है और अपने को भी पररूप करता है।

---

[1] मदबुद्धीओ इत्यपि पाठ

ज्ञान से कर्त्तृत्व का त्याग होता है -

एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहि परिकहिदो ।
एव खलु जो जाणदि सो मुञ्चदि सव्वकत्तित्तं ॥३-२९-९७

सान्वय अर्थ - (एदेण दु) **इस कारण से** (णिच्छयविदूहि) **निश्चय ज्ञाताओ ने** (सो आदा) **वह आत्मा** (कत्ता) **कर्त्ता** (परिकहिदो) **कहा है** (' **इस प्रकार** (खलु) **निश्चय ही** (जो) **जो** (जाणदि) **जानता है** (सो) (सव्वकत्तित्त) **सब कर्त्तृत्व को** (मुञ्चदि) **छोड़ देता है।**

अर्थ - इस पूर्वोक्त कारण से निश्चय के ज्ञाताओ ने वह कर्त्ता कहा है। इस प्र वस्तुत जो जानता है, वह सब कर्त्तृत्व का छाड देता है।

व्यवहारी जनों का व्यामोह -

ववहारेण दु आदा करेदि घडपडरधादिदव्वाणि ।
करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि ।।३-३०-९८

सान्वय अर्थ - (ववहारेण दु) **व्यवहार से - व्यवहारी जन ऐसा मानते हैं कि** (इह) **जगत में** (आदा) **आत्मा** (घडपडरधादिदव्वाणि) **घट, पट, रथ आदि वस्तुओं को** (य) **और** (करणाणि) **इन्द्रियों को** (विविहाणि) **अनेक प्रकार के** (कम्माणि) **क्रोधादि कर्मों को** (य) **और** (णोकम्माणी) **शरीरादि नोकर्मों को** (करेदि) **करता है।**

अर्थ - व्यवहार से (व्यवहारी जन ऐसा मानते हैं कि) जगत में आत्मा घट-पट-रथ आदि वस्तुओं को और इन्द्रियों को, अनेक प्रकार के क्रोधादि कर्मों को और शरीरादि नोकर्मों को करता है।

व्याप्य-व्यापक भाव मे आत्मा कर्ता नही है -

जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज ।
जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसि हवदि कत्ता ।।३-३१-९९

सान्वय अर्थ - (जदि य) **यदि** (सो) **वह - आत्मा** (परदव्वाणि) **परद्रव्यो** व (करेज्ज) **करे तो** (णियमेण) **नियम से** (तम्मओ) **तन्मय-परद्रव्यमय** (होज्ज **हो जाय** (जम्हा) **क्योंकि** (तम्मओ ण) **तन्मय नही होता** (तेण) **इस कार** (सो) **वह** (तेसि) **उनका** (कत्ता) **कर्त्ता** (ण हवदि) **नही है।**

अर्थ - यदि वह (आत्मा) परद्रव्यो को करे तो नियम से वह तन्मय (परद्रव्यमय) जाए, क्योकि वह तन्मय नही होता, इस कारण वह कर्त्ता नही है।

निमित्तनैमित्तिक भाव से भी जीव कर्त्ता नही है -

जीवो ण करेदि घडं णेव पड णेव सेसगे दव्वे ।
जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता ।।३-३२-१००

सान्वय अर्थ - (जीवो) जीव (घड) घट को (ण) नही (करेदि) करता (णेव) न ही (पड) पट को करता है (णेव) न ही (सेसगे दव्वे) शेष द्रव्यो को करता है (जोगुवओगा य) जीव के योग और उपयोग (उप्पादगा) उत्पादक - घटादि के उत्पन्न करने मे निमित्त है (तेसिं) उन योग और उपयोग का (कत्ता) कर्त्ता (हवदि) जीव होता है।

अर्थ - जीव घट को नही करता, न ही पट को करता है, न ही शेष द्रव्यो को करता है। जीव के योग और उपयोग घटादि के उत्पन्न करने मे निमित्त है। उन योग और उपयोग का कर्त्ता जीव है।

ज्ञानी ज्ञान का ही कर्त्ता है -

जे पोंग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाण आवरणा ।
ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥३-३३-१०

सान्वय अर्थ - (जे) जो (णाणआवरणा) **ज्ञानावरणादिक** (पोंग्गलदव्वाण **पुद्गल-द्रव्यो** के (परिणामा) **परिणाम** (होंति) है (ताणि) उन्हे (जो आद **जो आत्मा** (ण) **नही** (करेदि) **करता, परन्तु** (जाणदि) **जानता** है (सो) व (णाणी) **ज्ञानी** (हवदि) है।

अर्थ - जो ज्ञानावरणादिक पुद्गल द्रव्यो के परिणाम है, उन्हे जो आत्मा न करता, (परन्तु जो) जानता है, वह ज्ञानी है।

अज्ञानी अज्ञान भावो का कर्त्ता है -

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता ।
त तस्स होदि कम्म सो तस्स दु वेदगो अप्पा ।।३-३४-१०२

सान्वय अर्थ - (आदा) **आत्मा** (ज) **जिस** (सुहमसुह) **शुभ या अशुभ** (भाव) **भाव को** (करेदि) **करता है** (स) **वह** (तस्स) **उस भाव का** (खलु) **निश्चय ही** (कत्ता) **कर्त्ता होता है** (त) **वह भाव** (तस्स) **उसका** (कम्म) **कर्म** (होदि) **होता है** (सो) **वह** (अप्पादु) **आत्मा** (तस्स) **उस भावरुप कर्म का** (वेदगो) **भोक्ता होता है।**

अर्थ - आत्मा जिस शुभ या अशुभ भाव को करता है, वह उस भाव का निश्चय ही कर्त्ता होता है। वह भाव उसका कर्म होता है वह आत्मा उस भावरुप कर्म का भोक्ता होता है।

कोई द्रव्य परभाव को नही करता -

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे ।
सो अण्णमसंकतो किह त परिणामए दव्व ।।३-३५-१०३

सान्वय अर्थ - (जो) **जो वस्तु** (जम्हि) **जिस** (गुणे) **गुण मे और** (दव्वे) **द्रव्य में वर्तती है** (सो) **वह** (अण्णम्हि दु) **अन्य** (दव्वे) **द्रव्य, गुण मे** (ण सकमदि) **संक्रमण नहीं करती** (अण्णमसकतो) **अन्य में सक्रमण न करती हुई** (सो) **वह वस्तु** (त दव्व) **उस द्रव्य को** (किह) **किस प्रकार** (परिणामए) **परिणमन करा सकती है।**

अर्थ - जो वस्तु जिम द्रव्य और गुण में (वर्तती है), वह अन्य द्रव्य (और गुण) मे सक्रमण नही करती। अन्य मे सक्रमण न करती हुई वह वस्तु उस (अन्य) द्रव्य को किम प्रकार परिणमन करा सकती है।

आत्मा पुद्‌गल कर्मों का कर्त्ता नही है -

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पोंग्गलमयम्हि कम्मम्हि ।
त उहयमकुव्वंतो तम्हि कहं तस्स सो कत्ता ॥३-३६-१०४

सान्वय अर्थ - (आदा) **आत्मा** (पोंग्गलमयम्हि) **पुद्‌गलमय** (कम्मम्हि) **कर्म मे** (दव्वगुणस्स य) **अपने द्रव्य और गुण को** (ण कुणदि) **नही करता** (तम्हि) **उसमे** (त उहय) **द्रव्य और गुण दोनो को** (अकुव्वतो) **न करता हुआ** (सो) **वह** (तस्स) **उस पुद्‌गल कर्म का** (कत्ता) **कर्त्ता** (कह) **किस प्रकार हो सकता है।**

अर्थ - आत्मा पुद्‌गलमय कर्म मे (अपने) द्रव्य और गुण का (संक्रमण) नहीं करता। उसमें द्रव्य और गुण दोनो का (सक्रमण) न करता हुआ वह (आत्मा) उस पुद्‌गल कर्म का कर्त्ता किस प्रकार हो सकता है।

आत्मा उपचार से पुद्गल कर्म का कर्त्ता कहा है -

जीवम्हि हेदुभूदे बधस्स दु पस्सिदूण परिणामं ।
जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमेत्तेण ।।३-३७-१०५

सान्वय अर्थ - (जीवम्हि) जीव के (हेदुभूदे) निमित्तभूत होने पर (बध ज्ञानावरणादि बन्ध का (परिणाम) परिणमन (पस्सिदूण) देखकर (जीव ने (कम्म) कर्म (कद) किया, यह (उवयारमेत्तेण) उपचारम (भण्णदि) कहा जाता है।

अर्थ - जीव के निमित्तभूत होने पर ज्ञानावरणादि बन्ध का परिणमन देखक ने कर्म किया' यह उपचार मात्र से कहा जाता है।

व्यवहार से कर्मों का कर्त्तृत्व -

जोधेहि कदे जुद्धे रायेण कद त्ति जम्पदे लोगो ।
तह ववहारेण कदं णाणावरणादि जीवेण ॥३-३८-१०६

सान्वय अर्थ - (जोधेहि) **योद्धाओं के द्वारा** (जुद्धे कदे) **युद्ध करने पर** (रायेण) **राजा ने** (कदं) **युद्ध किया** (त्ति) **इस प्रकार** (लोगो) **लोग** (जम्पदे) **कहते है** (तह) **उसी प्रकार** (णाणावरणादि) **ज्ञानावरणादि कर्म** (जीवेण) **जीव ने** (कद) **किया** (ववहारेण) **यह व्यवहार से कहा जाता है।**

अर्थ - योद्धाओं के द्वारा युद्ध करने पर 'राजा ने युद्ध किया' इस प्रकार लोग कहते है। उसी प्रकार ज्ञानावरणादि कर्म जीव ने किया, यह व्यवहार से कहा जाता है।

व्यवहार मे आत्मा पुद्गल का कर्ता है -

उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य।
आदा पोंग्गलदव्व ववहारणयस्स वत्तव्वं ।।३-३९-१०७

सान्वय अर्थ - (आदा) आत्मा (पोंग्गदव्व) पुद्गल द्रव्य को (उप्पादेदि) उपजाता है (करेदि य) करता है (बधदि) बाँधता है (परिणामएदि) परिणमन कराता है (य) और (गिण्हदि) ग्रहण करता है - यह (ववहारणयस्स्) व्यवहार नय का (वत्तव्व) कथन है।

अर्थ - आत्मा पुद्गल द्रव्य को उपजाता है, कराता है, बाँधता है, परिणमन कराता है और ग्रहण करता है, यह व्यवहार नय का कथन है।

क व्यवहार का कथन -

ह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगो त्ति आलविदो ।
ह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो ॥३-४०-१०८

अर्थ - (जह) जैसे (राया) राजा (दोसगुणुप्पादगो) प्रजा मे दोष
गो का उत्पन्न करने वाला है (त्ति) यह (ववहारा) व्यवहार से
दो) कहा जाता है (तह) उसी प्रकार (जीवो) जीव (ववहारा)
से, (दव्वगुणुप्पादगो) पुद्गल द्रव्य के द्रव्य और गुणो का उत्पादक
कहा गया है।

से राजा (प्रजा मे) दोष और गुणो का उत्पन्न करने वाला है, यह व्यवहार
जाता है, उसी प्रकार जीव व्यवहार से (पुद्गल द्रव्य के) द्रव्य और गुणो
क कहा गया है।

कर्म-बन्ध के चार मूल कारण -

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बधकत्तारो ।
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा ॥३-४१-१०९

तेसिं पुणो वि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो ।
मिच्छादिट्ठी आदी जाव सजोगिस्स चरमत ॥३-४२-११०

सान्वय अर्थ - (खलु) **वास्तव मे** (चउरो) **चार** (सामण्णपच्चया) **सामान्य-मूल प्रत्यय-आस्रव** (बधकत्तारो) **बन्ध के कर्त्ता** (भण्णति) **कहे जाते है - वे** (मिच्छत्त) **मिथ्यात्व** (अविरमण) **अविरति** (कसायजोगा य) **कषाय और योग** (बोद्धव्वा) **जानने चाहिए** (पुणो वि य) **और फिर** (तेसि) **उनका** (तेरसवियप्पो) **तेरह प्रकार का** (भेदो दु) **भेद** (भणिदो) **कहा गया है - वे** (मिच्छादिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि से लेकर** (सजोगिस्स) **सयोगी केवली के** (चरमत जाव) **चरम समय पर्यन्त है।**

अर्थ - वास्तव मे चार सामान्य प्रत्यय (मूलप्रत्यय-आस्रव) बन्ध के कर्त्ता कहे जाते है। (वे) मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग जानने चाहिये और फिर उनका तेरह प्रकार का भेद कहा गया है। (वे भेद) मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगी केवली के चरम समय पर्यन्त है।

प्रत्यय कर्मों के कर्ता है -

एदे अचेदणा खलु पोंग्गलकम्मुदयसंभवा जम्हा ।
ते जदि करंति कम्म ण वि तेसि वेदगो आदा ।।३-४३-१११

गुणसण्णिदा दु एदे कम्म कुव्वंति पच्चया जम्हा ।
तम्हा जीवोऽकत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि ।।३-४४-११२

सान्वय अर्थ - (एदे) **ये - मिथ्यात्वादि प्रत्यय** (खलु) **निश्चय से** (अचेदणा) **अचेतन है** (जम्हा) **क्योंकि** (पोंग्गलकम्मुदयसभवा) **ये पुद्गल कर्म के उदय से उत्पन्न होते है** (जदि) **यदि** (ते) **वे प्रत्यय** (कम्म) **कर्म** (करति) **करते है तो** (तेसि) **उन कर्मों का** (वेदगो वि) **भोक्ता भी** (आदा) **आत्मा** (ण) **नही है** (जम्हा) **क्योंकि** (एदे) **ये** (गुणसण्णिदा दु) **गुणस्थान नामक** (पच्चया) **प्रत्यय** (कम्म) **कर्म** (कुव्वति) **करते है** (तम्हा) **इसलिए** (जीवो) **जीव** (अकत्ता) **कर्मों का कर्त्ता नही है** (य) **और** (गुणा) **गुणस्थान नामक प्रत्यय ही** (कम्माणि) **कर्मों को** (कुव्वति) **करते है।**

अर्थ - ये मिथ्यात्वादि प्रत्यय निश्चय से अचेतन है क्योकि ये पुद्गल कर्म क उदय से उत्पन्न होते है। यदि वे प्रत्यय कर्म करते है तो करे, उन कर्मों का भोक्ता भी आत्मा नही है, क्योकि ये गुणस्थान नामक प्रत्यय कर्म करते है, इसलिए (निश्चय नय से) जीव कर्मों का कर्त्ता नही है और गुणस्थान नामक प्रत्यय ही कर्मों को करते है।

जीव और प्रत्यय एक नहीं है -

जह जीवस्स अणण्णुवओगो कोहो वि तह जदि अणण्णो ।
जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्णं ।।३-४५-११३

एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाजीवो ।
अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माणं ।।३-४६-११४

अह पुण अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा ।
जह कोहो तह पच्चय कम्मं णोकम्ममवि अण्णं ।।३-४७-११५

सान्वय अर्थ - (जह) **जैसे** (जीवस्स) **जीव के** (अणण्णुवओगो) **ज्ञानदर्शनोपयोग अभिन्न है** (तह) **उसी प्रकार** (जदि) **यदि** (कोहो वि) **क्रोध भी** (अणण्णो) **जीव से अभिन्न हो तो** (एव) **इस प्रकार** (जीवस्साजीवस्स य) **जीव और अजीव का** (अणण्णत्त) **अनन्यत्व** (आवण्ण) **प्राप्त हो गया** (एव च) **और ऐसा होने पर** (इह) **इस लोक मे** (जो दु) **जो** (जीवो) **जीव है** (सो एव दु) **वही** (णियमदो) **नियम से** (तहा) **उसी प्रकार** (अजीवो) **अजीव होगा** (पच्चयणोकम्मकम्माण) **प्रत्यय, नोकर्म और कर्मों के** (एयत्ते) **एकत्त्व मे भी** (अय दोसो) **यही दोष आता है** (अह पुण) **अथवा - इस दोष के भय से ऐसी मानो कि** (कोहो) **क्रोध** (अण्णो) **अन्य है और** (उवओगप्पगो) **उपयोग स्वरुप** (चेदा) **आत्मा** (अण्ण) **अन्य है - तो** (जह) **जैसे** (कोहो) **क्रोध - अन्य है** (तह) **उसी प्रकार** (पच्चय) **प्रत्यय** (कम्म) **कर्म और** (णोकम्ममवि) **नोकर्म भी** (अण्ण) **अन्य है।**

अर्थ - जैसे जीव के ज्ञानदर्शनोपयोग अभिन्न है, उसी प्रकार यदि क्रोध भी जीव से अनन्य हो तो इस प्रकार जीव और अजीव का अनन्यत्व (एकत्व) प्राप्त हो गया, और ऐसा होने पर इस लोक मे जो जीव है, वही नियम से उसी प्रकार अजीव होगा। प्रत्यय, कर्म और नोकर्म के एकत्व मे भी यही दोष आता, अथवा (इस दोष के भय से ऐसा मानो कि) क्रोध अन्य है और उपयोगस्वरुप आत्मा अन्य है तो जैसे क्रोध अन्य है, उसी प्रकार प्रत्यय, कर्म और नोकर्म भी अन्य है।

साख्यमत का निराकरण -

जीवे ण सयं बद्धं ण सयं परिणमदि कम्मभावेण ।
जदि पोंग्गलदव्वमिण अप्परिणामी तदा होदि ।।३-४८-११६

कम्मइयवग्गणासु य अपरिणमंतीसु कम्मभावेण ।
ससारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ।।३-४९-११७

जीवो परिणामयदे पोंग्गलदव्वाणि कम्मभावेण ।
ते सयमपरिणमते कह तु परिणामयदि चेदा ।।३-५०-११८

अह सयमेव हि परिणमदि कम्मभावेण पोंग्गलंदव्वं ।
जीवो परिणामयदे कम्मं कम्मत्तमिदिमिच्छा ।।३-५१-११९

णियमा कम्मपरिणद कम्म चिय होदि पोंग्गल दव्व ।
तह त णाणावरणाइपरिणदं मुणसु तच्चेव ।।३-५२-१२०

साान्वय अर्थ - (इण पोंग्गलदव्व) यह पुद्गल द्रव्य (जीवे) जीव मे (सय) स्वय (ण बद्ध) नही बँधा है और (कम्मभावेण) कर्मभाव से (सय) स्वयं (ण परिणमदि) परिणमन नही करता है (जदि) यदि ऐसा मानो (तदा) तब तो वह (अप्परिणामी) अपरिणामी (होदि) हो जाएगा (य) अथवा (कम्मइयवग्गणासु) कार्मणवर्गणाएँ (कम्मभावेण) कर्मभाव से द्रव्यकर्मरुप से (अपरिणमतीसु) परिणमन नही करती, ऐसा मानो तो (ससारस्स) ससार के (अभावो) अभाव का (पसज्जदे) प्रसग आ जाएगा (वा) अथवा (सखसमओ) साख्य मत का प्रसग आ जाएगा।

(जीवो) जीव (पोंग्गलदव्वाणि) पुद्गल द्रव्यो को (कम्मभावेण) कर्मभाव से (परिणामयदे) परिणमन कराता है, यदि ऐसा मानो तो (चेदा) जीव उन्हे (कह तु) किस प्रकार (परिणामयदि) परिणमन करा सकता है, जबकि (ते) वे पुद्गल द्रव्य (सयमपरिणमते) स्वयं परिणमन नहीं करते (अह) अथवा यह मानो कि (पोंग्गल दव्व) पुद्गल द्रव्य (सयमेव हि) स्वयं ही (कम्मभावेण) कर्मभाव से (परिणमदि) परिणमन करता है तो (जीवो) जीव

(कम्म) कर्मरुप पुद्गल को (कम्मत्त) कर्मरुप (परिणामयदे) परिणमन कराता है (इदि) यह कहना (मिच्छा) मिथ्या सिद्ध होता है; इसलिए (णियमा) जैसे नियम से (कम्मपरिणद) कर्मरुपकर्त्ता के कार्यरुप से परिणत (पोंग्गलदव्व) पुद्गल द्रव्य (कम्म चिय) कर्म ही (होदि) है (तह) इसी प्रकार (णाणावरणाइपरिणद) ज्ञानावरणादि रुप परिणमित (त) पुद्गल द्रव्य (तच्चेव) ज्ञानावरणादि ही है (मुणसु) ऐसा जानो।

अर्थ - यह पुद्गल द्रव्य जीव में स्वय नहीं बँधा है और कर्मभाव से स्वय परिणमन नही करता है - यदि ऐसा मानो, तब तो वह अपरिणामी हो जाएगा। अथवा कार्मण वर्गणाएँ द्रव्यकर्मरुप से परिणमन नही करती - ऐसा मानो तो ससार के अभाव का प्रसग आ जाएगा अथवा साख्यमत का प्रसग आ जाएगा।

जीव पुद्गल द्रव्यों को कर्मभाव से परिणमन कराता है - यदि ऐसा मानो तो जीव उन्हें किस प्रकार परिणमन करा सकता है, जबकि वे पुद्गल द्रव्य स्वय परिणमन नही करते, अथवा यह मानो कि पुद्गल द्रव्य स्वय ही कर्मभाव से परिणमन करता है तो जीव कर्मरुप पुद्गल को कर्मरुप परिणमन कराता है - यह कहना मिथ्या सिद्ध होता है। इसलिए जैसे नियम से कर्मरुप (कर्त्ता के कार्यरुप से) परिणत पुद्गल द्रव्य कर्म ही है, इसी प्रकार ज्ञानावरणादि रुप परिणमित पुद्गल द्रव्य ज्ञानावरणादि ही है, ऐसा जानो।

साख्यमतानुयायी शिष्य को संबोधन -

ण सय बद्धो कम्मे ण सयं परिणमदि कोहमादीहि ।
जदि एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि ।।३-५३-१२१

अपरिणमंतम्हि सयं जीवे कोहादिएहि भावेहि ।
ससारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ।।३-५४-१२२

पोंग्गलकम्मं कोहो जीवं परिणामएदि कोहत्तं ।
तं सयमपरिणमतं किह परिणामयदि कोहत्त ।।३-५५-१२३

अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धी ।
कोहो परिणामयदे जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा ।।३-५६-१२४

कोहवजुत्तो कोहो माणवजुत्तो य माणमेवादा ।
माउवजुत्तो माया लोहुवजुत्तो हवदि लोहो ।।३-५७-१२५

सान्वय अर्थ - (जदि) यदि (तुज्झ) तेरी ऐसी मान्यता है कि (एस) यह (जीवो) जीव (कम्मे) कर्म मे (सय) स्वय (बद्धो ण) बँधा नही है - और (कोहमादीहि) क्रोधादि भावो से (सय) स्वय (ण परिणमदि) परिणमन नही करता है (तदा) तब तो वह (अप्परिणामी) अपरिणामी (होदि) सिद्ध होता है - और (कोहादिएहि) क्रोधादि (भावेहि) भावरुप से (जीवे) जीव के (सय) स्वय (अपरिणमतम्हि) परिणमन न करने पर (ससारस्स) ससार के (अभावो) अभाव का (पसज्जदे) प्रसंग आ जाएगा (वा) अथवा (सखसमओ) साख्यमत का प्रसग आ जाएगा।

यदि यह कहो कि (पोंग्गलकम्म) पुद्गल कर्मरुप (कोहो) क्रोध (जीव) जीव को (कोहत्त) क्रोधभावरुप (परिणामएदि) परिणमाता है, तो (सयमपरिणमत त) स्वय परिणमन न करने वाले जीव को (कोहत्त) क्रोधरुप (किह) किस प्रकार (परिणामयदि) परिणमन करा सकता है।

(अह) अथवा (अप्पा) आत्मा (सय) स्वयं (कोहभावेण) क्रोधभाव से (परिणमदि) परिणमन करता है (दे) यदि तेरी (एस बुद्धी) ऐसी मान्यता है

तो (कोहो) क्रोध (जीव) जीव को (कोहत्त) क्रोधभावरुप (परिणामयदे) परिणमन कराता है (इदि) यह कहना (मिच्छा) मिथ्या ठहरेगा।

अतः सिद्ध हुआ कि (कोहवजुत्तो) क्रोध में उपयुक्त - जिसका उपयोग क्रोधाकार परिणमित हुआ है ऐसा - (आदा) आत्मा (कोहो) क्रोध ही है (य) और (माणवजुत्तो) मान में उपयुक्त आत्मा (माणमेव) मान ही हैं (माउवजुत्तो) माया मे उपयुक्त आत्मा (माया) माया है - और (लोहुवजुत्तो) लोभ मे उपयुक्त आत्मा (लोहो) लोभ (हवदि) है।

अर्थ - (साख्यमतानुयायी शिष्य के प्रति आचार्य कहते है कि -) यदि तेरी ऐसी मान्यता है कि यह जीव कर्म में स्वय नही बँधा है और क्रोधादि भावो मे स्वय परिणमन नही करता है, तब तो वह अपरिणामी सिद्ध होता है (और) क्रोधादि भावरुप से जीव के स्वय परिणमन न करने पर ससार के अभाव का प्रसग आ जाएगा अथवा साख्यमत का प्रसग आ जाएगा।

(यदि यह कहो कि) पुद्गल कर्मरुप क्रोध जीव को क्रोधभावरुप परिणमाता है तो स्वय परिणमन न करने वाले जीव को क्रोधरुप किम प्रकार परिणमन करा सकता है।

अथवा आत्मा स्वय क्रोधभाव मे परिणमन करता है, यदि तेरी ऐसी मान्यता है तो क्रोध जीव को क्रोधभाव रुप परिणमन कराता है यह कहना मिथ्या ठहरेगा।

(अत सिद्ध हुआ कि) क्रोध मे उपयुक्त (जिसका उपयोग क्रोधाकार परिणमित हुआ है ऐसा) आत्मा क्रोध ही है, मान मे उपयुक्त आत्मा मान ही है, माया मे उपयुक्त आत्मा माया है और लोभ मे उपयुक्त आत्मा लोभ है।

आत्मा अपने भावों का कर्त्ता है -

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स ।
णाणिस्स दु णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ।।३-५८-१२६

सान्वय अर्थ - (आदा) आत्मा (जं भाव) जिस भाव का (कुणदि) करता है (सो) वह (तस्स कम्मस्स) उस भावकर्म का (कत्ता) कर्त्ता (होदि) होता है (णाणिस्स दु) ज्ञानी के तो (णाणमओ) ज्ञानमय भाव होता है - और (अणाणिस्स) अज्ञानी के (अण्णाणमओ) अज्ञानमय भाव होता है।

अर्थ - आत्मा जिस भाव का करता है, वह उस भावकर्म का कर्त्ता होता है। ज्ञानी के तो ज्ञानमय भाव होता है और अज्ञानी के अज्ञानमय भाव होता है।

ज्ञान और अज्ञानमय भाव का कार्य -

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि।
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तम्हा दु कम्माणि ॥३-५९-१२७

सान्वय अर्थ - (अणाणिणो) **अज्ञानी के** (अण्णाणमओ) **अज्ञानमय** (भावो) **भाव होता है** (तेण) **इस कारण वह** (कम्माणि) **कर्मों को** (कुणदि) **करता है** (णाणिस्म दु) **और ज्ञानी के तो** (णाणमओ) **ज्ञानमय भाव होता है** (तम्हा दु) **इस कारण वह** (कम्माणि) **कर्मों को** (ण) **नही** (कुणदि) **करता है।**

अर्थ - अज्ञानी के अज्ञानमय भाव होता है, इस कारण वह कर्मों को करता है, और ज्ञानी के तो ज्ञानमय भाव होता है, इसी कारण वह कर्मों को नही करता है।

ज्ञानी के सब भाव ज्ञानमय और अज्ञानी के अज्ञानमय होते है -

णाणमया भावादो णाणमओ चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया ।।३-६०-१२८

अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ।।३-६१-१२९

सान्वय अर्थ - (जम्हा) **क्योंकि** (णाणमया भावादो) **ज्ञानमय भाव से** (णाणमओ) **ज्ञानमय** (चेव) **ही** (भावो) **भाव** (जायदे) **उत्पन्न होता है** (तम्हा) **इस कारण** (णाणिम्स) **ज्ञानी के** (सव्वे) **सब** (भावा) **भाव** (हु) **वास्तव मे** (णाणमया) **ज्ञानमय होते है** (च) **और** (जम्हा) **क्योंकि** (अण्णाणमया भावा) **अज्ञानमय भाव से** (अण्णाणो एव) **अज्ञानमय ही** (भावो) **भाव** (जायदे) **उत्पन्न होता है** (तम्हा) **इस कारण** (अणाणिस्स) **अज्ञानी के** (भावा) **सब भाव** (अण्णाणमया) **होते है।**

अर्थ - क्योकि ज्ञानमय भाव से ज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होता है, इस कारण ज्ञानी के सब भाव वास्तव मे ज्ञानमय होते है, क्योकि अज्ञानमय भाव से अज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होता है, इस कारण अज्ञानी के सब भाव अज्ञानमय होते है।

दृष्टान्त द्वारा पूर्वोक्त का स्पष्टीकरण -

कणयमया भावादो जायते कुंडलादयो भावा ।
अयमयया भावादो जह जायंते दु कडयादी ।।३-६२-१३०

अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहा वि जायंते ।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ।।३-६३-१३१

सान्वय अर्थ - (जहा) **जैसे** (कणयमया भावादो) **स्वर्णमय भाव से** (कुडलादयो भावा) **कुण्डल आदि भाव** (जायते) **उत्पन्न होते हैं** (दु) **तथा** (अयमयया भावादो) **लोहमय भाव से** (कडयादी) **कड़ा आदि भाव** (जायते) **उत्पन्न होते हैं** (तहा) **इसी प्रकार** (अणाणिणो) **अज्ञानी के अज्ञानमय भाव से** (बहुविहा वि) **अनेक प्रकार के** (अण्णाणमया भावा) **अज्ञानमय भाव** (जायते) **उत्पन्न होते है** (दु) **तथा** (णाणिस्स) **ज्ञानी के ज्ञानमय भाव से** (सव्वे) **समस्त** (णाणमया भावा) **ज्ञानमय भाव** (होंति) **होते हैं।**

अर्थ - जैसे स्वर्णमय भाव से कुण्डल आदि भाव उत्पन्न होते है तथा लोहमय भाव से कड़ा आदि भाव उत्पन्न होते है, इसी प्रकार अज्ञानी के (अज्ञानमय भाव से) अनेक प्रकार के अज्ञानमय भाव उत्पन्न होते है तथा ज्ञानी के (ज्ञानमय भाव से) समस्त ज्ञानमय भाव होते है।

कर्म-बन्ध के चार कारण -

अण्णाणस्स दु उदओ जा जीवाणं अतच्चउवलद्धी ।
मिच्छत्तस्स दु उदओ जीवस्स असद्दहाणत्तं ॥३-६४-१३२

उदओ असंजमस्स दु जं जीवाणं हवेदि अविरमणं ।
जो दु कलुसोवओगो जीवाण सो कसाउदओ ॥३-६५-१३३

तं जाण जोगउदयं जो जीवाणं तु चिट्ठउच्छाहो ।
सोहणमसोहणं वा कादव्वो विरदिभावो वा ॥३-६६-१३४

सान्वय अर्थ - (जीवाण) **जीवो के** (जा) **जो** (अतच्चउवलद्धी) **विपरीत ज्ञान-वस्तु-स्वरूप का अयथार्थ ज्ञान है** (दु) **वह तो** (अण्णाणस्स) **अज्ञान का** (उदओ) **उदय है** (दु) **तथा** (जीवस्स) **जीव के** (असद्दहाणत्त) **जो तत्त्व का अश्रद्धान है - वह** (मिच्छत्तस्स) **मिथ्यात्व का** (उदओ) **उदय है** (दु) **और** (जीवाण) **जीवो के** (ज) **जो** (अविरमण) **अत्यागभाव - विषयो से विरत न होना है - वह** (असजमस्स) **असयम का** (उदओ) **उदय** (हवेदि) **है** (दु) **और** (जीवाण) **जीवो के** (जो) **जो** (कलुसोवओगो) **मलिन उपयोग क्रोधादि कषायरूप उपयोग है** (सो) **वह** (कसाउदओ) **कषाय का उदय है** (तु) **तथा** (जीवाण) **जीवो के** (जो) **जो** (सोहणमसोहण वा) **शुभरूप या अशुभरूप** (कादव्वो विरदिभावो वा) **प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिरूप** (चिट्ठउच्छाहो) **मन, वचन, काय के व्यापार मे उत्साह है** (त) **उसे** (जोगउदय) **योग का उदय** (जाण) **जानो।**

अर्थ - जीवो के जो विपरीत ज्ञान (वस्तु-स्वरूप का अयथार्थ ज्ञान) है, वह तो अज्ञान का उदय है, तथा जीव के तत्त्व का अश्रद्धान है, वह मिथ्यात्व का उदय है, और जीवो के जो अत्यागभाव (विषयो से विरत न होना) है, वह असयम का उदय है, और जीवो के जो मलिन उपयोग (क्रोधादि कषाय रूप उपयोग) है, वह कषाय का उदय है, तथा जीवो के जो शुभरूप या अशुभरूप, प्रवृत्तिरूप अथवा निवृत्तिरूप मन वचन, काय के व्यापार मे उत्साह है, उसे योग का उदय जानो।

द्रव्यकर्म और भावकर्म का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध -

एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागद ज तु ।
परिणमदे अट्ठविह णाणावरणादि भावेहि ॥३-६७-१३५

तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागद जइया ।
तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाण ॥३-६८-१३६

सान्वय अर्थ - (एदेसु हेदुभूदेसु) इन मिथ्यात्व आदि उदयो के हेतुभूत होने पर (कम्मइयवग्गणागद) कार्मणवर्गणाओ के रुप मे आया हुआ (ज तु) जो पुद्गल द्रव्य है वह (णाणावरणादि भावेहि) ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्म के रुप मे (अट्ठविह) आठ प्रकार (परिणमदे) परिणमन करता है (त कम्मइयवग्गणागद) वह कार्मण वर्गणागत पुद्गलद्रव्य (जइया) जब (खलु) वास्तव मे (जीवणिबद्ध) जीव के साथ बधता है (तइया दु) उस काल मे (जीवो) जीव (परिणामभावाण) अपने अज्ञानमय परिणामरुप भावो का (हेदू) हेतु (होदि) होता है।

अर्थ - इन मिथ्यात्व आदि उदयो के हेतुभूत होने पर कार्मण वर्गणाओ के रुप मे आया हुआ जो पुद्गल द्रव्य है, वह ज्ञानावरण आदि द्रव्य कर्म के रुप मे आठ प्रकार परिणमन करता है। वह कार्मणवर्गणागत पुद्गल द्रव्य जब वास्तव मे जीव के साथ बँधता है, उस काल मे जीव अपने अज्ञानमय परिणामरुप भावो का कारण होता है।

जीव का परिणाम पुद्गल द्रव्य से भिन्न है -

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा दु होंति रागादी ।
एव जीवो कम्मं च दो वि रागादिभावण्णा ॥३-६९-१३७

एकस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहि ।
ता कम्मोदयहेदूहि विणा जीवस्स परिणामो ॥३-७०-१३८

सान्वय अर्थ - **यदि** (जीवस्स दु) **जीव के** (कम्मेण य सह) **पुद्गल कर्म के साथ ही** (रागादी परिणामा दु) **रागादि परिणाम** (होंति) **होते हैं** (एव) **इस प्रकार तो** (जीवो कम्म च) **जीव और कर्म** (दो वि) **दोनो ही** (रागादिभावण्णा) **रागादि भाव को प्राप्त हो जाएँ** (दु) **किन्तु** (रागमादीहि परिणामो) **रागादि अज्ञान परिणाम** (एकस्स जीवस्स) **एक जीव के ही** (जायदि) **होता है** (ता) **इसलिए** (कम्मोदयहेदूहि विणा) **कर्म के उदयरुप निमित्तकारण से पृथक् ही** (जीवस्स) **जीव का** (परिणामो) **परिणाम है।**

अर्थ - यदि जीव के पुद्गल कर्म के साथ ही रागादि परिणाम होते है, ऐसा माने तो जीव और कर्म दोनो ही रागादि भाव को प्राप्त हो जाएँ, किन्तु रागादि अज्ञान परिणाम एक जीव के ही होता है, इसलिए कर्म के उदयरुप निमित्तकारण से पृथक् ही जीव का परिणाम है।

पुद्गल द्रव्य का परिणाम जीव से भिन्न है -

जदि जीवेण सहच्चिय पोंग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो ।
एव पोंग्गलजीवा हु दो वि कम्मत्तमावण्णा ॥३-७१-१३९

एकस्स दु परिणामो पोंग्गलदव्वस्स कम्मभावेण ।
ता जीवभावहेदूहि विणा कम्मस्स परिणामो ॥३-७२-१४०

सान्वय अर्थ - (जदि) यदि (जीवेण सहच्चिय) **जीव के साथ ही** (पोंग्गलदव्वस्स) **पुद्गल द्रव्य का** (कम्मपरिणामो) **कर्मरुप परिणाम होता है** (एव) **इस प्रकार माना जाए तो** (पोंग्गलजीवा) **पुद्गल और जीव** (दो वि हु) **दोनो ही** (कम्मत्तमावण्णा) **कर्मत्व को प्राप्त हो जाएँगे** (दु) **किन्तु** (कम्मभावेण) **कमभाव से** (परिणामो) **परिणाम** (एकस्स पोंग्गलदव्वस्स) **एक पुद्गल द्रव्य का ही होता है** (ता) **इसलिए** (जीवभावहेदूहि विणा) **जीव के रागादि अज्ञानपरिणामरुप निमित्तकारण से पृथक् ही** (कम्मस्स) **कर्म का** (परिणामो) **परिणाम है।**

अर्थ - यदि जीव के साथ ही पुद्गल द्रव्य का कर्मरुप परिणाम होता है, इस प्रकार माना जाए तो पुद्गल और जीव दोनो ही कर्मत्व को प्राप्त हो जाएँगे, किन्तु कर्मभाव से परिणाम एक पुद्गल द्रव्य का ही होता है, इसलिए जीव के रागादि अज्ञान परिणामरुप निमित्त कारण से पृथक् ही पुद्गल द्रव्य कर्म का परिणाम है।

जीव के साथ कर्मों का सम्बन्ध -

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं ।
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवदि कम्मं ॥३-७३-१४१

सान्वय अर्थ - (जीवे) **जीव मे** (कम्म) **कर्म** (बद्ध) **उसके प्रदेशो के साथ बँधा हुआ है** (पुट्ठ च) **और उसे स्पर्श करता है** (इदि) **यह** (ववहारणय भणिद) **व्यवहार नय का कथन है** (दु) **और** (जीवे) **जीव मे** (कम्म) **कर्म** (अबद्धपुट्ठ हवदि) **अबद्ध और अस्पृष्ट है** (सुद्धणयस्म) **यह शुद्धनय - निश्चयनय का कथन है।**

अर्थ - जीव मे कर्म (उसके प्रदेशो के साथ) बँधा हुआ है और उसे स्पर्श करता है, यह व्यवहार नय का कथन है और जीव मे कर्म अबद्ध और अस्पृष्ट है, यह निश्चयनय का कथन है।

समयसार नयपक्षों से रहित है -

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एदं तु जाण णयपक्खं ।
णयपक्खातिक्कंतो[1] भण्णदि जो सो समयसारो ।।३-७४-१४२

सान्वय अर्थ - (जीवे) **जीव मे** (कम्म) **कर्म** (बद्ध) **बँधा है - अथवा** (अबद्ध) **नहीं बँधा** (एद तु) **यह तो** (णयपक्ख) **नयपक्ष** (जाण) **जानो; और** (जो) **जो** (णयपक्खातिक्कतो) **नयपक्ष से अतिक्रान्त - नयपक्ष के विकल्प से रहित** (भण्णदि) **कहलाता है** (सो) **वह** (समयसारो) **समयसार - निर्विकल्प शुद्ध आत्मतत्त्व है।**

अर्थ - जीव में कर्म बँधा है अथवा नही बँधा है, यह तो नयपक्ष जानो (इस प्रकार का कोई भी विकल्प नयपक्ष है, ऐसा जानो) और जो नयपक्ष से अतिक्रान्त (किसी भी नयपक्ष के विकल्प से रहित) कहलाता है, वह समय-सार (निर्विकल्प शुद्ध आत्मतत्त्व) है।

---

[1] पक्खातिक्कतो पुण इत्यपिपाठ ।

पक्षातिक्रान्त का स्वरुप -

दोण्ह वि णयाण भणिद जाणदि णवरि तु समयपडिबद्धो ।
ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचि वि णयपक्खपरिहीणो ।।३-७५-१४३

सान्वय अर्थ - (दोण्ह वि) **दोनो ही** (णयाण) **नयो के** (भणिद) **कथन को** (णवरि तु) **केवल मात्र** (जाणदि) **जानता है** - **और** (समयपडिबद्धो) **सहज परमानन्दैक स्वभाव आत्मा का अनुभव करता हुआ और** (णयपक्खपरिहीणो) **समस्त नयपक्षो के विकल्प से रहित हुआ** (णयपक्ख दु) **किसी भी नयपक्ष को** (किंचि वि) **किंचिन्मात्र भी** (ण गिण्हदि) **ग्रहण नही करता।**

अर्थ - (श्रुतज्ञानी आत्मा) दोनो ही नयो के कथन को केवलमात्र जानता है। वह (सहज परमानन्दैक स्वभाव) आत्मा का अनुभव करता हुआ और समस्त नयपक्ष के विकल्पों से रहित हुआ किसी भी नयपक्ष को किंचिन्मात्र भी ग्रहण नही करता (आत्मानुभाव के समय नयो के विकल्प दूर हो जाते है)

समयसार ज्ञानदर्शन स्वरुप है -

सम्मद्दंसणणाणं एसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं ।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ।।३-७६-१४४

सान्वय अर्थ - (जो) **जो** (सव्वणयपक्खरहिदो) **समस्त नयपक्ष से रहित** (भणिदो) **कहा गया है** (सो) **वह** (समयसारो) **समयसार है** (एसो) **यह समयसार ही** (णवरि) **केवल** (सम्मद्दसणणाण) **सम्यग्दर्शनज्ञान** (त्ति) **इस** (ववदेस) **नाम को** (लहदि) **पाता है।**

अर्थ - जो समस्त नयपक्ष से रहित कहा है, वह समयसार है। यह समयसार ही केवल सम्यग्दर्शनज्ञान इस नाम को पाता है (समयसार ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।)

इदि तिदियो कत्तिकम्माधियारो समत्तो

चउत्थो पुण्णपावाधियारो

शुभ कर्म भी संसार का कारण है -

कम्ममसुह कुसील सुहकम्मं चावि जाणह सुसील ।
किह तं होदि सुसील जं ससारं पवेसेदि ।।४-१-१४५

सान्वय अर्थ - (असुह) अशुभ (कम्म) कर्म (कुसील) कुशील है (अवि्च) और (सुहकम्म) शुभ कर्म (सुसील) सुशील है - ऐसा (जाणह) तुम जानते हो, किन्तु (ज) जो कर्म (ससार) जीव को संसार मे (पवेसेदि) प्रवेश कराता है (त) वह कर्म (किह) किस प्रकार (सुसील) सुशील (होदि) हो सकता है।

अर्थ - अशुभ कर्म कुशील (बुरा) है और शुभकर्म सुशील (अच्छा) है, ऐसा तुम जानते हो, किन्तु जो कर्म जीव को ससार मे प्रवेश कराता है, वह किस प्रकार सुशील (अच्छा) हो सकता है?

शुभाशुभ कर्मबन्ध के कारण हैं -

सोवण्णियं पि णियल बंधदि कालायस पि जह पुरिस ।
बंधदि एव जीव सुहमसुह वा कद कम्म ॥४-२-१४६

सान्वय अर्थ - (जह) जैसे (सोवण्णिय) सोने की (णियल) बेड़ी (पि) भ (पुरिसं) पुरुष को (बधदि) बाँधती है, और (कालायस) लोहे की बेड़ी (पि भी बाँधती है (एव) इसी प्रकार (सुहमसुह वा) शुभ या अशुभ (कद कम्म किया हुआ कर्म (जीव) जीव को (बधदि) बाँधता है।

अर्थ - जैसे मोने की बेडी भी पुरुष को बाँधती है और लोहे की बेडी भी बाँधत है। इसी प्रकार शुभ या अशुभ किया हुआ कर्म जीव का बाँधता है (दोनो ह बन्धनरुप है)।

शुभाशुभ दोनों त्याज्य है -

तम्हा दु कुसीलेहि य राग मा काहि मा व संसग्गि ।
साधीणो हि विणासो कुसील संसग्गि रागेण ।।४-३-१४७

सान्वय अर्थ - (तम्हा दु) इसलिए (कुसीलेहि य) इन शुभ और अशुभ दोनो कुशीलो से (राग) राग (मा काहि) मत करो (व) तथा (ससग्गि) संसर्ग भी (मा) मत करो (हि) क्योंकि (कुसील ससग्गिरागेण) कुशील के साथ संसर्ग और राग करने से (साधीणो) स्वाधीन सुख का (विणासो) विनाश होता है।

अर्थ - इसलिए शुभ और अशुभ इन दोनो कुशीलो के साथ राग मत करो तथा ससर्ग भी मत करो, क्योंकि कुशील के साथ ससर्ग और राग करने से स्वाधीन सुख का विनाश होता है।

पूर्वोक्त का स्पष्टीकरण -

जह णाम को वि पुरिसो कुच्छियसील जण वियाणित्ता ।
वज्जेदि तेण समय ससग्गि रागकरण च ॥४-४-१४८

एमेव कम्मपयडी सीलसहाव हि कुच्छिद णादु ।
वज्जति परिहरति य तं ससग्गि सहावरदा ॥४-५-१४९

सान्वय अर्थ - (जह णाम) **जैसे** (को वि) **कोई** (पुरिसो) **र** (कुच्छियसील) **कुत्सित स्वभाव वाले** (जण) **पुरुष को** (वियाणित्ता) **जान** (तेण समय) **उसके साथ** (ससग्गि) **ससर्ग** (रागकरण च) **और राग क** (वज्जेदि) **छोड़ देता है** (एमेव) **इसी प्रकार** (सहावरदा) **स्वभाव मे रत ज्ञ** **जीव** (कम्मपयडी सीलसहाव) **कर्म प्रकृति के शील-स्वभाव को** (कुचि **कुत्सित** (णादु) **जानकर** (हि) **निश्चय ही** (त ससग्गि) **उसके साथ ससर्ग** (वज्जति) **छोड देते है** (य) **और** (परिहरति) **राग को छोड देते है।**

अर्थ - जैसे कोई पुरुष कुत्सित स्वभाव वाले पुरुष को जानकर उसके साथ स और राग करना छोड देता है, इसी प्रकार स्वभाव मे रत ज्ञानी जीव कर्म-प्रकृि शील-स्वभाव को कुत्सित जानकर निश्चय ही उसके साथ ससर्ग को छोड द और (राग को) छोड देते है।

हे भव्य ! तू कर्मों मे राग मत कर -

रत्तो बंधदि कम्म मुञ्चदि जीवो विरागसपण्णो ।
एसो जिणोवदेशो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ।।४-६-१५०

सान्वय अर्थ - (रत्तो) रागी (जीवो) जीव (कम्म) कर्मों को (बधदि) बॉधता है और (विरागसपण्णो) विरक्त जीव (मुञ्चदि) कर्मों से छूटता है (एसो) यह (जिणोवदेसो) जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है (तम्हा) इसलिए हे भव्य जीव ! (कम्मेसु) कर्मों मे (मा रज्ज) तू राग मत कर ।।

अर्थ - रागी जीव कर्मों को बॉधता है और विरागी जीव कर्मो से छूटता है, यह जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है, इसलिए (हे भव्य जीव !) तू कर्मो मे राग मत कर ।

ज्ञान निर्वाण का कारण है -

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी ।
तम्हि ट्ठिदा सहावे[1] मुणिणो पावंति णिव्वाणं ।।४-७-१५१

सान्वय अर्थ - (खलु) निश्चय से (जो) जो (परमट्ठो) परमार्थ - आत्मा है - वह (समओ) समय - शुद्ध गुण-पर्यायों में परिणमन करने वाला है (सुद्धो) शुद्ध-समस्त नयपक्षों से रहित एक ज्ञान स्वरुप होने से शुद्ध है (केवली) केवली-केवल चिन्मात्र वस्तुस्वरुप होने से केवली है (मुणी) मुनि - केवल मननमात्र भावस्वरुप होने से मुनि है (णाणी) ज्ञानी - स्वयं ही ज्ञानस्वरुप होने से ज्ञानी है (तम्हि सहावे) उस परमात्म स्वभाव में (ट्ठिदा) स्थित (मुणिणो) मुनिजन (णिव्वाण) निर्वाण को (पावंति) प्राप्त करते है।

अर्थ - निश्चय से जो परमार्थ (आत्मा) है, वह समय (शुद्ध गुण-पर्यायों में परिणमन करने वाला) है, शुद्ध (समस्त नयपक्षों से रहित एक ज्ञानस्वरुप होने से शुद्ध) है, केवली (केवल चिन्मात्र वस्तुस्वरुप होने से केवली) है, मुनि (केवल मननमात्र भावस्वरुप होने से मुनि) है, ज्ञानी (स्वयं ही ज्ञानस्वरुप होने से ज्ञानी) है। उस परमात्मस्वभाव में स्थित मुनिजन निर्वाण को प्राप्त करते है।

---

[1]सब्भावे इत्यपि पाठ । आत्मख्याति के अनुसार सहावे और सब्भावे में केवल शब्दभेद है, अर्थभेद नहीं ।

अज्ञानी का व्रत, तप निष्फल है -

परमट्ठम्मि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारयदि ।
त सव्व बालतव बालवद विति सव्वण्हू ।।४-८-१५२

सान्वय अर्थ - (जो) **जो** (परमट्ठम्मि) **परमार्थ मे** (दु) **तो** (अठिदो) **स्थित नही है, किन्तु** (तव) **तप** (कुर्णादि) **करता है** (च) **और** (वद) **व्रत** (धारयदि) **धारण करता है** (त सव्व) **उसके उस समस्त तप और व्रत को** (सव्वण्हू) **सर्वज्ञदेव** (बालतव) **बालतप और** (बालवद) **बालव्रत** (विति) **कहते है।**

अर्थ - जो परमार्थ मे तो स्थित नही है, किन्तु तप करता है और व्रत धारण करता है, उसके उस समस्त तप और व्रत को सर्वज्ञदेव बालतप और बालव्रत कहते है।

अज्ञानी को निर्वाण नही है -

वदणियमाणि धरता सीलाणि तहा तव च कुव्वंता।
परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाण ते ण विदति ।।४-९-१५३

सान्वय अर्थ - (वदणियमाणि) **व्रत और नियमो को** (धरता) **धारण करते हुए भी** (तहा) **तथा** (सीलाणि) **शील** (च) **और** (तव) **तप** (कुव्वता) **करते हुए भी** (जे) **जो** (परमट्ठबाहिरा) **परमार्थ से बाह्य है - परमार्थभूत ज्ञानस्वरुप आत्मा की जिन्हे अनुभूति नही है** (ते) **वे** (णिव्वाण) **निर्वाण को** (ण) **नहीं** (विदति) **प्राप्त करते।**

अर्थ - व्रत और नियमों को धारण करते हुए तथा शील और तप करते हुए भी जो परमार्थ से बाह्य है (जिन्हे परमार्थभूत ज्ञानस्वरुप आत्मा की अनुभूति नही है), वे निर्वाण को प्राप्त नही करते।

पुण्य ससार का कारण है -

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति ।
ससारगमणहेदु वि मोंक्खहेदु अयाणंता ।।४-१०-१५४

सान्वय अर्थ - (जे) जो (परमट्ठबाहिरा) परमार्थ से बाह्य है - शुद्ध आत्मस्वरुप का जिन्हे अनुभव नही है (ते) वे (मोंक्खहेदु) मोक्ष के हेतु को (अयाणता) न जानते हुए (अण्णाणेण) अज्ञान से (ससारगमणहेदु वि) ससार-गमन का हेतु होने पर भी (पुण्णमिच्छति) पुण्य को चाहते है।

अर्थ - जो परमार्थ से बाह्य है (शुद्ध आत्मस्वरुप का जिन्हें अनुभव नही है), वे मोक्ष के हेतु को न जानते हुए अज्ञान से ससार-गमन के भी कारण पुण्य को चाहते है।

मोक्ष-मार्ग -

जीवादीसद्दहण सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाण ।
रागादीपरिहरणं चरण एसो दु मोॅक्खपहो ।।४-११-१५५

सान्वय अर्थ - (जीवादीसद्दहण) **जीवादिक नौ पदार्थों का श्रद्धान करना** (सम्मत्त) **सम्यग्दर्शन है** (तेसिमधिगमो) **उन्ही पदार्थों का सशय, विमोह और विभ्रम से रहित ज्ञान** (णाण) **सम्यग्ज्ञान है** (रागादी परिहरण) **रागादिक का परित्याग** (चरण) **सम्यक् चारित्र है** (एसो दु) **यही** (मोॅक्खपहो) **मोक्ष का मार्ग है।**

अर्थ - जीवादिक नौ पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। उन्ही पदार्थों का सशय, विमोह और विभ्रम से रहित ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। रागादिक का परित्याग सम्यक्चारित्र है। यही मोक्ष का मार्ग है।

यति कर्मों का क्षय करता है -

मोंत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्ठति ।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण[1] कम्मक्खओ होदि ।।४-१२-१५६

सान्वय अर्थ - (णिच्छयट्ठ) निश्चय नय के विषय को (मोंत्तूण) छोड़कर (विदुसा) विद्वान् (ववहारेण) व्यवहार के द्वारा (पवट्ठति) प्रवृत्ति करते है (दु) किन्तु (परमट्ठमस्सिदाण) निज शुद्धात्मभूत परमार्थ के आश्रित (जदीण) यतियो के ही (कम्मक्खओ) कर्मों का क्षय (होदि) होता है।

अर्थ - निश्चयनय के विषय को छोडकर विद्वान् व्यवहार के द्वारा प्रवृत्ति करते है, किन्तु निज शुद्धात्मभूत परमार्थ के आश्रित यतियो के ही कर्मों का क्षय होता है।

---

[1]निरत कार्त्स्न्यनिवृत्तौ भवति यति ममयसारभूतोऽयम् ।

- पुरुषार्थसिद्ध्युपाय १४७

रत्नत्रय की मलिनता के कारण -

वत्थस्स सेदभावो जह णासदि मलविमेलणोच्छण्णो ।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णादव्व ।।४-१३-१५७

वत्थस्स सेदभावो जह णासदि मलविमेलणोच्छण्णो ।
अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाण होदि णादव्वं ।।४-१४-१५८

वत्थस्स सेदभावो जह णासदि मलविमेलणोच्छण्णो ।
कस्सायमलोच्छण्ण तह चारित्त पि णादव्व[1] ।।४-१५-१५९

सान्वय अर्थ - (जह) जैसे (मलविमेलणोच्छण्णो) मैल से व्याप्त हुआ (वत्थस्स) वस्त्र का (सेदभावो) श्वेतभाव (णासदि) नष्ट हो जाता है (तह) उसी प्रकार (मिच्छत्तमलोच्छण्ण) मिथ्यात्व रूपी मैल से व्याप्त (सम्मत्त) सम्यक्त्व (खु) निश्चय ही तिरोहित हो जाता है, (णादव्व) ऐसा जानना चाहिये।

(जह) जिस प्रकार (मलविमेलणोच्छण्णो) मैल से व्याप्त हुआ (वत्थस्स) वस्त्र का (सेदभावो) श्वेतभाव (णासदि) नष्ट हो जाता है (तह) उसी प्रकार (अण्णाणमलोच्छण्ण) अज्ञानरूपी मैल से व्याप्त (णाण) ज्ञान (होदि) तिरोहित हो जाता है, (णादव्व) ऐसा जानना चाहिये।

(जह) जिस प्रकार (मलविमेलणोच्छण्णो) मैल से व्याप्त हुआ (वत्थस्स) वस्त्र का (सेदभावो) श्वेतभाव (णासदि) नष्ट हो जाता है (तह पि) उसी प्रकार (कस्सायमलोच्छण्ण) कषाय से व्याप्त हुआ (चारित्त) चारित्र (होदि) तिरोहित हो जाता है, (णादव्व) ऐसा जानना चाहिये।

अर्थ - जैसे मैल से व्याप्त हुआ वस्त्र का श्वेतभाव नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार मिथ्यात्वरूपी मैल से व्याप्त सम्यक्त्व निश्चय ही तिरोहित हो जाता है, ऐसा जानना चाहिये।

---

[1] मूडबद्रीताडपत्रप्रतौ ।

जिस प्रकार मैल से व्याप्त हुआ वस्त्र का श्वेतभाव नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अज्ञानरुपी मैल से व्याप्त ज्ञान तिरोहित हो जाता है, ऐसा जानना चाहिये।

जिस प्रकार मैल से व्याप्त हुआ वस्त्र का श्वेतभाव नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार कषाय से व्याप्त हुआ चारित्र तिरोहित हो जाता है, ऐसा जानना चाहिये।

कर्म स्वय ही बन्धस्वरूप है -

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरयेण णिएणावच्छण्णो ।
संसारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्व ।।४-१६-१६०

सान्वय अर्थ - (सो) **वह आत्मा** (सव्वणाणदरिसी) **सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है फिर भी वह** (णिएण) **अपने** (कम्मरयेण) **कर्मरूपी रज से** (अवच्छण्णो) **आच्छादित है - अत वह** (समारसमावण्णो) **संसार को प्राप्त हुआ है - वह** (सव्व) **सब पदार्थों को** (सव्वदो) **सब प्रकार से** (ण विजाणदि) **नही जानता।**

अर्थ - वह आत्मा (स्वभाव मे) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है। (फिर भी वह) अपने कर्मरूपी रज से आच्छादित है (अत वह) ससार को प्राप्त हुआ है। वह समस्त पदार्थों को सब प्रकार से नही जानता।

रत्नत्रय के प्रतिबन्धक कारण -

सम्मत्तपडिणिबद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहिदं ।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठि त्ति णादव्वो ।।४-१७-१६१

णाणस्स पडिणिबद्धं अण्णाणं जिणवरेहि परिकहिदं ।
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णादव्वो ।।४-१८-१६२

चारित्तपडिणिबद्धं कसायमिदि जिणवरेहि परिकहिदं ।
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णादव्वो ।।४-१९-१६३

सान्वय अर्थ - (सम्मत्तपडिणिबद्धं) **सम्यक्त्व का प्रतिबन्धक - रोकने वाला** (मिच्छत्तं) **मिथ्यात्व है - यह** (जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेव ने** (परिकहिदं) **कहा है** (तस्सोदयेण) **उसके - मिथ्यात्व के - उदय से** (जीवो) **जीव** (मिच्छादिट्ठि त्ति) **मिथ्यादृष्टि होता है, ऐसा** (णादव्वो) **जानना चाहिये।** (णाणस्स) **ज्ञान का** (पडिणिबद्धं) **प्रतिबन्धक - रोकने वाला** (अण्णाणं) **अज्ञान है - ऐसा** (जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेव ने** (परिकहिदं) **कहा है** (तस्सोदयेण) **उसके उदय से** (जीवो) **जीव** (अण्णाणी) **अज्ञानी** (होदि) **होता है - ऐसा** (णादव्वो) **जानना चाहिये।** (चारित्तपडिणिबद्धं) **चारित्र का प्रतिबन्धक - रोकने वाला** (कसाय) **कषाय है - ऐसा** (जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेव ने** (परिकहिदं) **कहा है** (तस्सोदयेण) **उसके उदय से** (जीवो) **जीव** (अचरित्तो) **चारित्ररहित** (होदि) **होता है - ऐसा** (णादव्वो) **जानना चाहिये।**

अर्थ - सम्यक्त्व का प्रतिबन्धक (रोकने वाला) मिथ्यात्व है, यह जिनेन्द्रदेव ने कहा है। उसके उदय से जीव मिथ्यादृष्टि होता है, ऐसा जानना चाहिये।

ज्ञान का प्रतिबन्धक (रोकने वाला) अज्ञान है, यह जिनेन्द्रदेव ने कहा है। उसके उदय से जीव अज्ञानी होता है, ऐसा जानना चाहिये।

चारित्र का प्रतिबन्धक (रोकने वाला) कषाय है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। उसके उदय से जीव चारित्ररहित होता है, ऐसा जानना चाहिये।

इदि चउत्थो पुण्णपावाधियारो समत्तो

पंचमो आसवाधियारो

दो प्रकार के आस्रव -

मिच्छत्त अविरमणं कसायजोगा सण्णसण्णा दु ।
बहुविहभेदा जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा ।।५-१-१६४

णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति ।
तेसिं पि होदि जीवो रागद्दोसादिभावकरो ।।५-२-१६५

सान्वय अर्थ - (मिच्छत्त) मिथ्यात्व (अविरमण) अविरति (कसायजोगा य) कषाय और योग (सण्णसण्णा दु) भावप्रत्यय और द्रव्यप्रत्यय के रुप मे चेतन और अचेतन दो प्रकार के होते है, जो चेतन के विकार है वे (जीवे) जीव मे (बहुविहभेदा) अनेक प्रकार के भेद वाले है और वे (तस्सेव) जीव के ही (अणण्णपरिणामा) अनन्य परिणाम है (ते दु) जो मिथ्यात्व आदि पुद्गल के विकार है वे (णाणावरणादीयस्स कम्मस्स) ज्ञानावरण आदि कर्मों के (कारण) कारण - निमित्त - (होंति) होते है (तेसि पि) उन मिथ्यात्व आदि अचेतन विकारो का कारण - निमित्त (रागद्दोसादिभावकरो) राग, द्वेष आदि भावो का कर्त्ता (जीवो) जीव (होदि) होता है।

अर्थ - मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग (भावप्रत्यय और द्रव्यप्रत्यय के रुप मे) चेतन और अचेतन दो प्रकार के होते है। (जो चेतन के विकार है वे) जीव मे अनेक प्रकार के भेद वाले है और वे जीव के ही अनन्य परिणाम है। जो मिथ्यात्व आदि पुद्गल के विकार है, वे ज्ञानावरण आदि कर्मों के निमित्त है। उन मिथ्यात्व आदि अचेतन विकारो का निमित्त राग-द्वेष आदि भावो का कर्त्ता जीव होता है।

सम्यग्दृष्टि के आस्रवों का अभाव है -

णत्थि दु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो ।
संते पुव्वणिबद्धे जाणदि सो ते अबंधंतो ।।५-३-१६६

सान्वय अर्थ - (सम्मादिट्ठिस्स) **सम्यग्दृष्टि के** (आसवबंधो) **आस्रव निमित्तक बन्ध** (णत्थि) **नही है** (दु) **किन्तु** (आसवणिरोहो) **आस्रव का निरोध है** (ते) **नवीन कर्मों को** (अबधतो) **न बाँधता हुआ** (सो) **वह** (संते) **सत्ता मे विद्यमान** (पुव्वणिबद्धे) **पूर्व में बाँधे हुए कर्मों को** (जाणदि) **जानता है।**

अर्थ - सम्यग्दृष्टि के आस्रवनिमित्तक बन्ध नही है; किन्तु आस्रव का निरोध है। नवीन कर्मों को न बाँधता हुआ वह सत्ता में विद्यमान पूर्व में बाँधे हुए कर्मों को जानता है।

रागद्वेष ही आस्रव है -

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बधगो होदि ।
रागादि विप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि ।।५-४-१६७

सान्वय अर्थ - (जीवेण कदो) **जीव के द्वारा किया** हुआ (रागादिजुदो) **रागादियुक्त** (भावो) **भाव** (दु) **तो** (बधगो) **नवीन कर्मों का बन्ध करने वाला** (होदि) **होता है** - **और** (रागादिविप्पमुक्को) **रागादि से रहित भाव** (अबंधगो) **बन्ध नहीं करता** (णवरि) **वह मात्र** (जाणगो) **ज्ञायक है।**

अर्थ - जीव के द्वारा किया हुआ रागादियुक्त भाव तो नवीन कर्मों का बन्ध करने वाला होता है और रागादि से रहित भाव बन्ध नही करता। वह मात्र ज्ञायक है।

निर्जरित कर्म का पुन बन्ध नहीं -

पक्के फलम्मि पडिदे जह ण फल बज्झदे पुणो विटे ।
जीवस्स कम्मभावे पडिदे ण पुणोदयमुवेदि ॥५-५-१६८

सान्वय अर्थ - (जह) **जैसे** (पक्के) **पके हुए** (फले) **फल के** (पडिदे) **गिरने पर** (फल) **वह फल** (पुणो) **पुन** (विटे) **डंठल मे** (ण बज्झदे) **नहीं जुड़ता, उसी प्रकार** (जीवस्स) **जीव के** (कम्मभावे पडिदे) **पुद्गल कर्मों की निर्जरा होने पर** (पुणो) **पुन** (ण उदयमुवेदि) **वे उदय को प्राप्त नही होते।**

अर्थ - जैसे पके हुए फल के (वृक्ष से) गिरने पर वह फल पुन डठल मे नही जुडता, उसी प्रकार जीव के पुद्गल कर्मों की निर्जरा होने पर पुन वे उदय को प्राप्त नही होते (पुन वे जीव के साथ नही बँधते)।

ज्ञानी के द्रव्यास्रव का अभाव है -

पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स ।
कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वे वि णाणिस्स ।।५-६-१६९

सान्वय अर्थ - (तस्स णाणिस्स) **उस ज्ञानी के** (पुव्वणिबद्धा) **पूर्व अज्ञान अवस्था में बँधे** (सव्वे वि पच्चया) **समस्त प्रत्यय** (दु) **तो** (पुढवीपिंडसमाणा) **पृथ्वी के ढेले के समान है** (दु) **और** (ते) **वे** (कम्मसरीरेण) **कार्मण शरीर के साथ** (बद्धा) **बँधे हुए हैं।**

अर्थ - उस ज्ञानी के पहले (अज्ञान अवस्था मे) बँधे हुए सभी (मिथ्यात्वादि द्रव्य) प्रत्यय तो पृथ्वी के ढेले के समान है (अकिंचित्कर है), और वे (अपने पुद्गलस्वभाव मे) कार्मण शरीर के साथ बँधे हुए है।

ज्ञान गुण से कर्म-बन्ध -

चहुविह अणेयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहि ।
समये समये जम्हा तेण अबंधो त्ति णाणी दु ।।५-७-१७०

सान्वय अर्थ - (जम्हा) **क्योंकि** (चहुविह)[1] **मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार प्रकार के द्रव्यास्रव** (णाणदसणगुणेहि) **ज्ञान-दर्शन गुणों के द्वारा** (समये समये) **प्रतिसमय** (अणेयभेयं) **अनेक प्रकार के कर्मों को** (बधते) **बाँधते हैं** (तेण) **इसलिए** (णाणी) **ज्ञानी** (दु) **तो** (अबधोत्ति) **अबन्ध है।**

अर्थ - क्योकि (मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग) ये चार प्रकार के द्रव्यास्रव ज्ञान-दर्शन गुणों के द्वारा प्रतिसमय अनेक प्रकार के कर्मों को बाँधते हैं, अत ज्ञानी तो अबन्ध ही है।

[1] 'चहुविह इति बहुवचने प्राकृतलक्षणबलेन ह्रस्वत्वं।'

- आचार्य जयसेन ।

ज्ञानगुण कर्म-बन्ध का कारण क्यों है -

जम्हा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि ।
अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो ।।५-८-१७१

सान्वय अर्थ - (जम्हा दु) **क्योंकि** (णाणगुणो) **ज्ञानगुण** (जहण्णादो णाणगुणादो) **जघन्य ज्ञानगुण से** (पुणो वि) **पुन अन्तर्मुहूर्त के पश्चात्** (अण्णत्त) **अन्य रुप से** (परिणमदि) **परिणमन करता है** (तेण दु) **इसलिए** (सो) **वह** (बधगो) **कर्म-बन्ध कराने वाला** (भणिदो) **कहा गया है।**

अर्थ - क्योकि ज्ञानगुण ज्ञानगुण के जघन्य भाव (क्षायोपशमिक ज्ञान) के कारण पुन अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् अन्य रुप से परिणमन करता है, इसी कारण वह (ज्ञानगुण का जघन्य भाव - यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति से पूर्व तक) कर्म का बन्ध कराने वाला कहा गया है।

रत्नत्रय का जघन्य भाव कर्म-बन्ध का कारण है -

दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्णभावेण ।
णाणी तेण दु बज्झदि पोंग्गलकम्मेण विविहेण ।।५-९-१७२

सान्वय अर्थ - (दसणणाणचरित्त) दर्शन, ज्ञान और चारित्र (जहण्णभावेण) जघन्य भाव से (ज) जो (परिणमदे) परिणमन करते हैं (तेण दु) इसलिए (णाणी) ज्ञानी जीव (विविहेण) अनेक प्रकार के (पोंग्गलकम्मेण) पुद्गल कर्मों से (बज्झदि) बन्ध को प्राप्त होता है।

अर्थ - दर्शन, ज्ञान और चारित्र जघन्य भाव से जो परिणमन करते हैं, उसके कारण ज्ञानी जीव अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों से बन्ध को प्राप्त होता है।

सम्यग्दृष्टि के कर्म-बन्ध नही होता -

> सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स ।
> उवओगप्पाओगं बंधंते कम्मभावेण ।।५-१०-१७३
>
> संता दु णिरुवभोज्जा बाला इत्थी जहेव पुरिसस्स ।
> बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इत्थी जह णरस्स ।।५-११-१७४
>
> होदूण णिरुवभोज्जातह बधदि जह हवंति उवभोज्जा ।
> सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहि ।।५-१२-१७५
>
> एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबधगो भणिदो ।
> आसवभावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा ।।५-१३-१७६

साान्वय अर्थ - (सम्मादिट्ठिस्स) सम्यग्दृष्टि जीव के (पुव्वणिबद्धा दु) पूर्व की सराग दशा मे बाँधे हुए (सव्वे) सभी (पच्चया) द्रव्यास्रव (सति) सत्ता मे विद्यमान है - वे (उवओगप्पाओग) उपयोग के प्रयोगानुसार (कम्मभावेण) कर्म के रुप मे (बधते) बन्ध को प्राप्त होते है (सता दु) सत्ता मे विद्यमान रहते है फिर भी - उदय से पूर्व (णिरुवभोज्जा) भोगने योग्य नही होते (जहेव) जिस प्रकार (पुरिसस्स) किसी पुरुष की (बाला इत्थी) बाल स्त्री भोग्य नही होती (ते) वे ही कर्म (उवभोज्जे) उदय काल मे भोगने योग्य होने पर (बधदि) नये कर्मों का बन्ध करते हैं (जह) जिस प्रकार (णरस्स) किसी पुरुष की (तरुणी इत्थी) तरुणी स्त्री भोग्य होती है और पुरुष को रागभाव मे बाँध लेती है (णिरुवभोज्जा होदूण) वे पूर्वबद्ध प्रत्यय भोगने के अयोग्य होकर (जह) जैसे (उवभोज्जा) भोगने योग्य (हवति) होते है (तह) उसी प्रकार (णाणावरणादि भावेहि) ज्ञानावरण आदि रुप से (सत्तट्ठविहा भूदा) आयु कर्म के बिना सात प्रकार के और आयु कर्म सहित आठ प्रकार के कर्मों को (बधदि) बाँधते है (एदेण कारणेण दु) इसी कारण से (सम्मादिट्ठी) सम्यग्दृष्टि जीव (अबधगो) कर्म-बन्ध न करने वाला (भणिदो) कहा गया हैं (आसवभावाभावे) आस्रव भाव-रागादि भावास्रव के

अभाव में (पच्चया) द्रव्य प्रत्यय (बंधगा) बन्धकारक (ण) नहीं (भणिदा) कहे गये हैं।

अर्थ - सम्यग्दृष्टि जीव के पूर्व की सराग दशा में बाँधे हुए सभी द्रव्यास्त्रव सत्ता में विद्यमान है। वे उपयोग के प्रयोगानुसार कर्म भाव के द्वारा (रागादि भाव प्रत्ययों के द्वारा) बन्ध को प्राप्त होते हैं। सत्ता में विद्यमान रहते हैं फिर भी उदय से पूर्व वे भोगने योग्य नहीं होते। जैसे बाल स्त्री पुरुष के लिए भोग्य नहीं होती। वे ही कर्म उदयकाल में भोगने योग्य होने पर नये कर्मों का बाँधते है, जिस प्रकार तरुणी स्त्री पुरुष के लिए (भोग्य होती है और पुरुष को रागभाव में बाँध लेती है)। वे पूर्वबद्ध कर्म भोगने के अयोग्य होकर जैसे भोगने योग्य होते है, उसी प्रकार ज्ञानावरण आदि रुप से (आयु कर्म के बिना) सात प्रकार के और (आयु कर्म सहित) आठ प्रकार के कर्मों को बाँधते है। इसी कारण से सम्यग्दृष्टि जीव अबन्धक (कर्म-बन्ध न करने वाला) कहा गया है। रागादि भावास्त्रव के अभाव में द्रव्य प्रत्यय बन्धकारक नही होते है।

भाव प्रत्यय के बिना द्रव्य प्रत्यय नहीं होता -

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।
तम्हा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ।।५-१४-१७७

हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारण हवदि ।
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति ।।५-१५-१७८

सान्वय अर्थ - (रागो) **राग** (दोसो) **द्वेष** (य) **और** (मोहो) **मोह** (आसवा) **ये आस्रव** (सम्मदिट्ठिस्स) **सम्यग्दृष्टि के** (णत्थि) **नही होते** (तम्हा) **इसलिए** (आसवभावेण विणा) **रागादि भावास्रव के बिना** (पच्चया) **द्रव्य प्रत्यय** (हेदू) **कर्म-बन्ध के कारण** (ण होंति) **नही होते** (चदुव्वियप्पो हेदू) **मिथ्यात्व आदि चार प्रकार के हेतु** (अट्ठवियप्पस्स) **आठ प्रकार के कर्मों के** (कारण) **कारण** (हवदि) **होते है** (च) **और** (तेसिं पि) **उन चार प्रकार के हेतुओ के** (रागादी) **जीव के रागादि भाव-कारण है** (तेसिमभावे) **उन रागादि भावों का अभाव होने के कारण** (ण बज्झन्ति) **कर्मों का बन्ध नही होता - इसलिए सम्यग्दृष्टि के कर्मबन्ध नही होता।**

अर्थ - राग, द्वेष और मोह ये आस्रव सम्यग्दृष्टि के नही होते। इसलिए रागादि भावास्रव के बिना द्रव्य प्रत्यय कर्म-बन्ध के कारण नही होते। मिथ्यात्व आदि चार प्रकार के हेतु आठ प्रकार के कर्मों के कारण होते है और उन चार प्रकार के हेतुओ के कारण जीव के रागादि भाव है। उन रागादि भावो का अभाव होने के कारण सम्यग्दृष्टि के कर्म-बन्ध नही होता।

शुद्धनय से च्युत जीव के बन्ध होता है -

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविह ।
मसवसारुहिरादी भावे उदरग्गिसंजुत्तो ॥५-१६-१७९

तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं ।
बज्झंते कम्मं ते णयपरिहीणा दु ते जीवा ॥५-१७-१८०

सान्वय अर्थ - (जह) जैसे (पुरिसेण) पुरुष के द्वारा (गहिदो) ग्रहण किया हुआ (आहारो) आहार (उदरग्गिसजुत्तो) उदराग्नि का संयोग पाकर (सो) वह आहार (मसवसारुहिरादी भावे) मांस, मज्जा, रुधिर आदि के रुप में (अणेयविह) अनेक रुप में (परिणमदि) परिणमन करता है (तह) उसी प्रकार (णाणिस्स दु) ज्ञानी के (पुव्व बद्धा) पूर्व में बद्ध (जे पच्चया) जो प्रत्यय-द्रव्यास्रव थे (ते) वे (बहुवियप्प) अनेक प्रकार के (कम्म) कर्मों को (बज्झते) बाँधते है (ते दु जीवा) वे जीव (णयपरिहीणा) शुद्ध नय से च्युत हैं (शुद्धनय से चयुत होने पर ही ज्ञानी जीव रागादि भावास्रव करता है। उससे द्रव्यास्रव और कर्म-बन्ध होता है)।

अर्थ - जैसे पुरुष के द्वारा ग्रहण किया हुआ आहार उदराग्नि का संयोग पाकर वह मास, मज्जा, रुधिर आदि के रुप से अनेक रुप में परिणमन करता है; उसी प्रकार ज्ञानी के पूर्व मे बद्ध जो द्रव्यास्रव थे, वे अनेक प्रकार के कर्मों को बाँधते है। वे जीव शुद्धनय से च्युत है (शुद्धनय से च्युत होने पर ही ज्ञानी जीव रागादि भावास्रव करता है। उससे द्रव्यास्रव और कर्म-बन्ध होता है)।

इदि पंचमो आसवाधियारो समत्तो

छट्ठमो संवराधियारो

भेदविज्ञान ही सवर का उपाय है -

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो ।
कोहे कोहो चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ॥६-१-१८१

अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो ।
उवओगम्हि य कम्म णोकम्म चावि णो अत्थि ॥६-२-१८२

एद तु अविवरीद णाण जइया दु होदि जीवस्स ।
तइया ण किचि कुव्वदि भाव उवओगसुद्धप्पा ॥६-३-१८३

सान्वय अर्थ - (उवओगो) **उपयोग** (उवओगे) **उपयोग मे है** (कोहादिसु) **क्रोध आदि मे** (को वि) **कोई भी** (उवओगो) **उपयोग** (णत्थि) **नही है** (च) **और** (कोहे एव हि) **क्रोध मे ही** (कोहो) **क्रोध है** (खलु) **निश्चय ही** (उवओगे) **उपयोग मे** (कोहो) **क्रोध** (णत्थि) **नही है** (अट्ठवियप्पे) **आठ प्रकार के** (कम्मे) **कर्मों मे** (च) **और** (णोकम्मे अवि) **नोकर्म मे भी** (उवओगो) **उपयोग** (णत्थि) **नही है** (य) **और** (उवओगम्हि) **उपयोग मे** (कम्म) **कर्म** (च) **और** (णोकम्म अवि) **नोकर्म भी** (णो अत्थि) **नही है** (जइया दु) **जिस काल मे** (एद तु) **ऐसा** (अविवरीद) **अविपरीत-सत्यार्थ** (णाण) **ज्ञान** (जीवस्स) **जीव को** (होदि) **हो जाता है** (तइया) **तब** (उवओगसुद्धप्पा) **उपयोग स्वरुप शुद्धात्मा** (किचि भाव) **उपयोग के अतिरिक्त अन्य किसी भाव को** (ण कुव्वदि) **नही करता।**

अर्थ - उपयोग मे उपयोग है, क्रोध आदि मे कोई भी उपयोग नही है। और क्रोध मे ही क्रोध है, निश्चय ही उपयोग मे क्रोध नही है। आठ प्रकार के (ज्ञानावरणादि) कर्मों और (शरीरादि) नोकर्मों मे भी उपयोग नही है और उपयोग मे कर्म और नोकर्म भी नही है। जिस काल मे जीव को ऐसा अविपरीत (सत्यार्थ) ज्ञान हो जाता है, तब उपयोग-स्वरुप शुद्धात्मा उपयोग के अतिरिक्त अन्य किसी भाव को नही करता।

भदविज्ञान से शुद्धात्मा की प्राप्ति -

जह कणयमग्गितवियं पि कणयसहावं ण त परिच्चयदि ।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्तं ।।६-४-१८४

एव जाणदि णाणी अण्णाणी मुणदि रागमेवादं ।
अण्णाणतमोच्छण्ण आदसहाव अयाणतो ।।६-५-१८५

सान्वय अर्थ - (जह) **जैसे** (अग्गितविय पि) **अग्नि मे तपाया हुआ भी** (कणय) **सोना** (त कणयसहाव) **अपने सुवर्ण-स्वभाव को** (ण परिच्चयदि) **नही छोडता** (तह) **इसी प्रकार** (कम्मोदयतविदो) **तीव्र परीषह-उपसर्गरूप कर्मोदय से तप्त होता हुआ** (णाणी दु) **ज्ञानी भी** (णाणित्त) **ज्ञानीपने के स्वभाव को** (ण जहदि) **नही छोड़ता** (एव) **इस प्रकार** (णाणी) **ज्ञानी** (जाणदि) **जानता है - और** (अण्णाणतमोच्छण्ण) **अज्ञान रूप अन्धकार से आच्छन्न** (अण्णाणी) **अज्ञानी** (आदसहाव) **आत्मस्वभाव को** (अयाणतो) **न जानता हुआ** (रागमेव) **राग को ही** (आद) **आत्मा** (मुणदि) **मानता है।**

अर्थ - जैसे अग्नि मे तपाया हुआ सोना अपने सुवर्ण-स्वभाव को नही छोडता, इसी प्रकार (तीव्र परीषह-उपसर्गरूप) कर्मोदय से तप्त होता हुआ ज्ञानी भी अपने ज्ञानीपने के स्वभाव को नही छोडता। इस प्रकार ज्ञानी जानता है और अज्ञानरूप अन्धकार से आच्छन्न अज्ञानी आत्मस्वभाव को न जानता हुआ राग को ही आत्मा मानता है।

शुद्धात्मा के अनुभव से संवर होता है -

सुद्धं तु वियाणंतो विसुद्धमेवप्पयं लहदि जीवो ।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहदि ।।६-६-१८६

सान्वय अर्थ - (सुद्धं तु) शुद्ध आत्मा को (वियाणतो) जानता हुआ (जीवो) जीव (विसुद्धमेव) शुद्ध ही (अप्पय) आत्मा को (लहदि) प्राप्त करता है (दु) और (असुद्धं) अशुद्ध आत्मा को (जाणतो) जानता हुआ जीव (असुद्धमेव अप्पयं) अशुद्ध आत्मा को ही (लहदि) प्राप्त करता है।

अर्थ - शुद्ध आत्मा को जानता हुआ जीव शुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है और अशुद्ध आत्मा को जानता हुआ जीव अशुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है।

संवर की विधि -

अप्पाणमप्पणा रुंधिदूण दोपुण्णपावजोगेसु ।
दंसणणाणम्हि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णम्हि ।।६-७-१८७

जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणा अप्पा ।
ण वि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ।।६-८-१८८

अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमइओ अणण्णमओ ।
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ।।६-९-१८९

सान्वय अर्थ - (अप्पाण) आत्मा को (अप्पणा) आत्मा के द्वारा (दोपुण्णपावजोगेसु) पुण्य और पाप इन दोनों शुभाशुभ योगो से (रुधिदूण) रोक कर (दसणणाणम्हि) दर्शन और ज्ञान मे (ठिदो) स्थित हुआ (य) और (अण्णम्हि) अन्य देह - रागादि में (इच्छाविरदो) इच्छा से विरत हुआ - तथा (सव्वसगमुक्को) समस्त बाह्यआभ्यन्तर परिग्रह से रहित हुआ (जो अप्पा) जो आत्मा (अप्पाण) आत्मा को (अप्पणा) आत्मा के द्वारा (झायदि) ध्याता है (कम्म ण वि णोकम्म) न कर्म को और न नोकर्म को ध्याता है (चेदा) ऐसा गुणविशिष्ट आत्मा (एयत्त) एकत्व का (चितेदि) चिन्तन - अनुभव करता है (सो) वह आत्मा (अप्पाण) अपनी आत्मा का (झायंतो) ध्यान करता हुआ (दंसणणाणमइओ) दर्शन और ज्ञानमय - और (अणण्णमओ) अनन्यमय होता हुआ (अचिरेण एव) थोड़े ही काल में (कम्मपविमुक्कं) कर्मों से रहित (अप्पाणं) आत्मा को (लहदि) प्राप्त कर लेता है।

अर्थ - आत्मा को अपनी आत्मा के द्वारा पुण्य और पाप इन दोनो शुभाशुभ योगो से रोककर दर्शन और ज्ञान में स्थित हुआ और अन्य देह - रागादि में इच्छा से विरत हुआ तथा समस्त बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह से रहित हुआ जो आत्मा अपनी आत्मा को अपनी आत्मा के द्वारा ध्याता है, (एव) कर्म और नोकर्म को नही

ध्याता है, ऐसा गुणविशिष्ट आत्मा एकत्व का चिन्तन (अनुभव) करता है। वह आत्मा अपनी आत्मा का ध्यान करता हुआ दर्शन-ज्ञानमय हुआ और अनन्यमय हुआ थोड़े ही काल में कर्मों से रहित आत्मा को प्राप्त कर लेता है।

सवर का क्रम -

तेसि हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरिसीहि ।
मिच्छत्तं अण्णाण अविरदिभावो य जोगो य ।।६-१०-१९०

हेदुअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो ।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोहो ।।६-११-१९१

कम्मस्साभावेण य णोकम्माण पि जायदि णिरोहो ।
णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहण होदि ।।६-१२-१९२

सान्वय अर्थ - (सव्वदरिसीहि) **सर्वज्ञदेव ने** (तेसि) **रागादि विभाव कर्मरुप भावास्रवो के** (हेदू) **कारण** (मिच्छत्त) **मिथ्यात्व** (अण्णाण) **अज्ञान** (य अविरदिभावो) **और अविरतिभाव** (य जोगो) **और योग - ये चार** (अज्झवसाणाणि) **अध्यवसान** (भणिदा) **कहे है** (णाणिस्स) **ज्ञानी के** (हेदु अभावे) **हेतुओ के अभाव मे** (णियमा) **नियम से** (आसवणिरोहो) **आस्रव का निरोध** (जायदि) **होता है** (आसवभावेण विणा) **आस्रवभाव के बिना** (कम्मस्स दु) **कर्म का भी** (णिरोहो) **निरोध** (जायदि) **हो जाता है** (य) **और** (कम्मस्साभावेण) **कर्म का अभाव होने पर** (णोकम्माण पि) **नो कर्मों का भी** (णिरोहो) **निरोध** (जायदि) **हो जाता है** (य) **और** (णोकम्मणिरोहेण) **नोकर्म का निरोध होने से** (ससारणिरोहण) **संसार का निरोध** (होदि) **होता है।**

अर्थ - सर्वज्ञदेव ने (रागादि विभाव कर्मरुप) भावास्रवों के कारण मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरतिभाव और योग ये चार अध्ययवसान कहे हैं। ज्ञानी के हेतुओ के अभाव मे नियम से आस्रव का निरोध होता है। आस्रवभाव के बिना कर्म का भी निरोध हो जाता है और कर्म का अभाव होने से नोकर्मो का भी निरोध हो जाता है। नोकर्म का निरोध होने से ससार का निरोध होता है।

इति छट्ठमो सवराधियारो समत्तो

सत्तमो णिज्जराधियारो

द्रव्यनिर्जरा का स्वरूप -

उवभोगमिन्दियेहिं दव्वाणमचेदणाणमिदराणं ।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी त सव्वं णिज्जरणिमित्तं ॥७-१-१९३

सान्वय अर्थ - (सम्मदिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि जीव** (इदियेहिं) **इन्द्रियों के द्वारा** (अचेदणाणं) **अचेतन और** (इदराण) **चेतन** (दव्वाणं) **द्रव्यों का** (ज) **जो** (उवभोगं) **उपभोग** (कुणदि) **करता है** (त सव्व) **वह सब** (णिज्जरणिमित्त) **निर्जरा का निमित्त है।**

अर्थ - सम्यग्दृष्टि जीव इन्द्रियों के द्वारा अचेतन और चेतन द्रव्यो का जो उपभोग करता है, वह सब निर्जरा का निमित्त है।

भाव निर्जरा का स्वरूप -

दव्वे उवभुज्जंते णियमा जायदि सुहं च दुक्खं वा ।
तं सुहदुक्खमुदिण्णं वेददि अथ णिज्जरं जादि ।।७-२-१९४

सान्वय अर्थ - (दव्वे) परद्रव्यों का (उवभुज्जंते) जीव के द्वारा उपभोग करने पर (णियमा) नियम से (सुहं व) सुख अथवा (दुक्खं वा) दुःख (जायदि) होता है - जीव (तं) उस (उदिण्णं) उदय में आये हुए (सुहदुक्खं) सुख, दुःख का (वेददि) अनुभव करता है (अध) फिर - वह (णिज्जरंजादि) निर्जरा को प्राप्त हो जाता है - झड़ जाता है।

अर्थ - परद्रव्यों का (जीव के द्वारा) उपभोग करने पर नियम से सुख अथवा दुःख होता है। (जीव) उदय में आये हुए उस सुख-दुःख का अनुभव करता है; फिर (वह) निर्जरा को प्राप्त हो जाता है (झड़ जाता है)।

ज्ञानी को कर्म-बध नहीं होता -

जह विसमुवभुज्जंतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि ।
पोंग्गलकम्मस्सुदयं तह भुञ्जदि णेव बज्झदे णाणी ।।७-३-१९५

सान्वय अर्थ - (जह) जिस प्रकार (वेज्जो पुरिसो) **विषवैद्य** (विसमुवभुज्जतो) **विष का उपभोग करता हुआ भी** (मरण) **मरण को** (ण उवयादि) **प्राप्त नहीं होता** (तह) **उसी प्रकार** (णाणी) **ज्ञानी पुरुष** (पोंग्गलकम्मस्स) **पुद्गल कर्म के** (उदय) **उदय को** (भुञ्जदि) **भोगता है, फिर भी** (णेव बज्झदे) **कर्म से बँधता नही।**

अर्थ - जिस प्रकार विषवैद्य विष का उपभोग करता हुआ भी मरण को प्राप्त नही होता, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष पुद्गल कर्म के उदय को भोगता है, तथापि वह कर्म से नही बँधता।

वैराग्य की सामर्थ्य -

जह मज्ज पिवमाणो अरदिभावेण ण मज्जदे पुरिसो।
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण बज्झदे तहेण ।।७-४-१९६

सान्वय अर्थ - (जह) **जिस प्रकार** (पुरिसो) **कोई पुरुष** (मज्ज) **मद्य को** (पिवमाणो) **पीता हुआ** (अरदिभावेण) **तीव्र अरतिभाव की सामर्थ्य से** (ण मज्जदे) **मतवाला नही होता** (तहेव) **उसी प्रकार** (णाणी वि) **ज्ञानी भी** (दव्वुवभोगे) **द्रव्यो के उपभोग मे** (अरदो) **विरक्त रहता हुआ** (ण बज्झदे) **कर्मो से नही बँधता।**

अर्थ - जिस प्रकार कोई पुरुष मद्य को पीता हुआ तीव्र अरतिभाव की सामर्थ्य से मतवाला नही होता, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी द्रव्यो के उपभोग मे विरक्त रहता हुआ (वैराग्य की सामर्थ्य से) कर्मो से नही बँधता।

ज्ञानी और अज्ञानी में अन्तर -

सेवंतो वि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो को वि ।
पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होदि ।।७-५-१९७

सान्वय अर्थ - (को वि) **कोई सम्यग्दृष्टि - रागादि भाव के अभाव के कारण** (सेवतो वि) **विषयों का सेवन करता हुआ भी** (ण सेवदि) **सेवन नही करता - और अज्ञानी विषयों में रागभाव के कारण** (असेवमाणो वि) **उन्हें सेवन न करता हुआ भी** (सेवगो) **सेवन करने वाला होता है - जैसे** (कस्सवि) **किसी पुरुष की** (पगरणचेट्ठा) **कार्य सम्बन्धी क्रिया होती है** (ण य पायरणो त्ति होदि) **किन्तु वह कार्य करने वाला नहीं होता।**

अर्थ - कोई सम्यग्दृष्टि (रागादि भाव के अभाव के कारण) विषयों का सेवन करता हुआ भी उनका सेवन नहीं करता, (और अज्ञानी विषयो मे रागभाव के कारण) उन्हे सेवन न करता हुआ भी सेवन करने वाला होता है। जैसे - किसी पुरुष की कार्यसम्बन्धी क्रिया होती है, किन्तु वह कार्य करने वाला नही होता।

विशेष *- जैसे कोई मुनीम सेठ की ओर से व्यापार का सब कार्य करता है, किन्तु उस व्यापार तथा उसकी लाभ-हानि का वह स्वामी नही होता। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि भोगो का सेवन करता हुआ भी राग न होने के कारण उसका असेवक है और मिथ्यादृष्टि सेवन न करता हुआ भी राग के सद्भाव के कारण उसका सेवक है।*

ज्ञानी का स्व-पर-विवेक -

उदयवियागो विविहो कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहि ।
ण हु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमेक्को ।।७-६-१९८

सान्वय अर्थ - (जिणवरेहि) जिनेन्द्रदेव ने (कम्माण) कर्मों के (उदयवियागो) उदय के फल (विविहो) अनेक प्रकार के (वण्णिदो) बताये हैं (ते हु) वे तो (मज्झ) मेरे (सहावा) स्वभाव (ण) नहीं हैं (अह दु) मैं तो (एक्को) एक (जाणगभावो) ज्ञायक भाव हूँ।

अर्थ - जिनेन्द्रदेव ने कर्मों के उदय के फल अनेक प्रकार के बताये है। वे तो मेरे स्वभाव नही है। मै तो एक ज्ञायक भाव हूँ।

राग पुद्गल कर्म है -

पोंग्गलकम्मं रागो तस्स वियागोदओ हवदि एसो ।
ण हु एस मज्झ भावो जाणगभावो दु अहमेक्को ॥७-७-१९९

सान्वय अर्थ - (रागो) राग (पोंग्गलकम्म) **पुद्गल कर्म है** (तस्स) **उसके** (विवागोदओ) **फलस्वरुप उदय का** (एसो) **यह रागरुप भाव** (हवदि) **है** (एस हु) **यह तो** (मज्झ भावो) **मेरा भाव** (ण) **नही है** (अह दु) **मै तो** (एक्को) **एक** (जाणगभावो) **ज्ञायक भाव हूँ।**

अर्थ - राग पुद्गलकर्म है। उसके फलस्वरुप उदय से उत्पन्न यह रागरुप भाव है। यह तो मेरा भाव नही है। मै तो एक टकोत्कीर्ण ज्ञायक भाव हूँ।

सम्यग्दृष्टि ज्ञानवैराग्य सम्पन्न होता है -

एवं सम्मादिट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं ।
उदयं कम्मविवागं च मुयदि तच्च वियाणतो ।।७-८-२००

सान्वय अर्थ - (एव) इस प्रकार (सम्मादिट्ठी) सम्यग्दृष्टि (अप्पाण) अपने-आपको (जाणगसहाव) ज्ञायक स्वभाव (मुणदि) जानता है (च) और (तच्च) आत्मतत्त्व को (वियाणतो) जानता हुआ (कम्मविवाग उदय) कर्म के विपाक रुप उदय - कर्मोदय के विपाक से उत्पन्न भावो को (मुयदि) छोड़ देता है।

अर्थ - पूर्वोक्त प्रकार से सम्यग्दृष्टि अपने-आपको (टकोत्कीर्ण) ज्ञायक स्वभाव जानता है और आत्मतत्त्व को जानता हुआ कर्मोदय के विपाक से उत्पन्न भावो को छोड़ देता है।

रागी जीव सम्यग्दृष्टि नहीं है -

परमाणुमेत्तयं पि हु रागादीण तु विज्जदे जस्स ।
ण वि सो जाणदि अप्पाणय तु सव्वागमधरो वि ।।७-९-२०१

अप्पाणमयाणतो अणप्पय चावि सो अयाणतो ।
किह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणतो ।।७-१०-२०२

सान्वय अर्थ - (हु) **वास्तव मे** (जस्स) **जिस जीव के** (रागादीण तु) **रागादिक का** (परमाणुमेत्तय पि) **परमाणुमात्र-लेशमात्र भी** (विज्जदे) **विद्यमान है** (सो तु) **वह जीव** (सव्वागमधरो वि) **सर्वागम का धारक-ज्ञाता होने पर भी** (अप्पाणय) **आत्मा को** (ण वि जाणदि) **नही जानता** (च) **और** (अप्पाण) **आत्मा को** (अयाणतो) **न जानता हुआ** (सो) **वह** (अणप्पय अवि) **अनात्मा को भी** (अयाणतो) **नही जानता - अत** (जीवाजीवे) **जीव और अजीव को** (अयाणतो) **न जानने वाला** (किह) **किस प्रकार** (सम्मदिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (होदि) **हो सकता है?**

अर्थ - वास्तव मे जिस जीव के रागादि (अज्ञान भावो) का परमाणुमात्र (लेशमात्र) भी विद्यमान है, वह जीव सम्पूर्ण शास्त्रो का ज्ञाता होने पर भी आत्मा को नही जानता और आत्मा को न जानता हुआ वह अनात्मा को भी नही जानता। इस प्रकार जीव और अजीव को न जानने वाला किस प्रकार सम्यग्दृष्टि हो सकता है?

ज्ञान ही आत्मा का पद है -

आदम्हि दव्वभावे अपदे[1] मॉत्तूण गिण्ह तह णियदं ।
थिरमेगमिम भाव उवलब्भंतं सहावेण ।।७-११-२०३

सान्वय ध्यान - (आदम्हि) **आत्मा में** (दव्वभावे) **द्रव्य और भावो के मध्य मे - अतत्स्वभाव से अनुभव मे आने वाले भाव** (अपदे) **क्षणिक होने से आत्मा का स्थान नही हो सकते - अत· उन्हे** (मॉत्तुण) **छोड़कर** (णियद) **निश्चित** (थिर) **स्थिर** (तह) **तथा** (एग) **एक** (इम) **इस** (सहावेण) **स्वभाव से** (उवलब्भत) **अनुभव करने योग्य** (भाव) **भाव को** (गिण्ह) **ग्रहण कर।**

अर्थ - आत्मा मे द्रव्य और भावो के मध्य मे (अतत्स्वभाव से अनुभव मे आने वाले भाव) अपद है (क्षणिक होने से आत्मा का स्थान नही ले सकते), अत उन्हे छोडकर नियत, स्थिर तथा एक स्वभाव से अनुभव करने योग्य इस भाव को (चेतन्यमात्र ज्ञानभाव को) ग्रहण कर।

---

[1] - अथिरे इत्यपि पाठ ।

ज्ञान से निर्वाण प्राप्त होता है -

आभिणिसुदोहिमणकेवल च तं होदि एक्कमेव पद ।
सो एसो परमट्ठो ज लहिदु णिव्वुदि जादि ॥७-१२-२०४

सान्वय अर्थ - (आभिणिसुदोहिमणकेवल च) **मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन· पर्ययज्ञान और केवलज्ञान** (त) **ये - पाँचों ज्ञान** (एक्कमेव) **एक ही** (पद होदि) **पद है - एक ज्ञान नाम से जाने जाते है** (सो एसो) **सो यह** (परमट्ठो) **परमार्थ है - मोक्ष का साक्षात् उपाय है** (ज लहिदु) **जिसे प्राप्त करके** (णिव्वुदि जादि) **आत्मा निर्वाण को प्राप्त होता है।**

अर्थ - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पॉचो ज्ञान एक ही पद है (एक ज्ञान नाम से जाने जाते है)। सो यह (ज्ञान) परमार्थ है (मोक्ष का साक्षात् उपाय है) जिसे प्राप्त करके आत्मा निर्वाण को प्राप्त होता है।

कर्मकाण्ड से ज्ञान प्राप्त नही होता -

णाणगुणेहि विहीणा[1] एदं तु पदं बहू वि ण लहंते ।
तं गिण्ह णियदमेद[2] जदि इच्छसि कम्मपरिमोंक्खं ।।७-१३-२०५

सान्वय अर्थ - (णाणगुणेहि) ज्ञानगुण से (विहीणा) रहित (बहू वि) अनेक पुरुष - अनेक कर्म करते हुए भी (एद पद तु) ज्ञानरूप इस पद को (ण लहति) प्राप्त नहीं करते (त) इसलिए (जदि) यदि (कम्मपरिमोंक्ख) तू कर्मों से मुक्ति (इच्छसि) चाहता है तो (एद णियद) इस नियत ज्ञान को (गिण्ह) ग्रहण कर।

अर्थ - ज्ञानगुण से रहित अनेक पुरुष (अनेक कर्म करते हुए भी) ज्ञान स्वरुप इस पद को प्राप्त नही करते, इसलिए (हे भव्य !) यदि तू कर्मों से मुक्ति चाहता है तो इस नियत पद-ज्ञान को ग्रहण कर।

---

[1] - विहूणा इति बालचन्द टीकाया पाठ ।

[2] - सुपदमेद इत्यपि पाठ ।

ज्ञान से उत्तम सुख मिलता है -

एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि ।
एदेण होहि तित्तो होहिदि तुह उत्तमं सोंक्खं ।।७-१४-२०६

सान्वय अर्थ - (एदम्हि) **इस ज्ञान मे** (णिच्च) **सदा ही** (रदो) **प्रीति कर** (एदम्हि) **इस ज्ञान मे ही तू** (णिच्च) **सदा ही** (सतुट्ठो होहि) **सन्तुष्ट रह** (एदेण) **इस ज्ञान से तू** (तित्तिहोहि) **तृप्त रह - इससे** (तुह) **तुझे** (उत्तम सोंक्खं) **उत्तम सुख** (होहिदि) **होगा।**

अर्थ - (हे भव्य !) तू इस ज्ञान में सदा प्रीति कर, इसी में तू सदा सन्तुष्ट रह, इससे ही तू तृप्त रह। (ज्ञान-रति, सन्तुष्टि और तृप्ति से) तुझे उत्तम सुख होगा।

ज्ञानी अपनी आत्मा को ही स्व मानता है -

को णाम भणे ॅज्ज बुहो परदव्वं मम इद हवदि दव्व ।
अप्पाणमप्पणो परिगहं तु णियद वियाणतो ।।७-१५-२०७

साान्वय अर्थ - (अप्पाण) **अपनी आत्मा को ही** (णियद) **निश्चित रूप से** (अप्पणो) **अपना** (परिगह तु) **परिग्रह** (वियाण तो) **जानता हुआ** (को णाम बुहो) **कौन ज्ञानी पुरुष** (भणे ॅज्ज) **कहेगा कि** (इद परदव्व) **यह परद्रव्य** (मम दव्व) **मेरा द्रव्य** (हवदि) **है।**

अर्थ - अपनी आत्मा को ही निश्चित रूप से अपना परिग्रह जानता हुआ कौन ज्ञानी पुरुष कहेगा कि यह पर द्रव्य मेरा द्रव्य है।

परद्रव्य मेरा नहीं है -

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छे ॅज्ज ।
णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झं ।।७-१६-२०८

सान्वय अर्थ - (जदि) **यदि** (परिग्गहो) **परिग्रह-परद्रव्य** (मज्झ) **मेरा हो** (तदो तु) **तब तो** (अहं) **चैतन्य स्वभाव वाला मैं** (अजीवद) **अजीवता को** (गच्छे ॅज्ज) **प्राप्त हो** जाऊँ (जम्हा) **क्योंकि** (अहं) **मैं** (णादेव) **ज्ञाता ही हूँ** (तम्हा) **इस कारण** (परिग्गहो) **परद्रव्य रुप परिग्रह** (मज्झ ण) **मेरा नहीं है।**

अर्थ - यदि परिग्रह (परद्रव्य) मेरा हो, तब तो (चैतन्य स्वभाववाला) मै अजीवता को प्राप्त हो जाऊँ, क्योकि मै ज्ञाता ही हूँ, इस कारण परद्रव्यरूप परिग्रह मेरा नही है।

ज्ञानी का निश्चय -

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं ।
जम्हा तम्हा गच्छदु तहावि ण परिग्गहो मज्झ ।।७-१७-२०९

सान्वय अर्थ - (छिज्जदु वा) **चाहे छिद जाए** (भिज्जदुवा) **चाहे भिद जाए** (णिज्जदु वा) **चाहे कोई ले जाए** (अहव) **अथवा** (विप्पलय जादु) **नष्ट हो जाए** (जम्हा तम्हा) **चाहे जिस कारण से** (गच्छदु) **चला जाए** (तहावि) **तथापि** (परिग्गहो) **परिग्रह** (मज्झ ण) **मेरा नही है।**

अर्थ - चाहे छिद जाए, चाहे भिद जाए, चाहे कोई ले जाए अथवा नष्ट हो जाए, चाहे जिस कारण से चला जाए, तथापि परिग्रह मेरा नही है।

ज्ञानी के धर्म का परिग्रह नही है -

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णे॑च्छदे धम्मं ।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ।।७-१८-२१०

सान्वय अर्थ - (अणिच्छो) **जिसके इच्छा नही है - वह** (अपरिग्गहो) **अपरिग्रही** (भणिदो) **कहा है** (य) **और** (णाणी) **ज्ञानी** (धम्मं) **धर्म को** (णे॑च्छदे) **नही चाहता** (तेण) **इसलिए** (सो) **वह** (धम्मस्स दु) **धर्म का - पुण्य** का (अपरिग्गहो) **परिग्रही नही है - किन्तु** (जाणगो) **धर्म का ज्ञायक** (होदि) **है।**

अर्थ - जिसके इच्छा नही है, वह अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी धर्म को - पुण्य को नही चाहता, इसलिए वह धर्म का परिग्रही नही है, (किन्तु वह) धर्म का ज्ञायक है।

ज्ञानी के अधर्म का परिग्रह नहीं है -

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदि अधम्म ।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥७-१९-२११

सान्वय अर्थ - (अणिच्छो) **जिसके इच्छा नहीं है - वह** (अपरिग्गहो) **अपरिग्रही** (भणिदो) **कहा है** (य) **और** (णाणी) **ज्ञानी** (अधम्म) **अधर्म को - पाप को** (णेच्छदि) **नही चाहता** (तेण) **इसलिए** (सो) **वह** (अधम्मस्स) **अधर्म का** (अपरिग्गहो) **परिग्रही नही है - किन्तु** (जाणगो) **ज्ञायक** (होदि) **है।**

अर्थ - जिसके इच्छा नही है, वह अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी अधर्म को - पाप को नही चाहता, इसलिए वह अधर्म का परिग्रही नही है, किन्तु ज्ञायक है।

ज्ञानी के भोजन का परिग्रह नही है -

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो असण च णे`च्छदे णाणी ।
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि ।।७-२०-२१२

सान्वय अर्थ - (अणिच्छो) **जिसके इच्छा नही है - वह** (अपरिग्गहो) **अपरिग्रही** (भणिदो) **कहा है** (च) **और** (णाणी) **ज्ञानी** (असण) **भोजन को** (णे`च्छदे) **नही चाहता** (तेण) **इसलिए** (सो) **वह** (असणस्स दु) **भोजन का** (अपरिग्गहो) **परिग्रही नही है - किन्तु** (जाणगो) **ज्ञायक** (होदि) **है।**

अर्थ - जिसके इच्छा नही है, वह अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी भोजन को नही चाहता, इसलिए वह भोजन का परिग्रही नही है (किन्तु वह) ज्ञायक है।

ज्ञानी के पान का परिग्रह नही है -

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो पाण च णे˘च्छदे णाणी ।
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि ।।७-२१-२१३

सान्वय अर्थ - (अणिच्छो) **जिसके इच्छा नहीं है - वह** (अपरिग्गहो) **अपरिग्रही** (भणिदो) **कहा है** (च) **और** (णाणी) **ज्ञानी** (पाण) **पान को** (णे˘च्छदे) **नही चाहता** (तेण) **इसलिए** (सो) **वह** (पाणस्स दु) **पान का** (अपरिग्गहो) **परिग्रही नही है - किन्तु वह** (जाणगो) **ज्ञायक** (होदि) **है।**

अर्थ - जिसके इच्छा नहीं है, वह अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी पान को नही चाहता, इसलिए वह पान का परिग्रही नही है, (किन्तु वह) ज्ञायक है।

ज्ञानी के परभावों का परिग्रह नही -

एमादिए दु विविहे सव्वे भावे य णे॑च्छदे णाणी ।
जाणगभावो णियदो णीरालंबो दु सव्वत्थ ॥७-२२-२१४

सान्वय अर्थ - (एमादिए दु) **इत्यादिक** (विविहे) **नाना प्रकार के** (सव्वे भावे य) **सब भावो को** (णाणी) **ज्ञानी** (णे॑च्छदे) **नही चाहता** (सव्वत्थ) **सर्वत्र** (णीरालंबो दु) **निरालम्ब वह** (णियदो जाणगभावो) **निश्चित ज्ञायक भाव ही है।**

अर्थ - इत्यादिक नाना प्रकार के समस्त भावों को ज्ञानी नही चाहता। सर्वत्र निरालम्ब वह प्रतिनियत (टकोत्कीर्ण) ज्ञायक भाव ही है।

ज्ञानी को त्रिकाल के भोगों की आकाक्षा नही है -

उप्पण्णोदयभोगो वियोगबुद्धिए[१] तस्स सो णिच्च ।
कखामणागदस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी ।।७-२३-२१५

सान्वय अर्थ - (सो) **वह** (उप्पण्णोदयभोगो) **वर्तमान काल के उदय का - कर्मोदय का भोग** (तस्स) **ज्ञानी के** (णिच्च) **सदा ही** (वियोगबुद्धिए) **वियोग बुद्धि से होता है** (य) **और** (णाणी) **ज्ञानी** (अणागदस्स) **आगामी काल के** (उदयस्स) **उदय की** (कखा) **आकांक्षा** (ण कुव्वदे) **नही करता।**

अर्थ - वह वर्तमान काल के कर्मोदय का भोग ज्ञानी के सदा ही वियोग बुद्धि से होता है और ज्ञानी आगामी काल के उदय की आकाक्षा नही करता।

(ज्ञानी तो मोक्ष की भी इच्छा नही करता, तब वह अन्य पदार्थों की इच्छा क्यों करेगा?)

---

[१] - कई प्रतियो में 'वियोग बुद्धीए' पाठ है, जो अशुद्ध है ।

ज्ञानी वेद्य-वेदक भाव की आकाक्षा नही करता -

जो वेददि वेदिज्जदि समये समये विणस्सदे उहय ।
तं जाणगो दु णाणी उहय पि ण कख्दि कयावि ।।७-२४-२१६

सान्वय अर्थ - (जो) **जो** (वेददि) **अनुभव करता है - ऐसा वेदक भाव** (वेदिज्जदि) **जो अनुभव किया जाता है - ऐसा वेद्यभाव** (उहय) **ये दोनो भाव - अर्थपर्याय की अपेक्षा** (समये समये) **समय-समय में** (विणस्सदे) **नष्ट हो जाते है** (त) **ऐसा उन दोनो भावो का** (जाणगो दु णाणी) **जानने वाला ज्ञानी** (उहय पि) **उन दानो भावो की** (कयावि) **कदापि** (ण कख्दि) **आकाक्षा नही करता।**

अर्थ - जो अनुभव करता है (ऐसा वेदक भाव), जो अनुभव किया जाता है (ऐसा वेद्यभाव) ये दोनो भाव (अर्थपर्याय की अपेक्षा) समय-समय मे नष्ट हो जाते है। ऐसा जानने वाला ज्ञानी उन दोनो भावो की कदापि आकाक्षा नही करता।

समार, शरीर, भोग से विरक्त -

बंधुवभोगणिमित्ते अज्झवसाणोदयेसु णाणिस्स ।
ससारदेहविसयेसु णेव उप्पज्जदे रागो ।।७-२५-२१७

सान्वय अर्थ - (बधुवभोगणिमित्ते) **बन्ध और उपभोग के निमित्तभूत** (मसारदेहविसयेसु) **संसार-सम्बन्धी और देह-सम्बन्धी** (अज्झवसाणोदयेसु) **रागादि अध्यवसानो के उदय मे** (णाणिस्स) **ज्ञानी के** (रागो) **राग** (णेव उप्पज्जदे) **उत्पन्न नही होता।**

अर्थ - बन्ध और उपभोग के निमित्तभूत ससार-सम्बन्धी और देह-सम्बन्धी रागादि अध्यवमानो के उदय मे ज्ञानी के राग उत्पन्न नही होता।

ज्ञानी और अज्ञानी मे अन्तर -

णाणी रागप्पजहो हि सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
णो लिप्पदि रजएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं ।।७-२६-२१८

अण्णाणी पुण रत्तो हि सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
लिप्पदि कम्मरयेण दु कद्दममज्झे जहा लोहं ।।७-२७-२१९

सान्वय अर्थ - (णाणी) **ज्ञानी** (सव्वदव्वेसु) **सब द्रव्यो मे** (हि) **निश्चय ही** (रागप्पजहो) **राग का त्यागी होना है - वह** (कम्ममज्झगदो) **कर्मों के मध्य पड़ा हुआ भी** (रजएण दु) **कर्म रुपी रज से** (णो लिप्पदि) **लिप्त नही होता है** (जहा) **जिस प्रकार** (कद्दममज्झे) **कीचड के मध्य पड़ा हुआ** (कणय) **सोना कीचड़ मे लिप्त नही होता** (पुण) **पुन·** (अण्णाणी) **अज्ञानी जीव** (सव्वदव्वेसु) **सब परद्रव्यो मे** (हि) **निश्चय ही** (रत्तो) **रागी है - अत·** (कम्ममज्झगदो) **मन-वचन-काय के व्यापाररुप कर्मो के मध्य पडा हुआ** (कम्मरयेण दु) **कर्मरुपी रज से** (लिप्पदि) **लिप्त होता है** (जहा) **जिस प्रकार** (कद्दममज्झे) **कीचड़ के मध्य पडा हुआ** (लोह) **लोहा कीचड से लिप्त होता है।**

अर्थ - ज्ञानी सब द्रव्यो मे निश्चय ही राग का त्यागी (वीतराग) होता है, कर्मो के मध्य पडा हुआ भी कर्मरुपी रज से लिप्त नही होता है, जिस प्रकार कीचड के मध्य पडा हुआ सोना (कीचड मे लिप्त नही होता)। पुन अज्ञानी सब परद्रव्यो मे निश्चय ही रागी होता है, (अत वह) कर्मो के मध्य पडा हुआ कर्मरुपी रज मे लिप्त होता है, जिस प्रकार कीचड के मध्य पडा हुआ लोहा (कीचड-जग मे लिप्त होता है)।

शख्र के दृष्टान्त द्वारा पूर्वोक्त का समर्थन -

भुञ्जंतस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्त मिस्सिए दव्वे ।
संखस्स सेदभावो ण वि सक्कदि किण्हगो कादुं ।।७-२८-२२०

तह णाणिस्स दु वियहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे ।
भुञ्जतस्स वि णाणं ण सक्कमण्णाणद णेदु ।।७-२९-२२१

जइया स एव सखो सेदसहावं सय पजहिदूण ।
गच्छे`ज्ज किण्हभाव तइया सुक्कत्तणं पजहे ।।७-३०-२२२

तह णाणी वि हु जइया णाणसहाव सयं पजहिदूण ।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणद गच्छे ।।७-३१-२२३

सान्वय अर्थ - (विविहे) अनेक प्रकार के (सच्चियत्ताचित्तमिस्सिए) सचित्त, अचित्त और मिश्रित (दव्वे) द्रव्यो को (भुञ्जतस्स वि) भक्षण-उपभोग करने वाले (सखस्स) शख्र का (सेदभावो) श्वेत भाव (किण्हगो कादु) कृष्ण करना (ण वि सक्कदि) शक्य नही है - कृष्ण नही किया जा सकता (तह) उसी प्रकार (विविहे) अनेक प्रकार के (सच्चियत्ताचित्तमिस्सिए) सचित्त, अचित्त और मिश्रित (दव्वे) द्रव्यो का (भुञ्जतस्स वि) उपभोग करते हुए भी (णाणिस्स दु) ज्ञानी के (णाण) ज्ञान को (अण्णाणद) अज्ञान रुप (णेदु ण सक्क) नही किया जा सकता (जइया) जब (स एव सखो) वही शख्र (सेदसहाव) श्वेत स्वभाव को (सय पजहिदूण) स्वयं छोड़कर (किण्हभाव) कृष्णभाव को (गच्छे`ज्ज) प्राप्त होता है (तइया) तभी (सुक्कत्तण) शुक्लत्व को (पजहे) छोड़ देता है (तह) उसी प्रकार (णाणी वि) ज्ञानी भी (जइया हु) जब (णाणसहाव) अपने ज्ञान स्वभाव को (सय पजहिदूण) स्वय छोड़कर (अण्णाणेण परिणदो) अज्ञानरुप परिणमित होता है (तइया) तब - वह (अण्णाणद) अज्ञान-भाव को (गच्छे) प्राप्त हो जाता है।

अर्थ - अनेक प्रकार के सचित्त, अचित्त और मिश्रित द्रव्यो का उपभोग करने वाले शख का श्वेतभाव कृष्ण नही किया जा सकता। इसी प्रकार अनेक प्रकार के सचित्त, अचित्त और मिश्रित द्रव्यो का उपभोग करते हुए ज्ञानी के ज्ञान को अज्ञानरुप नही किया जा सकता।

जब वही शख अपने श्वेत स्वभाव को स्वय छोडकर कृष्णभाव को प्राप्त होता है, तभी वह शुक्लत्व को छोड देता है। इसी प्रकार ज्ञानी भी जब अपने ज्ञानस्वभाव को स्वय छोडकर अज्ञानरूप परिणमित होता है, तब वह अज्ञानभाव को प्राप्त हो जाता है।

ज्ञानी निष्काम कर्म करता है -

पुरिसो जह को वि इह वित्तिणिमित्त तु सेवदे राय ।
तो सो वि देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पादे ॥७-३२-२२४

एमेव जीवपुरिसो कम्मरय सेवदे सुहणिमित्त ।
तो सो वि देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पादे ॥७-३३-२२५

जय पुण सो च्चिय पुरिसो वित्तिणिमित्तण सेवदेराय ।
तो सो ण देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पादे ॥७-३४-२२६

एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थ सेवदे ण कम्मरयं ।
तो सो ण देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पादे ॥७-३५-२२७

सान्वय अर्थ - (जह) जिस प्रकार (इह) इस लोक मे (को वि पुरिसो) कोई पुरुष (वित्तिणिमित्त तु) आजीविका के लिए (राय) राजा की (सेवदे) सेवा करता है (तो) तो (सो वि राया) वह राजा भी उसे (सुहुप्पादे) सुख देने वाले (विविहे) नाना प्रकार के (भोगे) भोग (देदि) देता है (एमेव) इसी प्रकार (जीवपुरिसो) जीवपुरुष (सुहणिमित्त) सुख के लिए (कम्मरय) कर्म रज की (सेवदे) सेवा करता है (तो) तो (सो कम्मो वि) वह कर्म भी (सुहुप्पादे) सुख देने वाले (विविहे) नाना प्रकार के (भोगे) भोग (देदि) देता है (पुण) पुन: (जह) जैसे (सो च्चिय पुरिसो) वही पुरुष (वित्तिणिमित्त) आजीविका के लिए (राय) राजा की (ण सेवदे) सेवा नही करता है (तो) तो (सो राया) वह राजा (सुहुप्पादे) सुख देने वाले (विविहे) नाना प्रकार के (भोगे) भोग (ण देदि) नही देता है (एमेव) इसी प्रकार (सम्मदिट्ठी) सम्यग्दृष्टि (विसयत्थ) विषयो के लिए (कम्मरय) कर्मराज का (ण सेवदे) सेवन नही करता (तो) तो (सो कम्मो) वह कर्म उसे (सुहुप्पादे) सुख देने वाले (विविहे) नाना प्रकार के (भोगे) भोग (ण देदि) नही देता।

अर्थ - जिस प्रकार इस लोक में कोई पुरुष आजीविका के लिए राजा की सेवा करता है, तो वह राजा भी उसे सुख देने वाले नाना प्रकार के भोग देता है, इसी प्रकार जीव पुरुष सुख के लिए कर्मरज की सेवा करता है तो वह कर्म भी उसे सुख देने वाले नाना प्रकार के भोग देता है।

पुन जैसे वही पुरुष आजीविका के लिए राजा की सेवा नही करता, तो वह राजा उसे सुख देने वाले नाना प्रकार के भोग नही देता है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि विषयों के लिए कर्मरज का सेवन नही करता तो वह कर्म उसे सुख देने वाले नाना प्रकार के भोग नही देता।

सम्यग्दृष्टि सप्तभय मुक्त होता है -

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका ॥७-३६-२२८

सान्वय अर्थ - (सम्मादिट्ठी जीवा) **सम्यग्दृष्टि जीव** (णिस्संका) **नि:शंक** (होंति) **होते है** (तेण) **इसलिए** (णिब्भया) **निर्भय होते हैं** (जम्हा) **क्योंकि वे** (सत्तभयविप्पमुक्का) **सप्त भयों से रहित होते हैं** (तम्हा) **इसलिए वे** (दु) **निश्चय ही** (णिस्संका) **नि:शक होते है।**

अर्थ - सम्यग्दृष्टि जीव नि शक होते है, इसलिये वे निर्भय होते है; क्योकि वे सप्तभय से रहित होते है, इसलिए वे निश्चय ही नि शक होते है।

निःशंक सम्यग्दृष्टि का स्वरुप -

जो चत्तारि वि पाये छिददि ते कम्मबधमोहकरे ।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।।७-३७-२२९

सान्वय अर्थ - (जो चेदा) **जो आत्मा** (कम्मबध मोहकरे) **कर्म-बन्ध का भ्रम उत्पन्न करने वाले** (ते चत्तारि वि) **उन चारों ही** (पाये) **मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योगरुप पायो को** (छिददि) **काटता है** (सो) **उसे** (णिस्सको सम्मादिट्ठी) **निःशक सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

अर्थ - जो आत्मा कर्म-बन्ध का भ्रम उत्पन्न करने वाले उन चारो ही (मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योगरुप चारो ही) पायो को काटता है, उसे निःशक सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये।

नि कांक्षित सम्यग्दृष्टि -

जो दु ण करेदि कख कम्मफले तह य सव्वधम्मेसु ।
सो णिक्कखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।।७-३८-२३०

सान्वय अर्थ - (जो दु चेदा) **जो आत्मा** (कम्मफले) **कर्मों के फल की** (तह य) **तथा** (सव्वधम्मेसु) **समस्त धर्मों की** (कख) **कांक्षा - इच्छा** (ण करेदि) **नही करता** (सो) **उसे** (णिक्कखो) **निष्कांक्ष** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

अर्थ - जो आत्मा कर्मों के फल की तथा समस्त धर्मों की कांक्षा (इच्छा) नही करता, उसे निष्कांक्ष सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये।

निर्विचिकित्सा अग का लक्षण -

जो ण करेदि दुगुञ्छ[1] चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगिञ्छो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।।७-३९-२३१

सान्वय अर्थ - (जो चेदा) **जो आत्मा** (सव्वेसिमेव) **सभी** (धम्माण) **धर्मो - वस्तु-स्वभावो के प्रति** (दुगुञ्छ) **जुगुप्सा-ग्लानि** (ण करेदि) **नही करता है** (सो) **उसको** (खलु) **वस्तुत** (णिव्विदिगिञ्छो) **निर्विचिकित्स** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

अर्थ - जो आत्मा सभी धर्मो (वस्तु-स्वभावो) के प्रति जुगुप्सा (ग्लानि) नही करता है, उसे वस्तुत निर्विचिकित्स सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये।

---

[1] - जुगुप्प इत्यपि पाठ ।

अमूढदृष्टि का कथन -

जो हवदि असम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु ।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।।७-४०-२३२

सान्वय अर्थ - (जो चेदा) जो आत्मा (सव्वभावेसु) समस्त भावो मे (असम्मूढो) अमूढ़ एवं (सद्दिट्ठि) यथार्थ दृष्टि वाला (हवदि) होता है (सो) उसे (खलु) वास्तव मे (अमूढदिट्ठी) अमूढ दृष्टि (सम्मादिट्ठी) सम्यग्दृष्टि (मुणेदव्वो) मननपूर्वक जानना चाहिये।

अर्थ - जो आत्मा समस्त भावो मे अमूढ एव यथार्थ दृष्टिवाला होता है, उसे वस्तुत अमूढदृष्टि सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये।

उपगूहन का स्वरुप -

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माण ।
सो उवगूहणगारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।।७-४१-२३३

सान्वय अर्थ - (जो) **जो आत्मा** (सिद्धभत्तिजुत्तो) **शुद्धात्म भावनारुप सिद्धभक्ति से युक्त है** (दु) और (सव्वधम्माण) **रागादि विभाव धर्मों का** (उवगूहणगो) **उपगूहक - नाश करने वाला है** (सो) **उसे** (उवगूहणगारी) **उपगूहनकारी** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

अर्थ - जो आत्मा (शुद्धात्म भावनारुप) सिद्धभक्ति से युक्त है और समस्त रागादिविभाव धर्मों का उपगूहक (नाश करने वाला) है, उसे उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये।

स्थितिकरण अग -

उम्मग्ग गच्छत सग पि मग्गे ठवेदि जो चेदा ।
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।।७-४२-२३४

सान्वय अर्थ - (जो चेदा) **जो आत्मा** (उम्मग्ग गच्छत) **उन्मार्ग मे जाते हुए** (सग पि) **स्वय अपनी आत्मा को भी** (मग्गे) **शिवमार्ग मे** (ठवेदि) **स्थापित करता है** (सो) **उसे** (णिदिकरणाजुत्तो) **स्थितिकरणयुक्त** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

अर्थ - जो आत्मा उन्मार्ग मे जाते हुए स्वय अपनी आत्मा को भी शिवमार्ग मे स्थापित करता है, उसे स्थितिकरण युक्त सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये।

वात्सल्य अग की परिभाषा -

जो कुणदि वच्छलत्त तिण्ह साहूण मॉक्खमग्गम्मि ।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥७-४३-२३५

सान्वय अर्थ - (जो) **जो आत्मा** (मॉक्खमग्गम्मि) **मोक्षमार्ग में** (तिण्ह साहूण) **तीन - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीन साधनो अथवा मोक्षमार्ग के साधक तीन साधुओ - आचार्य, उपाध्याय और साधुओ के प्रति** (वच्छलत्त) **वात्सल्य** (कुणदि) **करता है** (सो) **उसे** (वच्छलभावजुदा) **वात्सल्यभाव से युक्त** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

अर्थ - जो आत्मा मोक्षमार्ग मे तीन - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीन साधनो अथवा मोक्षमार्ग के साधक तीन साधुओ - आचार्य, उपाध्याय और साधुओ के प्रति वात्सल्य करता है, उसे वात्सल्यभाव से युक्त सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये।

आत्मज्ञानविहारी जिनज्ञान प्रभावी है -

विज्जारहमारूढो मणोरहपहेसु भमदि जो चेदा ।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।।७-४४-२३६

सान्वय अर्थ - (जो चेदा) **जो आत्मा** (विज्जारहमारूढो) **विद्यारूपी रथ मे आरूढ़ हुआ** (मणोरहपहेसु) **मनोरथ-मार्ग मे** (भमदि) **भ्रमण करता है** (सो) **उसे** (जिणणाणपहावी) **जिनेन्द्रदेव के ज्ञान की प्रभावना करने वाला** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

अर्थ - जो आत्मा विद्या (ज्ञान) रूपी रथ मे आरुढ़ हुआ मनोरथ-मार्ग में भ्रमण करता है, उसे जिनेन्द्रदेव के ज्ञान की प्रभावना करने वाला सम्यग्दृष्टि (मननपूर्वक) जानना चाहिये।

इदि सत्तमो णिज्जराधियारो समत्तो

अट्ठमो बंधाधियारो

रागादि से कर्म-बन्ध होता है -

जह णाम को वि पुरिसो णेहब्भत्तो दु रेणुबहुलम्मि ।
ठाणम्मि ठाइदूण य करेदि सत्थेहि वायाम ।।८-१-२३७

छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताण करेदि दव्वाणमुवघादं ।।८-२-२३८

उवघादं कुव्वतस्स तस्स णाणाविहेहि करणेहि ।
णिच्छयदो चिंतेज्ज हु किं पच्चयगो दु रयबंधो ।।८-३-२३९

जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबंधो ।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहि सेसाहि ।।८-४-२४०

एवं मिच्छादिट्ठी वट्टंतो बहुविहासु चिट्ठासु ।
रायादी उवओगे कुव्वंतो लिप्पदि रयेण ।।८-५-२४१

सान्वय अर्थ - (जह णाम) जिस प्रकार (को वि) कोई (पुरिसो) पुरुष (णेहब्भत्तो दु) तेल लगाकर (य) और (रेणुबहुलम्मि) बहुत धूल वाले (ठाणम्मि) स्थान में (ठाइदूण) रहकर (सत्थेहि) शस्त्रों से (वायाम) व्यायाम (करेदि) करता है (तहा) तथा (तालीतलकयलिवंसपिंडीओ) ताड़, तमाल, केला और बाँस के समूह को (छिंददि) छेदता है (य भिंददि) और भेदता है तथा (सच्चित्ताचित्ताण) सचित्त और अचित्त (दव्वाण) द्रव्यों का (उवघाद) उपघात (करेदि) करता है (नानाविहेहि करणेहि) नाना प्रकार के करणों के द्वारा (उवघादं) उपघात (कुव्वतस्स तस्स) करते हुए उस पुरुष के (रयबंधो दु) धूलि का बंध (हु) वास्तव में (किं पच्चयगो) किस कारण से होता है (णिच्छयदो) निश्चय से यह (चिंतेज्ज) विचार करो (तम्हि णरे) उस मनुष्य के शरीर पर (सो जो दु णेहभावो) वह जो तेल की चिकनाहट है (तेण)

उसके कारण (तस्स) उस मनुष्य के (रयबधो) धूलि का बन्ध होता है (सेसाहि) शेष (कायट्ठाचेहि) काय की चेष्टाओ से (ण) रज-बन्ध नही होता - यह (णिच्छयदो) निश्चय से (विण्णेय) जानना चाहिये।

(एव) इसी प्रकार (बहुविहासु) नाना प्रकार की (चिट्ठासु) चेष्टाओ मे (वट्टतो) प्रवर्तमान (मिच्छादिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (उवओगे) उपयोग मे (रायादी) रागादि भावों को (कुव्वतो) करता हुआ (रयेण) कर्म-रज से (लिप्पदि) लिप्त होता है।

अर्थ - जिस प्रकार कोई पुरुष शरीर मे तेल लगाकर और बहुत धूल वाले स्थान मे रहकर शस्त्रो मे व्यायाम करता है और ताड, तमाल, कदली और बास के समूह को छेदता और भेदता है तथा सचित्त और अचित्त द्रव्यो का उपघात करता है, नाना प्रकार के करणो के द्वारा उपघात करते हुए उसके धूलि का बन्ध किस कारण से होता है, यह निश्चय से विचार करो।

उस मनुष्य के शरीर पर वह जो तेल की चिकनाहट है, उसके कारण उस मनुष्य के धूलि-बन्ध होता है, काय की शेष चेष्टाओ से नही होता - यह निश्चय से जानना चाहिये।

इसी प्रकार नाना प्रकार की चेष्टाओ मे प्रवर्तमान मिथ्यादृष्टि उपयोग मे रागादि भावो को करता हुआ कर्म-रज से लिप्त होता है।

रागादि के अभाव मे कर्म-बन्ध का अभाव -

जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वम्हि अवणिदे सते ।
रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहि वायाम ।।८-६-२४२

छिददि भिददि य तहा तालीतलकयलिवसपिडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघाद ।।८-७-२४३

उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहि करणेहि ।
णिच्छयदो चिंतेज्ज दु किं पच्चयगो ण रयबधो ।।८-८-२४४

जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबधो ।
णिच्छयदो विण्णेय ण कायचेट्ठाहि सेसाहि ।।८-९-२४५

एव सम्मादिट्ठी वट्टतो बहुविहेसु जोगेसु ।
अकरतो उवओगे रागादी ण लिप्पदि रयेण ।।८-१०-२४६

सान्वय अर्थ - (जह) जिस प्रकार (पुण) पुन (सो चेव) वही (णरो) मनुष्य (सव्वम्हि णेहे) समस्त तेल के (अवणिदे सते) दूर किये जाने पर (रेणुबहुलम्मि) बहुत धूल वाले (ठाणे) स्थान मे (सत्थेहि) शस्त्रो के द्वारा (वायाम) व्यायाम (करेदि) करता है (तहा य) और (तालीतलकयलिवस-पिडीओ) ताड़, तमाल, कदली और बास क समूह को (छिददि) छेदता है (य भिददि) और भेदता है (सच्चित्ताचित्ताण) सचित्त और अचित्त (दव्वाण) द्रव्यो का (उवघाद) उपघात (करेदि) करता है (णाणाविहेहि) नाना प्रकार के (करणेहि) करणो से (उवघाद) उपघात (कुव्वतस्स) करते हुए (तस्स) उसके (दु) वास्तव मे (किं पच्चयगो) किस कारण से (रयबधो ण) धूलि का बन्ध नही होता (णिच्छयदो) निश्चय से यह (चिंतेज्ज) विचार करो।

(तम्हि णरे) उस मनुष्य के शरीर पर (जो सो दु) वह जो (णेह भावो) चिकनाई थी (तेण) उसके कारण (तस्स) उसके (रयबधो) धूलि का बन्ध होता था (सेसाहि) शेष (कायचेट्ठाहि) काय की चेष्टाओ से (ण) धूलि-बन्ध नही होता (णिच्छयदो) यह निश्चयपूर्वक (विण्णेय) जानना चाहिये।

(एव) **इसी प्रकार** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि जीव** (बहुविहेसु) **नाना प्रकार के** (जोगेसु) **योगो में** (वट्टतो) **वर्तन - प्रवृत्ति करते हुए** (उवओगे) **उपयोग में** (रागादी) **रागादि भावो को** (अकरतो) **नहीं करता, इसलिए वह** (रयेण) **कर्म-रज से** (ण लिप्पदि) **लिप्त नही होता।**

अर्थ - जिस प्रकार पुन वही मनुष्य समस्त तेल के दूर किये जाने पर बहुत धूल वाले स्थान मे शस्त्रो से व्यायाम करता है तथा ताड़, तमाल, कदली और बाँस के समूह को छेदता और भेदता है, सचित्त और अचित्त द्रव्यों का उपघात करता है। नाना प्रकार के कारणों से उपघात करते हुए उसके किस कारण से धूलि का बन्ध नही होता, निश्चय से यह विचार करो।

उस मनुष्य के शरीर पर वह जो तेल की चिकनाई थी, उसके कारण उसके धूलि का बन्ध होता था, काय की शेष चेष्टाओ से धूलि-बन्ध नही होता, यह निश्चयपूर्वक जानो।

इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव नाना प्रकार के योगो मे वर्तन करते हुए उपयोग मे रागादि भावो को नही करता, इसलिए वह कर्म-रज से लिप्त नही होता।

ज्ञानी और अज्ञानी की पहचान -

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहि सत्तेहि ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ।।८-११-२४७

सान्वय अर्थ - (जो) **जो पुरुष** (मण्णदि) **मानता है कि** (हिंसामि) **मैं परजीव को मारता हूँ** (य) **और** (परेहि) **दूसरे** (सत्तेहि) **जीवों के द्वारा** (हिंसिज्जामि) **मैं मारा जाता हूँ** (सो) **वह पुरुष** (मूढो) **मोही है और** (अण्णाणी) **अज्ञानी है** (दु) **और** (एत्तो) **इससे** (विवरीदो) **विपरीत - जो ऐसा नहीं मानता वह** (णाणी) **ज्ञानी है।**

अर्थ - जो पुरुष मानता है कि मै परजीव को मारता हूँ और दूसरे जीवो के द्वारा मै मारा जाता हूँ, वह पुरुष मोही है और अज्ञानी है, और जो इससे विपरीत है (जो ऐसा नही मानता), वह ज्ञानी है।

आयुकर्म के क्षय से ही मरण होता है -

आउक्खयेण मरणं जीवाण जिणवरेहि पण्णत्तं ।
आउ च ण हरसि तुमं किह ते मरणं कदं तेसि ॥८-१२-२४८

आउक्खयेण मरण जीवाण जिणवरेहि पण्णत्त ।
आउ ण हरति तुहं किह ते मरणं कद तेहि ॥८-१३-२४९

सान्वय अर्थ - (जीवाण) **जीवो का** (मरण) **मरण** (आउक्खयेण) **आयुकर्म के क्षय से होता है** (जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेव ने** (पण्णत्त) **ऐसा बताया है** (च) **और** (तुम) **तू** (आउ) **उनके आयुकर्म को** (ण हरमि) **हरता नही है - तब** (ते) **तूने** (तेमि) **उन परजीवो का** (मरण) **मरण** (किह) **किस प्रकार** (कद) **किया** (जीवाण) **जीवो का** (मरण) **मरण** (आउक्खयेण) **आयुकर्म के क्षय से होता है** (जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेव ने** (पण्णत्त) **ऐसा बताया है - पर जीव** (तुह) **तेरा** (आउ) **आयुकर्म** (ण हरति) **हरते नही - तब** (तेहि) **उन्होने** (ते मरण) **तेरा मरण** (किह) **किस प्रकार** (कद) **किया।**

अर्थ - जीवो का मरण आयुकर्म के क्षय से होता है, जिनेन्द्रदेव ने ऐसा बताया है, और तू उनके आयुकर्म को हरता नही है, तब तूने उन परजीवो का मरण किस प्रकार किया

जीवो का मरण आयुकर्म के क्षय से होता है, जिनेन्द्रदेव ने ऐसा बताया है, परजीव तेरा आयुकर्म हरते नही है, तब उन्होने तेरा मरण किस प्रकार किया।

अज्ञानी और ज्ञानी -

जो मण्णदि जीवेमि य जीविस्सामि य परेहि सत्तेहि ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ।।८-१४-२५०

साऩ्वय अर्थ - (जो) **जो पुरुष** (मण्णदि) **ऐसा मानता है कि** (जीवेमि य) **मै परजीवो को जिलाता हूँ** (य) **और** (परेहि सत्तेहि) **परजीव** (जीविस्सामि) **मुझे जिलाते है** (सो) **वह पुरुष** (मूढो) **मोही है** (अण्णाणी) **और अज्ञानी है** (दु) **और जो** (एत्तो) **इससे** (विवरीदो) **विपरीत है - जो ऐसा नही मानता वह** (णाणी) **ज्ञानी है।**

अर्थ - जो पुरुष ऐसा मानता है कि मै परजीवो को जिलाता हूँ और परजीव मुझे जिलाते है, वह पुरुष मोही है और अज्ञानी है और जो इससे विपरीत है (जो ऐसा नही मानता), वह ज्ञानी है।

आयुकर्म के उदय से ही जीवन है -

आउउदयेण जीवदि जीवो एव भणति सव्वण्हू ।
आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीविद कदं तेसि ॥८-१५-२५१

आउउदयेण जीवदि जीवो एवं भणति सव्वण्हू ।
आउं ण देति तुह कहं णु ते जीविद कदं तेहि ॥८-१६-२५२

सान्वय अर्थ - (जीवो) **जीव** (आउउदयेण) **आयुकर्म के उदय से** (जीवदि) **जीता है** (एव) **इस प्रकार** (सव्वण्हू) **सर्वज्ञदेव** (भणति) **कहते है** (तुम) **तू** (आउ च) **अन्य को आयुकर्म** (ण देसि) **नही देता है - तब** (तए) **तूने** (तेसि) **उन पर जीवो को** (कह) **किस प्रकार** (जीविद) **जीवित** (कद) **किया।**

(जीवो) **जीव** (आउउदयेण) **आयुकर्म के उदय से** (जीवदि) **जीता है** (एव) **इस प्रकार** (सव्वण्हू) **सर्वज्ञदेव** (भणति) **कहते है - परजीव** (तुह) **तुझे** (आउ) **आयुकर्म** (ण देति) **देते नही - तब** (तेहि) **उन परजीवो ने** (ते) **तुझे** (जीविद) **जीवित** (कह णु) **किस प्रकार** (कद) **किया।**

अर्थ - जीव आयुकर्म के उदय से जीता है, ऐसा सर्वज्ञदेव कहते है। तू अन्य जीवो को आयुकर्म नही देता, तब तूने उन परजीवों को किस प्रकार जीवित किया।

जीव आयुकर्म के उदय से जीता है, ऐसा सर्वज्ञदेव कहते है। परजीव तुझे आयुकर्म देते नही, तब उन परजीवो ने तुझे जीवित किस प्रकार किया।

अज्ञानी और ज्ञानी का अन्तर -

जो अप्पणा दु मण्णदि दुक्खिदसुहिदे करमि सत्ते त्ति ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ।।८-१७-२५३

सान्वय अर्थ - (जो) **जो** (त्ति मण्णदि) **यह मानता है कि मैं** (अप्पणा दु) **अपने द्वारा - अपने सम्बन्ध से ही** (सत्ते) **परजीवों को** (दुक्खिदसुहिदे) **दुखी और सुखी** (करेमि) **करता हूँ** (सो) **वह** (मूढो) **मोही और** (अण्णाणी) **अज्ञानी है - जो** (एत्तो दु) **इससे** (विवरीदो) **विपरीत मानता है, वह** (णाणी) **ज्ञानी है।**

अर्थ - जो ऐसा मानता है कि मैं अपने द्वारा (अपने सम्बन्ध से ही) परजीवों को दुखी और सुखी करता हूँ, वह मोही और अज्ञानी है। जो इससे विपरीत मानता है, वह ज्ञानी है।

जीव कर्म के उदय से दुखी-सुखी होते है -

कम्मोदयेण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवति जदि सव्वे ।
कम्मं च ण देसि तुम दुक्खिदसुहिदा किह कदा ते ।।८-१८-२५४

कम्मोदयेण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवति जदि सव्वे ।
कम्म च ण दिति तुमं कदोसि किह दुक्खिदो तेहि ।।८-१९-२५५

कम्मोदयेण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवति जदि सव्वे ।
कम्म च ण दिति तुम किह त सुहिदो कदो तेहि ।।८-२०-२५६

सान्वय अर्थ - (जदि) **यदि** (सव्वेजीवा) **सभी जीव** (कम्मोदयेण) **कर्म के उदय से** (दुक्खिदसुहिदा) **दुखी और सुखी** (हवति) **होते हैं** (च) **और** (तुम) **तू - उन्हे** (कम्म) **कर्म तो** (ण देसि) **देता नही है - तब** (ते) **वे जीव - तूने** (दुक्खिदसुहिदा) **दुखी और सुखी** (किह) **किस प्रकार** (कदा) **किये।**

(जदि) **यदि** (सव्वे जीवा) **सभी जीव** (कम्मोदयेण) **कर्म के उदय से** (दुक्खिदसुहिदा) **दुखी और सुखी** (हवति) **होते है** (च) **और वे** (तुम) **तूझे** (कम्म) **कर्म** (ण दिति) **देते नही - तब तूझे** (तेहि) **उन जीवो ने** (किह) **किस प्रकार** (दुक्खिदो) **दुखी** (कदोसि) **किया।**

(जदि) **यदि** (सव्वेजीवा) **सभी जीव** (कम्मोदयेण) **कर्म के उदय से** (दुक्खिदसुहिदा) **दुखी और सुखी** (हवति) **होते है** (च) **और - वे जीव** (तुम) **तूझे** (कम्म) **कर्म** (ण दिति) **नही देते - फिर** (तेहि) **उन्होने** (त) **तुझे** (सुहिदो) **सुखी** (किह) **किस प्रकार** (कदो) **किया।**

अर्थ - यदि कर्म के उदय से सब जीव दुखी और सुखी होते है और तू उन्हे कर्म तो देता नही है, तब वे जीव तूने दुखी और सुखी किस प्रकार किये।

यदि सभी जीव कर्म के उदय से दुखी और सुखी होते है और वे तुझे कर्म देते नही, तब तुझे उन जीवों ने किस प्रकार दुखी किया।

यदि सभी जीव कर्म के उदय से दुखी और सुखी होते है और वे जीव तुझे कर्म तो देते नही है, तब उन्होंने तुझे सुखी कैसे किया।

मरण और दु ख कर्मोदय से होता है -

जो मरदि जो य दुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो ।
तम्हा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥८-२१-२५७

जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि य कम्मोदयेण खलु[1] जीवो ।
तम्हा ण मारिदो णो दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥८-२२-२५८

सान्वय अर्थ - (जो) **जो** (मरदि) **मरता है** (य) **और** (जो) **जो** (दुहिदो) **दुखी होता है** (सो सव्वो) **वह सब** (कम्मोदयेण) **कर्म के उदय से** (जायदि) **होता है** (तम्हा दु) **इसलिए** (मारिदो) **मैने अमुक को मार दिया** (च दुहाविदो) **और मैने अमुक को दुखी किया** (इदि) **ऐसा** (दे) **तेरा अभिप्राय** (ण हु मिच्छा) **क्या वास्तव मे मिथ्या नही है?**

(जो) **जो** (ण मरदि) **मरता नही** (य) **और** (ण दुहिदो) **जो दुखी नही होता** (मो वि य जीवो) **वह जीव भी** (खलु) **वास्तव मे** (कम्मोदयेण) **कर्म के उदय से ही होता है** (तम्हा) **इसलिए** (ण मारिदो) **इसे मैने नही मारा** (च) **और** (णो दुहाविदो) **मैने इसे दुखी नही किया** (इदि ण हु मिच्छा) **ऐसा तेरा अभिप्राय क्या मिथ्या नही है?**

अर्थ - जो मरता है और जो दुखी होता है, वह सब कर्म के उदय से होता है, 'इसलिए मैने अमुक को मार दिया और मैने अमुक को दुखी किया' ऐसा तेरा अभिप्राय क्या वास्तव मे मिथ्या नही है?

जो न मरता है और न जो दुखी होता है, वह जीव भी वास्तव मे कर्म के उदय से ही होता है, इसलिए 'इसे मैने नही मारा और इसे मैने दुखी नही किया' ऐसा तेरा अभिप्राय क्या मिथ्या नही है?

---

[1]चेव खलु इत्यपि पाठान्तरम् । चेव पाठ खलु के साथ असगत है ।

मूढबुद्धि बन्ध का कारण है -

एसा दु जा मदी दे दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति ।
एसा दे मूढमदी सुहासुह बंधदे कम्म ॥८-२३-२५९

सान्वय अर्थ - (दे) **तेरी** (एसा दु जा) **यह जो** (मदी) **बुद्धि है कि मैं** (सत्ते) **जीवों को** (दुक्खिदसुहिदे) **दुखी-सुखी** (करेमित्ति) **करता हूँ** (एसा दे) **यह तेरी** (मूढमदी) **मूढ़ बुद्धि ही** (सुहासुह) **शुभ और अशुभ** (कम्म) **कर्मों को** (बधदे) **बाँधती है।**

अर्थ - तेरी यह जो बुद्धि है कि मैं जीवो को दुखी-सुखी करता हूँ, यह तेरी मूढ बुद्धि ही शुभाशुभ कर्मों को बाँधती है।

मिथ्याध्यवसाय बन्ध का कारण है -

दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि ज एवमज्झवसिद ते ।
त पावबंधग वा पुण्णस्स व बधग होदि ।।८-२४-२६०

मारेमि जीववेमि य सत्ते ज एवमज्झवसिद ते ।
तं पावबधग वा पुण्णस्स व बंधग होदि ।।८-२५-२६१

सान्वय अर्थ - मै (सत्ते) जीवो को (दुक्खिदसुहिदे) दुखी और सुखी (करेमि) करता हूँ (ज एव) जो इस प्रकार का (ते) तेरा (अज्झवसिद) रागादि अध्यवसान है (त) वह अध्यवसान (पाव बधग वा) पाप का बध करने वाला (पुण्णस्स व बधग) अथवा पुण्य का बन्ध करने वाला (होदि) होता है।

मैं (सत्ते) जीवो को (मारेमि) मारता हूँ (य) और (जीववेमि) जिलाता हूँ (ज एव) जो इस प्रकार का (ते) तेरा (अज्झवसिद) रागादि अध्यवसान है (त) वह अध्यवसान (पावबधग) पाप का बन्ध करने वाला (पुण्णस्स व बधग) अथवा पुण्य का बन्ध करने वाला (होदि) होता है।

अर्थ - मै जीवो को दुखी और सुखी करता हूँ, इस प्रकार का जो तेरा (रागादि) अध्यवसान है, वह अध्यवसान पाप का बन्ध करने वाला अथवा पुण्य का बन्ध करने वाला है।

मै जीवो को मारता हूँ, और जिलाता हूँ, इस प्रकार का जो तेरा (रागादि) अध्यवसान है, वह अध्यवसान पाप का बन्ध करने वाला अथवा पुण्य का बन्ध करने वाला है।

निश्चयनय से बन्ध का कारण -

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेहि मा व मारेहि ।
एसो बंधसमासो जीवाण णिच्छयणयस्स ।।८-२६-२६२

सान्वय अर्थ - (सत्ते) **जीवो को** (मारेहि) **मारो** (व) **अथवा** (मा मारेहि) **न मारो** (बधो) **कर्म-बन्ध** (अज्झवसिदेण) **अध्यवसान से होता है** (एसो) **यह** (णिच्छयणयस्स) **निश्चय नय से** (जीवाण) **जीवो के** (बधसमासो) **बन्ध का संक्षेप है।**

अर्थ - जीवो को मारो अथवा न मारो, कर्म-बन्ध अध्यवसान से होता है। यह निश्चयनय से जीवो के बन्ध का सक्षेप है।

अध्यवसान से पाप, पुण्य का बन्ध -

एवमलिये अदत्ते अबभचेरे परिग्गहे चेव ।
कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु बज्झदे पावं ।।८-२७-२६३

तह वि य सच्चे दत्ते बम्हे अपरिग्गहत्तणे चेव ।
करिदि अज्झवसाण ज तेण दु बज्झदे पुण्ण ।।८-२८-२६४

सान्वय अर्थ - (एव) **इसी प्रकार - हिंसा के अध्यवसान के समान** (अलिये) **असत्य में** (अदत्ते) **चोरी मे** (अबभचेरे) **अब्रह्मचर्य मे** (चेव) **और** (परिग्गहे) **परिग्रह मे** (ज) **जो** (अज्झवसाण) **अध्यवसान** (कीरदि) **किया जाता है** (तेण दु) **उससे** (पाव) **पाप का** (बज्झदे) **बन्ध होता है।**

(तह वि य) **और इसी प्रकार** (मच्चे) **सत्य मे** (दत्ते) **अचौर्य मे** (बम्हे) **ब्रह्मचर्य मे** (चेव) **और** (अपरिग्गहत्तणे) **अपरिग्रह मे** (ज) **जो** (अज्झवसाण) **अध्यवसान** (कीर्रदि) **किया जाता है** (तेण दु) **उससे** (पुण्ण) **पुण्य का** (बज्झदे) **बन्ध होता है।**

अर्थ - इमी प्रकार (हिमा के अध्यवमान क समान) असत्य मे, चोरी म, अब्रह्मचर्य मे और परिग्रह म जो अध्यवमान किया जाता है, उससे पाप का बध होता है।

और इमी प्रकार सत्य मे, अचौर्य मे, ब्रह्मचर्य मे और अपरिग्रह मे जा अध्यवमान किया जाता है, उमसे पुण्य का बन्ध होता है।

बन्ध वस्तु से नही होता -

वत्थु पडुच्च तं पुण अज्झवसाणं तु होदि जीवाण ।
ण हि वत्थुदो दु बधो अज्झवसाणेण बंधो त्ति ।।८-२९-२६५

सान्वय अर्थ - (पुण) **पुन** (वत्थु पडुच्च) **चेतनाचेतन बाह्य वस्तु का आलम्बन लेकर** (जीवाण तु) **जीवो के** (त अज्झवसाण) **वह रागादि अध्यवसान** (होदि) **होता है** (दु) **वास्तव मे** (वत्थुदो) **वस्तु से** (ण हि बधो) **बन्ध नही होता** (अज्झवसाणेण) **अध्यवसान से ही** (बधो त्ति) **बन्ध होता है।**

अर्थ - पुन (चेतनाचेतन बाह्य) वस्तु का आलम्बन लेकर जीवो के वह रागादि अध्यवसान होता है। वास्तव मे वस्तु से बन्ध नही होता, अध्यवसान से ही बन्ध होता है।

मोह-बुद्धि निरर्थक है -

दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बंधेमि तह विमोचेमि ।
जा एसा मूढमदी णिरत्थया सा हु दे मिच्छा ।।८-३०-२६६

सान्वय अर्थ - मैं (जीवे) जीवों को (दुक्खिदसुहिदे) **दुखी-सुखी** (करेमि) **करता हूँ** (बधेमि) **बँधवाता हूँ** (तह) **तथा** (विमोचेमि) **छुड़ाता हूँ** (दे) **तेरी** (जा एसा) **जो ऐसी** (मूढमदी) **मूढ़बुद्धि है** (सा) **वह** (णिरत्थया) **निरर्थक है** - अत· (दु) **वास्तव मे - वह** (मिच्छा) **मिथ्या है।**

अर्थ - मै जीवो को दुखी-सुखी करता हूँ, उन्हे बँधवाता हूँ, छुडाता हूँ, तेरी जो ऐसी मूढ़बुद्धि है, वह निरर्थक है, अत वास्तव मे वह मिथ्या है।

पर कर्तृत्व का अहंकार निरर्थक है -

अज्झवसाणणिमित्त जीवा वज्झति कम्मणा जदि हि ।
मुच्चंति मौंक्खमग्गे ठिदा य ते कि करोसि तुमं ।।८-३१-२६७

सान्वय अर्थ - (जदि हि) **यदि वास्तव मे** (अज्झवसाणणिमित्त) **अध्यवसान के निमित्त से** (जीवा) **जीव** (कम्मणा) **कर्मों से** (वज्झति) **बँधते है** (य) **और** (मौंक्खमग्गे) **मोक्षमार्ग मे** (ठिदा) **स्थित** (ते) **वे** (मुच्चति) **कर्मों से मुक्त होते है - तब** (तुम) **तू** (कि करोसि) **क्या करता है?**

अर्थ - यदि वास्तव मे अध्यवसान के निमित्त से जीव कर्मों से बधते है और मोक्षमार्ग मे स्थित वे कर्मों से मुक्त होते है, तब तू क्या करता है? (अर्थात् दूसरो को बाँधने-छोडने का तेरा अध्यवसान निष्प्रयोजन रहा)।

जीव निज को पररूप मानता है -

सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरइये ।
देवमणुवे य सव्वे पुण्ण पावं अणेयविहं ।।८-३२-२६८

धम्माधम्म च तहा जीवाजीवे अलोगलोगं च ।
सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण अप्पाण ।।८-३३-२६९

सान्वय अर्थ - (जीवो) **जीव** (अज्झवसाणेण) **अध्यवसान के द्वारा** (तिरियणेरइये) **तिर्यञ्च, नारक** (य) **और** (देवमणुवे) **देव, मनुष्य** (सव्वे) **इन सब पर्यायरूप** (अणेयविह) **और अनेक प्रकार के** (पुण्ण पाव) **पुण्य और पाप** (सव्वे) **इन सबरूप** (करेदि) **अपने आपको करता है** (तहा च) **तथा - उसी प्रकार** (जीवो) **जीव** (अज्झवसाणेण) **अध्यवसान के द्वारा** (धम्माधम्म) **धर्म-अधर्म** (जीवाजीवे) **जीव-अजीव** (अलोगलोग च) **लोक और अलोक** (सव्वे) **इन सबरूप** (अप्पाण) **अपने को** (करेदि) **करता है।**

अर्थ - जीव अध्यवसान के द्वारा तिर्यञ्च, नारक, देव और मनुष्य इन सब रूप और अनेक प्रकार के पुण्य और पाप इन सब रूप अपने आपको करता है।

तथा उसी प्रकार जीव अध्यवसान के द्वारा धर्म-अधर्म, जीव-अजीव, लोक और अलोक इन सब रुप अपने को करता है।

जिनके अध्यवसान नहीं, उनके कर्म-बन्ध नही -

एदाणि णत्थि जेसि अज्झवसाणाणि एवमादीणि ।
ते असुहेण सुहेण य कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥८-३४-२७०

सान्वय अर्थ - (एदाणि) **ये पूर्व मे कहे गये अध्यवसान** (एवमादीणि) **तथा इसी प्रकार के अन्य भी** (अज्झवमाणाणि) **अध्यवसान** (जेसि) **जिनके** (णत्थि) **नहीं हैं** (ते मुणी) **वे मुनि** (असुहेण) **अशुभ** (य) **और** (सुहेण) **शुभ** (कम्मेण) **कर्म से** (ण लिप्पंति) **लिप्त नही होते।**

अर्थ - ये पूर्व मे कहे गये अध्यवसान तथा इसी प्रकार के अन्य भी अध्यवसान जिनके नही है, वे मुनि अशुभ और शुभ कर्म से लिप्त नही होते है।

अध्यवसान के नामान्तर -

बुद्धी ववसाओ वि य अज्झबसाणं[1] मदी य विण्णाणं ।
एक्कट्ठमेव सव्वं चित्तं भावो य परिणामो ।।८-३५-२७१

सान्वय अर्थ - (बुद्धी) **बुद्धि** (ववसाओ वि य) **व्यवसाय** (अज्झवसाण) **अध्यवसान** (मदी य) **मति** (विण्णाण) **विज्ञान** (चित्त) **चित्त** (भावो) **भाव** (य) **और** (परिणामो) **परिणाम** (सव्व) **ये सब** (एक्कट्ठमेव) **एकार्थक हैं।**

अर्थ - बुद्धि, व्यवसाय, अध्यवमान, मति, विज्ञान, चित्त, भाव और परिणाम ये सब एकार्थक है (अर्थात् जीव का परिणाम अध्यवसान है)।

---

[1]- अज्झवसाण - अध्यवसान

अतिहर्षविषादाभ्यामधिकमवसानम् । चिन्तनमवसानम् । विशे । रागस्नेहसयात्मिकेऽध्यआये । रागभयस्नेहभेदात् त्रिविधमध्यवसानम । अध्यवसान जीव परिणाम ।

- अभि राजेंद्र २३२

निश्चयाश्रित ही निर्वाण को पाते है -

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण ।
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाण ।।८-३६-२७२

सान्वय अर्थ - (एव) **इस प्रकार** (ववहारणओ) **व्यवहार नय** (णिच्छय-णयेण) **निश्चय नय के द्वारा** (पडिसिद्धो) **निषिद्ध** (जाण) **जानो** (पुण) **पुनः** (णिच्छयणयासिदा) **निश्चय नय के आश्रित** (मुणिणो) **मुनि** (णिव्वाण) **निर्वाण** (पावंति) **प्राप्त करते है।**

अर्थ - इस प्रकार व्यवहारनय निश्चयनय के द्वारा निषिद्ध जानो, पुन निश्चयनय के आश्रित मुनि निर्वाण प्राप्त करते है।

अभव्य का चारित्र व्यर्थ है -

वदसमिदी गुत्तीओ सीलतव जिणवरेहि पण्णत्तं ।
कुव्वंतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु ।।८-३७-२७३

सान्वय अर्थ - (जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेव के द्वारा** (पण्णत्त) **कथित** (वदसमिदीगुत्तीओ) **व्रत, समिति, गुप्ति** (सीलतव) **शील और तप** (कुव्वतो वि) **करता हुआ भी** (अभव्वो) **अभव्य जीव** (अण्णाणी) **अज्ञानी** (मिच्छदिट्ठी दु) **मिथ्यादृष्टि ही है।**

अर्थ - जिनेन्द्रदेव के द्वारा कथित व्रत, समिति, गुप्ति, शील और तप को करता हुआ भी अभव्य जीव अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है।

अभव्य का शास्त्र-पाठ गुणकारी नही है -

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीयेॅज्ज ।
पाठो ण करेदि गुण असद्दहंतस्स णाणं तु ।।८-३८-२७४

सान्वय अर्थ - (जो) जो (अभवियसत्तो) **अभव्य जीव है वह** (अधीयेॅज्ज दु) **शास्त्र तो पढ़ता है,** किन्तु (मोक्खं) **मोक्ष का** (असद्दहंतो) **श्रद्धान नहीं करता** (तु) तो (णाण असद्दहतस्स) **ज्ञान का श्रद्धान न करने वाले उस अभव्य** जीव का (पाठो) **पाठ** (गुण) **गुण-लाभ** (ण करेदि) **नहीं करता है।**

अर्थ - जो अभव्यजीव है वह शास्त्र तो पढ़ता है, किन्तु मोक्षतत्त्व का श्रद्धान नही करता तो ज्ञान का श्रद्धान न करने वाले उस अभव्य जीव का शास्त्र-पाठ कोई लाभ नही करता है।

अभव्य की श्रद्धा निरर्थक है -

सद्दहदि य पत्तियदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि य।
धम्मं भोगणिमित्त ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥८-३९-२७५

सान्वय अर्थ - (सो) वह अभव्य जीव (भोगणिमित्तं धम्म) भोग के निमित्तभूत धर्म का ही (सद्दहदि य) श्रद्धान करता है (पत्तियदि य) उसी की प्रतीति करता है (रोचेदि य) उसी की रुचि करता है (तह पुणो वि) तथा पुनः (फासेदि य) उसी का स्पर्श करता है (ण हु कम्मक्खयणिमित्त) परन्तु कर्म-क्षय के निमित्त रुप धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रुचि और स्पर्श नही करता।

अर्थ - वह अभव्य जीव भोग के निमित्तभूत धर्म का ही श्रद्धान करता है, (उसी की) प्रतीति करता है, (उसी की) रुचि करता है तथा पुन (उसी का) स्पर्श करता है, परन्तु कर्म-क्षय के निमित्तरुप (धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रुचि और स्पर्श) नही करता।

व्यवहार और निश्चय का स्वरूप -

आयारादी णाणं जीवादी दसण च विण्णेयं ।
छज्जीवणिकं च तहा भणदि चरित्त तु ववहारो ।।८-४०-२७६

आदा हु मज्झ णाणं आदा मे दंसण चरित्तं च ।
आदा पच्चक्खाण आदा मे सवरो जोगो ।।८-४१-२७७

सान्वय अर्थ - (आयारादी) **आचारांग आदिशास्त्र** (णाण) **ज्ञान है** (जीवादी) **जीवादि तत्त्व** (दसण च) **दर्शन** (विण्णेय) **जानना चाहिये** (च) और (छज्जीवणिक) **छह जीव निकाय** (चरित्त) **चारित्र है** (तहा तु) **इस प्रकार तो** (ववहारो) **व्यवहारनय** (भणदि) **कहता है।**

(हु) **निश्चय से** (मज्झ आदा) **मेरी आत्मा ही** (णाण) **ज्ञान है** (मे आदा) **मेरी आत्मा ही** (दसण चरित्त च) **दर्शन और चारित्र है** (आदा) **मेरी आत्मा ही** (पच्चक्खाण) **प्रत्याख्यान है** - और (मे आदा) **मेरी आत्मा ही** (सवरो जोगो) **सवर और योग है।**

अर्थ - आचाराग आदि शास्त्र ज्ञान है, जीवादि तत्त्व दर्शन जानना चाहिये और छह जीवनिकाय चारित्र है - इस प्रकार तो व्यवहारनय कहता है।

निश्चय से मेरी आत्मा ही ज्ञान है, मेरी आत्मा ही दर्शन और चारित्र है मेरी आत्मा ही प्रत्याख्यान है और मेरी आत्मा ही सवर और योग है (यह निश्चयनय का कथन है)।

भावकर्म से रागादि परिणति -

जह फलिहमणि विसुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादीहि ।
रंगिज्जदि अण्णेहि दु सो रत्तादीहि दव्वेहि ॥८-४२-२७८

एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादीहि ।
रागिज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहि दोसेहि ॥८-४३-२७९

सान्वय अर्थ - (जह) **जैसे** (फलिहमणि) **स्फटिकमणि** (विसुद्धो) **विशुद्ध है, वह** (रागमादीहि) **रक्तादि रूप से** (सय) **स्वय** (ण परिणमदि) **परिणत नही होती** (दु) **परन्तु** (सो) **वह** (अण्णेहि) **अन्य** (रत्तादीहि दव्वेहि) **लाल आदि वर्णवाले द्रव्यो से** (रगिज्जदि) **लाल आदि परिणत होती है** (एव) **इसी प्रकार** (णाणी) **ज्ञानी** (सुद्धो) **स्वयं तो शुद्ध है, वह** (रागमादीहि) **रागादि रूप** (सय) **अपने आप** (ण परिणमदि) **परिणमन नही करता** (दु) **परन्तु** (सो) **वह** (अण्णेहि) **अन्य** (रागादीहि दोसेहि) **रागादि दोषो से** (रागिज्जदि) **राग रूप परिणमन करता है।**

अर्थ - जैसे स्फटिक मणि विशुद्ध है, वह स्वय लाल आदि वर्ण रूप से परिणत नही होती, परन्तु वह अन्य लाल आदि वर्ण वाले द्रव्यों से लाल आदि रूप परिणमन करती है। इसी प्रकार ज्ञानी (आत्मा स्वय तो) शुद्ध है। वह रागादि रूप स्वय परिणमन नही करता, परन्तु वह अन्य रागादि दोषो से राग रूप परिणमन करता है।

ज्ञानी रागादि का कर्त्ता नहीं है -

ण वि रागदोसमोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा।
सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसि भावाणं ॥८-४४-२८०

सान्वय अर्थ - (णाणी) **ज्ञानी** (ण वि) **न तो** (रागदोसमोहं) **राग, द्वेष, मोह को** (कसायभाव वा) **अथवा कषाय भाव को** (सय) **स्वयं** (अप्पणो) **निजरूप** (कुव्वदि) **करता है** (तेण) **इसलिए** (सो) **वह ज्ञानी** (तेसि भावाण) **उन भावों का** (कारगो ण) **कर्त्ता नही है।**

अर्थ - ज्ञानी राग, द्वेष, मोह को अथवा कषाय भाव को स्वय निजरूप नही करता है, इसलिए वह उन भावों का कर्त्ता नही है।

अज्ञानी रागादि का कर्त्ता है -

रागम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा ।
तेहिं दु परिणमंतो रागादी बंधदि पुणो वि ।।८-४५-२८१

सान्वय अर्थ - (रागम्हि य) राग के होने पर (दोसम्हि य) द्वेष के होने पर (कषायकम्मेमु चेव) और कषाय कर्मों के होने पर (जे भावा) जो भाव होते हैं (तेहि दु) उन रूप (परिणमतो) परिणमन करता हुआ - अज्ञानी (रागादी) रागादी को (पुणो वि) बार-बार (बंधदि) बाँधता है।

अर्थ - राग के होने पर, द्वेष के होने पर और कषाय कर्मों के होने पर जो भाव होते है, उन रूप परिणमन करता हुआ (अज्ञानी) रागादि को बार-बार बाँधता है।

रागादि से कर्मबन्ध होता है -

रागम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा ।
तेहि दु परिणमतो रागादी बधदे चेदा ।।८-४६-२८२

सान्वय अर्थ - (रागम्हि य) **राग के होने पर** (दोसम्हि य) **द्वेष के होने पर** (कसायकम्मेसु चेव) **और कषाय कर्मों के होने पर** (जे भावा) **जो रागादि परिणाम होते है** (तेहि दु) **उनरूप** (परिणमतो) **परिणमन करता हुआ** (चेदा) **आत्मा** (रागादी) **रागादि को** (बधदे) **बाँधता है।**

अर्थ - राग, द्वेष और कषाय कर्मरूप (द्रव्यकर्म के उदय) होने पर जो रागादि परिणाम होते है, उन रूप परिणमन करता हुआ आत्मा रागादि को बॉधता है।

(निष्कर्ष यह है कि कर्म-बन्ध के कारण रागादि भाव होते है और रागादि भाव कर्म-बन्ध का कारण है।)

प्रतिक्रमण का स्वरूप -

अप्पडिकमण दुविह अपच्चखाणं तहेव विण्णेयं ।
एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा ।।८-४७-२८३

अप्पडिकमण दुविह दव्वे भावे अपच्चखाण पि ।
एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा ।।८-४८-२८४

जाव ण पच्चक्खाण अप्पडिकमण च दव्वभावाण ।
कुव्वदि आदा ताव दु कत्ता सो होदि णादव्वो ।।८-४९-२८५

सान्वय अर्थ - (अप्पडिकमण) **अप्रतिक्रमण** (दुविह) **दो प्रकार का है** (तहेव) **उसी प्रकार** (अपच्चखाण) **अप्रत्याख्यान - दो प्रकार का** (विण्णेय) **जानना चाहिये** (एदेणुवदेसेण दु) **इस उपदेश से** (चेदा) **आत्मा** (अकारगो) **अकारक** (वण्णिदो) **कहा गया है** (अप्पडिकमण) **अप्रतिक्रमण** (दुविह) **दो प्रकार का है** (दव्वे भावे) **द्रव्यरूप और भावरूप** (अपच्चखाण पि) **अप्रत्याख्यान भी दो प्रकार का है - द्रव्यरूप और भावरूप** (एदेणुवदेसेण दु) **इस उपदेश से** (चेदा) **आत्मा** (अकारगो) **अकारक** (वण्णिदो) **कहा गया है** (जाव) **जब तक** (आदा) **आत्मा** (दव्वभावाण) **द्रव्य और भाव का** (पच्चक्खाण) **प्रत्याख्यान** (ण कुव्वदि) **नही करता** (अप्पडिकमण च) **और जब तक द्रव्य और भाव का प्रतिक्रमण नही है** (ताव दु) **तब तक** (सो) **आत्मा** (कत्ता) **कर्त्ता** (होदि) **होता है** (णादव्वो) **ऐसा जानना चाहिये।**

अर्थ - (पूर्वानुभूत विषयरागादिरूप) अप्रतिक्रमण दो प्रकार का है। इसी प्रकार (भावी विषयाकाक्षारूप) अप्रत्याख्यान (दो प्रकार का) जानना चाहिये। इस उपदेश से आत्मा अकारक कहा गया है। अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान भी द्रव्य और भावरूप से दो प्रकार का है। इस उपदेश से आत्मा अकारक कहा गया है। जब तक आत्मा द्रव्य और भाव का प्रत्याख्यान नही करता और प्रतिक्रमण नही करता, तब तक वह आत्मा (कर्मो का) कर्त्ता होता है, ऐसा जानना चाहिये।

ज्ञानी मुनि को आहार निमित्तक बन्ध नहीं है -

आधाकम्मादीया पोंग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा ।
किह ते कुव्वदि णाणी परदव्वगुणा दु जे णिच्च ॥८-५०-२८६

आधाकम्मं उद्देसिय च पोंग्गलमयं इम दव्व ।
किह तं मम होदि कदं जं णिच्चमचेदणं वुत्तं ॥८-५१-२८७

सान्वय अर्थ - (आधाकम्मादीया) **अधःकर्म आदि** (जो इमे) **जो ये** (पोंग्गलदव्वस्स) **पुद्गलद्रव्य के** (दोसा) **दोष है** (ते) **उनको** (णाणी) **ज्ञानी-आत्मा** (किह) **किस प्रकार** (कुव्वदि) **कर सकता है** (जे दु) **जो कि** (णिच्च) **सदा** (परदव्वगुणा) **पर द्रव्य के गुण है** (इम) **यह** (आधाकम्म) **अध कर्म** (च) **और** (उद्देसिय) **औद्देशिक** (पोंग्गलमयदव्व) **पुद्गलमय द्रव्य है** (ज) **जो** (णिच्च) **सदा ही** (अचेदण) **अचेतन** (वुत्त) **कहा गया है** (त) **वह** (मम कद) **मेरा किया** (किह) **किस प्रकार** (होदि) **हो सकता है।**

अर्थ - अध कर्म आदि जो ये पुद्गलद्रव्य के दोष है, उनको ज्ञानी (आत्मा) किस प्रकार कर सकता है, जो कि सदा परद्रव्य के गुण है। यह अध कर्म और औद्देशिक पुद्गलमय द्रव्य है। वह मेरा किया किस प्रकार हो सकता है जो सदा अचेतन कहा गया है।

अट्ठमो बधाधियारो समत्तो

णवमो मॉक्खाधियारो

बन्ध के ज्ञानमात्र से मोक्ष नहीं -

जह णाम को वि पुरिसो बंधणयम्हि चिरकालपडिबद्धो ।
तिव्व मंदसहावं कालं च वियाणदे तस्स ॥९-१-२८८

जदि ण वि कुव्वदि छेदं ण मुच्चदे तेण बंधणवसो स ।
कालेण दु बहुगेण वि ण सो णरो पावदि विमोंक्खं ॥९-२-२८९

इय कम्मबधणाण पदेसपयडिट्ठिदीयअणुभागं ।
जाणंतो वि ण मुच्चदि मुच्चदि सव्वे जदि विसुद्धो ॥९-३-२९०

सान्वय अर्थ - (जह णाम) जैसे (बधणयम्हि) बन्धन मे (चिरकालपडिबद्धो) बहुत समय से बँधा हुआ (को वि पुरिसो) कोई पुरुष (तस्स) उस बन्धन के (तिव्व) तीव्र (मदसहाव) मन्द स्वभाव को (काल च) और उसके काल को (विदाणदे) जानता है (जदि) यदि वह (छेद ण वि कुव्वदि) उस बन्धन को नही काटता है - तो वह (तेण) उस बन्धन से (ण मुच्चदे) नहीं छूटता (दु) और (बधणवमो स) बन्धन के वश हुआ (मो णरो) वह मनुष्य (बहुगेण वि कालेण) बहुत काल मे भी (विमोक्ख ण पावदि) छुटकारा प्राप्त नहीं करता।

(इय) इसी प्रकार जीव (कम्मबधणाण) कर्म-बन्धनों के (पदेसपयडिट्ठिदीय अणुभाग) प्रदेश, प्रकृति, स्थिति और अनुभाग को (जाणतो वि) जानता हुआ भी (ण मुच्चदि) कर्मबन्ध से नही छूटता (जदि) यदि वह (विसुद्धो) रागादि को दूर कर शुद्ध होता है तो (सव्वे) सम्पूर्ण कर्म-बन्ध से (मुच्चदि) छूट जाता है।

अर्थ - जैसे बन्धन में बहुत समय से बँधा हुआ कोई पुरुष उस बन्धन के तीव्र-मन्द स्वभाव को और उसके काल को जानता है, यदि वह उस बन्धन को नही काटता है तो वह उस बन्धन से नही छूटता और बन्धन के वश हुआ वह मनुष्य बहुत काल में भी छुटकारा नहीं पाता।

इसी प्रकार जीव कर्म-बंधनों के प्रदेश, प्रकृति, स्थिति और अनुभाग को जानता हुआ भी कर्म-बन्ध से नहीं छूटता। यदि वह रागादि को दूरकर शुद्ध होता है तो सम्पूर्ण कर्म-बन्ध से छूट जाता है।

बन्ध की चिन्तामात्र से मोक्ष नहीं -

जह बंधे चितंतो बंधणबद्धो ण पावदि विमोंक्खं ।
तह बंधे चितंतो जीवो वि ण पावदि विमोंक्खं ।।९-४-२९१

सान्वय अर्थ - (जह) **जिस प्रकार** (बधणबद्धो) **बन्धन मे पड़ा हुआ कोई पुरुष** (बधे चितंतो) **उस बन्धन की चिन्ता करता हुआ** (विमोंक्खं) **मोक्ष** (ण पावदि) **नहीं पाता** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो वि) **जीव भी** (बधे चितंतो) **कर्म-बन्ध का विचार करता हुआ** (विमोंक्खं) **मुक्ति** (ण पावदि) **नहीं पाता।**

अर्थ - जिस प्रकार बन्धन मे पड़ा हुआ कोई पुरुष उस बन्धन की चिन्ता करता हुआ (चिन्ता करने मात्र से) छुटकारा नही पाता, उसी प्रकार जीव भी कर्म-बन्ध की चिन्ता करता हुआ (चिन्ता करने मात्र से) मुक्ति नही पाता।

कर्म-बन्ध के क्षय से मोक्ष होता है -

जह बधे छे॔त्तूण य बंधणबद्धो दु पावदि विमोॅक्खं ।
तह बंधे छे॔त्तूण य जीवो संपावदि विमोॅक्खं ।।९-५-२९२

सान्वय अर्थ - (जह य) **जिस प्रकार** (बधणबद्धो) **बन्धन में पड़ा हुआ कोई पुरुष** (बधे) **बन्धनों को** (छे॔त्तूण) **काट कर** (दु) **अवश्य ही** (विमोॅक्ख पावदि) **मुक्ति प्राप्त करता है** (तह य) **उसी प्रकार** (जीवो) **जीव** (बधे छे॔त्तूण) **कर्म-बन्ध को काटकर** (विमोॅक्ख) **मोक्ष** (सपावदि) **प्राप्त करता है।**

अर्थ - जिस प्रकार बन्धन मे पडा हुआ कोई पुरुष बन्धनों को काटकर अवश्य ही मुक्ति प्राप्त करता है, उसी प्रकार जीव कर्म-बन्ध को काटकर मोक्ष प्राप्त करता है।

भेद-विज्ञान से मोक्ष होता है -

बंधाणं च सहावं वियाणिदु अप्पणो सहाव च ।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणदि ।।९-६-२९३

सान्वय अर्थ - (बधाण सहाव च) **बन्धो के स्वभाव को** (अप्पणो सहाव च) **और आत्मा के स्वभाव को** (वियाणिदुं) **जानकर** (जो) **जो पुरुष** (बधेसु) **बन्धो के प्रति** (विरज्जदि) **विरक्त होता है** (सो) **वह** (कम्मविमोंक्खण कुणदि) **कर्मों से मुक्त होता है।**

अर्थ - बन्धो के स्वभाव को और आत्मा के स्वभाव को जानकर जो पुरुष बन्धो के प्रति विरक्त होता है, वह कर्मों से मुक्त होता है।

प्रज्ञा से भेद-विज्ञान होता है -

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहि णियदेहि ।
पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा ।।९-७-२९४

सान्वय अर्थ - (जीवो) **जीव** (तहा य) **तथा** (बधो) **बन्ध** (णियदेहि सलक्खणेहि) **अपने-अपने निश्चित लक्षणो के द्वारा** (छिज्जति) **पृथक् किये जाते है** (पण्णाछेदणएण दु) **प्रज्ञारूपी छुरी के द्वारा** (छिण्णा) **पृथक् किये हुए ये** (णाणत्तमावण्णा) **नानारूप हो जाते है - पृथक् हो जाते हैं।**

अर्थ - जीव तथा बन्ध ये दोनो अपने-अपने निश्चित लक्षणों के द्वारा पृथक् किये जाते है। प्रज्ञा रूपी छुरी के द्वारा छेदे हुए (पृथक् किये हुए) ये नानारूप हो जाते है (पृथक् हो जाते है)।

ेद-विज्ञान होने पर जीव का कर्त्तव्य -

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहि णियदेहि ।
बंधो छेदेदव्वो सुद्धो अप्पा य घेॅत्तव्वो ।।९-८-२९५

ान्वय अर्थ - (जीवो) **जीव** (तहा य) **तथा** (बधो) **बन्ध** (णियदेहि ालक्खणेहि) **अपने निश्चित लक्षणो के द्वारा** (छिज्जति) **पृथक् किये जाते** **- वहाँ** (बधो) **बन्ध को तो** (छेदेदव्वो) **आत्मा से पृथक् कर देना चाहिये** य) **और** (सुद्धो अप्पा) **शुद्ध आत्मा को** (घेॅत्तव्वो) **ग्रहण करना चाहिये।**

र्थ - जीव तथा बन्ध अपने-अपने निश्चित लक्षणों के द्वारा पृथक् किये जाते हैं। हाँ बन्ध को तो (आत्मा से) पृथक् कर देना चाहिये और शुद्ध आत्मा को ग्रहण रना चाहिये।

प्रज्ञा के द्वारा ही आत्मा को ग्रहण करना चाहिये -

किह सो घेॅप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु घेॅप्पदे अप्पा ।
जह पण्णाइ विहत्तो तह पण्णाएव घेॅत्तव्वो ।।९-९-२९६

सान्वय अर्थ - **शिष्य पूछता है कि** (सो अप्पा) **वह शुद्ध आत्मा** (किह) **कैसे** (घेॅप्पदि) **ग्रहण किया जा सकता है - आचार्य उत्तर देते हैं** - (सो दु अप्पा) **वह शुद्ध आत्मा** (पण्णाए) **प्रज्ञा के द्वारा** (घेॅप्पदे) **ग्रहण किया जाता है** (जह) **जैसे - पहले** (पण्णाइ) **प्रज्ञा के द्वारा** (विहत्तो) **भिन्न किया था** (तह) **उसी प्रकार** (पण्णाएव) **प्रज्ञा के द्वारा ही** (घेॅत्तव्वो) **ग्रहण करना चाहिये।**

अर्थ - (शिष्य गुरु से पूछता है) वह शुद्ध आत्मा कैसे ग्रहण किया जा सकता है? (आचार्य उत्तर देते है) वह शुद्ध आत्मा प्रज्ञा के द्वारा ग्रहण किया जाता है। जैसे (पहले) प्रज्ञा के द्वारा विभक्त किया था, उसी प्रकार प्रज्ञा के द्वारा ही ग्रहण करना चाहिये।

मै चिदात्मा हूँ -

पण्णाए घे॑त्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा ।।९-१०-२९७

सान्वय अर्थ - (पण्णाए) **प्रज्ञा के द्वारा** (घे॑त्तव्वो) **इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि** (जो चेदा) **जो चिदात्मा है** (णिच्छयदो) **निश्चय से** (सो तु) **वह** (अह) **मैं हूँ** (अवसेसा) **शेष** (जे भावा) **जो भाव हैं** (ते) **वे** (मज्झ) **मुझसे** (परे) **पर है** (त्ति णादव्वा) **यह जानना चाहिये।**

अर्थ - प्रज्ञा के द्वारा इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि जो चिदात्मा है, निश्चय से वह मै हूँ, शेष जो भाव है, वे मुझसे पर है, यह जानना चाहिये।

मै दृष्टा मात्र हूँ -

पण्णाए घे`त्तव्वो जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा ।।९-११-२९८

सान्वय अर्थ - (पण्णाए) **प्रज्ञा के द्वारा** (घे`त्तव्वो) **इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि** (जो दट्ठा) **जो दृष्टा - देखने वाला है** (णिच्छयदो) **निश्चय से** (सो तु) **वह** (अह) **मैं हूँ** (अवमेसा) **शेष** (जे भावा) **जो भाव है,** (ते) **वे सब** (मज्झ) **मुझसे** (परे) **पर है** (त्ति णादव्वा) **यह जानना चाहिये।**

अर्थ - प्रज्ञा के द्वारा इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि जो देखने वाला दृष्टा है, निश्चय से वह मैं हूँ, शेष जो भाव है, वे मुझसे पर है, यह जानना चाहिये।

मैं ज्ञातामात्र हूँ -

पण्णाए घेॅत्तव्वो जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा ।।९-१२-२९९

सान्वय अर्थ - (पण्णाए) **प्रज्ञा के द्वारा** (घेॅत्तव्वो) **इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि** (जो णादा) **जो ज्ञाता - जानने वाला है** (णिच्छयदो) **निश्चय से** (सो तु) **वह** (अह) **मैं हूँ** (अवसेसा) **शेष** (जे भावा) **जो भाव है** (ते) **वे** (मज्झ) **मुझसे** (परे) **पर हैं** (त्ति णादव्वा) **यह जानना चाहिये।**

अर्थ - प्रज्ञा के द्वारा इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि जो जानने वाला ज्ञाता है, निश्चय से वह मै हूँ, शेष जो भाव है, वे मुझसे पर हैं, यह जानना चाहिये।

चिन्मात्र भाव ही अपने है -

को णाम भणेॅज्ज बुहो णादु सव्वे पराइए भावे ।
मज्झमिणं ति य वयणं जाणतो अप्पय सुद्ध ।।९-१३-३००

सान्वय अर्थ - (अप्पयं) **आत्मा को** (सुद्ध) **शुद्ध** (जाणतो) **जानता हुआ** (सव्वे भावे) **शेष सब भावो को** (पराइए) **पर** (णादु) **जानकर** (को णाम बुहो) **कौन बुद्धिमान** (मज्झमिण) **ये मेरे है** (ति य वयण) **ऐसे वचन** (भणेॅज्ज) **कहेगा।**

अर्थ - आत्मा को शुद्ध जानता हुआ, शेष सब भावो को पर जानकर कौन बुद्धिमान 'ये भाव मेरे है' ऐसे वचन कहेगा।

सापराध और निरपराध आत्मा -

थेयादी अवराहे कुव्वदि जो सो ससंकिदो होदि ।
मा बज्झे हं केण वि चोरो त्ति जणम्हि वियरंतो ।।९-१४-३०१

जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्संको दु जणवदे भमदि ।
ण वि तस्स बज्झिदुं ज चिता उप्पज्जदि कया वि ।।९-१५-३०२

एव हि सावराहो बज्झामि अहं तु संकिदो चेदा ।
जो पुण णिरावराहो णिस्सको ह ण बज्झामि ।।९-१६-३०३

सान्वय अर्थ - (जो) **जो पुरुष** (थेयादी अवराहे) **चोरी आदि अपराधो को** (कुव्वदि) **करता है** (मो) **वह पुरुष** (ससकिदो) **सशंकित** (होदि) **रहता है कि** (जणम्हि) **मनुष्यों के बीच** (वियरतो) **घूमते हुए** (चोरो त्ति) **चोर है ऐसा जानकर** (केण वि) **किसी के द्वारा** (ह मा बज्झे) **मै बाँध न लिया जाऊँ** (जो) **जो पुरुष** (अवराहे) **अपराध** (ण कुणदि) **नही करता** (सो दु) **वह तो** (जणवदे) **देश मे** (णिस्मको) **नि·शक** (भमदि) **घूमता है** (जे) **क्योंकि** (तस्स) **उसके मन मे** (बज्झिदु चिता) **बँधने की चिन्ता** (कया वि) **कभी** (ण वि उप्पज्जदि) **नही उत्पन्न होती** (एव हि) **इसी प्रकार** (मावगहो चेदा) **अपराधी आत्मा** (सकिदो) **शकित रहता है कि** (अह तु बज्झामि) **मै - ज्ञानावरणादि कर्मों से बन्ध को प्राप्त होऊँगा** (जो पुण णिरावराहो) **यदि निरपराध हो तो** (णिस्सको) **नि·शक रहता है कि** (अह ण बज्झामि) **मै नही बँधूँगा।**

अर्थ - जो पुरुष चोरी आदि अपराधों को करता है, वह पुरुष मशंकित रहता है कि मनुष्यो के बीच घूमते हुए 'चोर है' ऐसा जानकर किसी के द्वारा मै बाँध न लिया जाऊँ। जो पुरुष अपराध नही करता, वह तो देश मे नि शक घूमता है क्योंकि उसके मन मे बँधने की चिन्ता कभी उत्पन्न नही होती।

इसी प्रकार अपराधी आत्मा शकित रहता है कि मै (ज्ञानावरणादि कर्मों से) बन्ध को प्राप्त होऊँगा। यदि वह निरपराध हो तो नि शक रहता है कि मै नहीं बँधूँगा।

निरपराध आत्मा नि शक होता है -

> ससिद्धिराधसिद्धं साधिदमाराधिद च एयट्ठ ।
> अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराधो ।।९-१७-३०४
>
> जो पुण णिरावराधो चेदा णिस्सकिदो दु सो होदि ।
> आराहणाइ णिच्च वट्टदि अहमिदि वियाणतो ।।९-१८-३०५

सान्वय अर्थ - (ससिद्धिराधसिद्ध) **ससिद्धि, राध, सिद्ध** (साधिदमाराधिद च) **साधित और आराधित** (एयट्ठ) **ये सब एकार्थक है** (जो खलु चेदा) **जो आत्मा** (अवगदराधो) **राधरहित है - निज शुद्धात्मा की आराधना से रहित है** (सो) **वह** (अवराधो) **अपराध** (होदि) **होता है** (पुण) **और** (जो चेदा) **जो आत्मा** (णिरावराधो) **निरपराध होता है** (सो दु) **वह** (णिस्सकिदो) **नि·शक** (होदि) **होता है** (अहमिदि) **मै उपयोगस्वरूप एक शुद्ध आत्मा हूँ, इस प्रकार** (वियाणतो) **जानता हुआ** (आराहणाइ) **शुद्धात्मसिद्धि रूप आराधना से** (णिच्च वट्टदि) **सदा ही प्रवृत्त रहता है।**

अर्थ - ससिद्धि, राध, सिद्ध, साधित और आराधित ये सब एकार्थक है। जो आत्मा राधरहित है (निज शुद्धात्मा की आराधना से रहित है, वह आत्मा अपराध होता है, और जो आत्मा निरपराध होता है, वह नि शक होता है। ऐसा आत्मा 'मै (उपयोग-स्वरूप एक शुद्ध आत्मा) हूँ' इस प्रकार जानता हुआ (शुद्धात्मसिद्धिरूप) आराधना मे सदा ही वर्तता है।

विषकुम्भ और अमृतकुम्भ -

पडिकमणं पडिसरणं पडिहरणं धारणा णियत्ती य ।
णिदा गरुहा सोही अट्ठविहो होदि विसकुंभो ।।९-१८-३०६

अपडिकमणमपडिसरणमप्पडिहारो अधारणा चेव ।
अणियत्ती य अणिदागरुहासोही अमयकुभो ।।९-२०-३०७

सान्वय अर्थ - (पडिकमण) **प्रतिक्रमण** (पडिसरण) **प्रतिसरण** (पडिहरण) **परिहार** (धारणा) **धारणा** (णियत्ती) **निवृत्ति** (णिदा) **निन्दा** (गरुहा) **गर्हा** (य) **और** (सोही) **शुद्धि** (अट्ठविहो) **यह आठ प्रकार का** (विसकुभो) **विषकुम्भ** (होदि) **होता है।**

(अपडिकमण) **अप्रतिक्रमण** (अपडिसरण) **अप्रतिसरण** (अप्पडिहारो) **अपरिहार** (अधारणा) **अधारणा** (अणियत्ती) **अनिवृत्ति** (य) **और** (अणिदा) **अनिन्दा** (अगरुहा) **अगर्हा** (चेव) **और** (असोही) **अशुद्धि - ये आठ** (अमयकुभो) **अमृतकुम्भ है।**

अर्थ - प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निन्दा, गर्हा और शुद्धि - यह आठ प्रकार का विषकुम्भ (क्योकि इसमे कर्तृत्वबुद्धि होती है)।

अप्रतिक्रमण, अप्रतिसरण, अपरिहार, अधारणा, अनिवृत्ति, अनिन्दा, अगर्हा और अशुद्धि - ये आठ अमृतकुम्भ है (क्योकि इसमे कर्तृत्व का निषेध है)।

इदि णवमो मोक्खाधियारो समत्तो

दहमो सव्वविसुद्ध णाणाधियारो

जीव अपने परिणामों का कर्त्ता है -

दवियं ज उप्पज्जदि गुणेहि त तेहि जाणसु अणण्ण ।
जह कडयादीहि दु य पज्जएहि कणयमणण्णमिह ॥१०-१-३०८

जीवस्साजीवस्स य जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते ।
तं जीवमजीव वा तेहिमणण्ण वियाणाहि ॥१०-२-३०९

ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्ज ण तेण सो आदा ।
उप्पादेदि ण किचि वि कारणमवि तेण ण सो होदि ॥१०-३-३१०

कम्म पडुच्च कत्ता कत्तार तह पडुच्च कम्माणि ।
उप्पज्जते णियमा सिद्धी दु ण दिस्सदे अण्णा ॥१०-४-३११

सान्वय अर्थ - (ज दव्व) जो द्रव्य (गुणेहि) जिन गुणो से (उप्पज्जदि) उत्पन्न होता है (त) उसे (तेहि) उन गुणों से (अणण्ण) अनन्य (जाणसु) जानो (जह य) जैसे (इह) लोक मे (कडयादीहि पज्जएहि दु) कटक आदि पर्यायो से (कणय) स्वर्ण (अणण्ण) भिन्न नही है (जीवस्साजीवस्स य) जीव और अजीव के (जे परिणामा दु) जो परिणाम (सुत्त) सूत्र में (देसिदा) कहे है (तेहि) उन परिणामो से (त जीवमजीव वा) उस जीव और अजीव को (अणण्ण) अनन्य (वियाणाहि) जानो (जम्हा) क्योकि (सो आदा) वह आत्मा (कुदोचि वि) किसी से (ण उप्पण्णो) उत्पन्न नही हुआ (तेण) इसलिए (कज्ज ण) वह किसी का कार्य नही है (किचि वि) किसी अन्य को (ण उप्पादेदि) उत्पन्न नही करता (तेण) इस कारण (सो) वह - आत्मा (कारणमवि) किसी का कारण भी (ण होदि) नही है (णियमा) नियम से (कम्म पडुच्च) कर्म का आश्रय करके (कत्ता) कर्त्ता होता है (तह) तथा (कत्तार पडुच्च) कर्त्ता

का आश्रय करके (कम्माणि उप्पज्जते) **कर्म उत्पन्न होते है** (अण्णा सिद्धी दु) **कर्त्ता-कर्म की अन्य कोई सिद्धि** (ण दिस्सदे) **नहीं देखी जाती।**

अर्थ - जो द्रव्य जिन गुणो से उत्पन्न होता है, उसे उन गुणो से अनन्य जानो। जैसे लोक में कटक आदि पर्यायो से स्वर्ण भिन्न नहीं है। जीव और अजीव के जो परिणाम सूत्र में कहे है, उन परिणामो से उस जीव और अजीव को अनन्य जानो, क्योकि वह आत्मा किसी से उत्पन्न नही हुआ, इसलिए वह किसी का कार्य नही है, किसी अन्य को उत्पन्न नही करता, इस कारण वह किसी का कारण भी नही है। नियम से कर्म का आश्रय करके कर्त्ता होता है तथा कर्त्ता का आश्रय करके कर्म उत्पन्न होते है। कर्त्ता-कर्म की अन्य कोई सिद्धि नही देखी जाती।

आत्मा और कर्म-प्रकृति का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध -

चेदा दु पयडीयट्ठं उप्पज्जदि विणस्सदि ।
पयडी वि चेदयट्ठं उप्पज्जदि विणस्सदि ।।१०-५-३१२

एवं बंधो य दोण्हं पि अण्णोण्णपच्चया हवे ।
अप्पणो पयडीए य संसारो तेण जायदे ।।१०-६-३१३

सान्वय अर्थ - (चेदा दु) यह आत्मा (पयडीयट्ठ) **प्रकृति के निमित्त से** (उप्पज्जदि) **उत्पन्न होता है** (विणस्सदि) **और नष्ट होता है** (पयडी वि) **तथा वे कर्म प्रकृतियाँ भी** (चेदयट्ठ) **आत्मा के निमित्त से** (उप्पज्जदि) **उत्पन्न होती हैं** (विणस्सदि) **तथा विनाश को प्राप्त होती हैं** (एव य) **इस प्रकार** (अण्णोण्णपच्चया) **एक दूसरे के निमित्त से** (दोण्ह पि) **दोनो का** (अप्पणो पयडीए य) **आत्मा और कर्म प्रकृतियो का** (बधो) **बन्ध** (हवे) **होता है** (तेण) **उस बन्ध से** (ससारो) **ससार** (जायदे) **होता है।**

अर्थ - यह आत्मा प्रकृति के निमित्त से उत्पन्न होता है और नष्ट होता है तथा वे कर्मप्रकृतियाँ भी आत्मा के निमित्त से उत्पन्न होती है और विनाश को प्राप्त होती है। इस प्रकार एक दूसरे के निमित्त से आत्मा और कर्मप्रकृतियाँ - दोनो का बन्ध होता है। उस बन्ध से ससार होता है।

ज्ञाता, दृष्टा, मुनि कैसे होता है? -

जा एस पयडीयट्ठं चेदगो ण विमुञ्चदि ।
अयाणगो हवे तावं मिच्छादिट्ठी असंजदो ॥१०-७-३१४

जदा विमुञ्चदे चेदा कम्मफलमणतयं ।
तदा विमुत्तो हवदि जाणगो पस्सगो मुणी ॥१०-८-३१५

सान्वय अर्थ - (जा) **जब तक** (एस चेदगो) **यह आत्मा** (पयडीयट्ठ) **कर्मप्रकृति निमित्तक उत्पत्ति और विनाश को** (ण विमुञ्चदि) **नहीं छोड़ता** (ताव) **तब तक** (अयाणगो) **अज्ञानी** (मिच्छादिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि और** (असजदो) **असंयत** (हवे) **है** (जदा) **जब** (चेदा) **आत्मा** (अणतय कम्मफल) **अनन्त कर्मफल को** (विमुञ्चदे) **छोड़ देता है** (तदा) **तब वह** (विमुत्तो) **बन्ध से मुक्त हुआ** (जाणगो) **ज्ञाता** (पस्सगो) **दृष्टा और** (मुणी) **सयत हो जाता है।**

अर्थ - जब तक यह आत्मा कर्मप्रकृति के निमित्त से होने वाले उत्पत्ति और विनाश को नही छोड़ता, तब तक यह अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असयत (रहता) है। जब आत्मा अनन्त कर्मफल को छोड देता है, तब वह बन्ध से मुक्त हुआ ज्ञाता, दृष्टा और सयत (हो जाता) है।

ज्ञानी कर्म-फल को जानता है -

अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठिदो दु वेदेदि ।
णाणी पुण कम्मफलं जाणदि उदिदं ण वेदेदि ।।१०-९-३१६

सान्वय अर्थ - (अण्णाणी दु) **अज्ञानी** (पयडिसहावट्ठिदो) **प्रकृति के स्वभाव में स्थित हुआ** (कम्मफल) **कर्म के फल को** (वेदेदि) **भोगता है** (पुण) **और** (णाणी) **ज्ञानी** (उदिद) **उदय मे आये हुए** (कम्मफल) **कर्म के फल को** (जाणदि) **जानता है** (ण वेदेदि) **भोगता नही है।**

अर्थ - अज्ञानी प्रकृति के स्वभाव मे स्थित हुआ (हर्ष, विषाद से तन्मय हुआ) कर्म के फल को भोगता है और ज्ञानी उदय में आये हुए कर्म के फल को जानता है, भोगता नही है।

अभव्य अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता -

ण मुयदि पयडिमभव्वो सुट्ठु वि अज्झाइदूण सत्थाणि ।
गुडदुद्धं पि पिवंता ण पण्णया णिव्विसा होंति ।।१०-१०-३१७

सान्वय अर्थ - (अभव्वो) **अभव्य जीव** (सत्थाणि) **शास्त्रों को** (सुट्ठु) **अच्छी तरह** (अज्झाइदूण वि) **पढ़कर भी** (पयडि) **प्रकृति स्वभाव को** (ण मुयदि) **नही छोड़ता** - **जैसे** (पण्णया) **सर्प** (गुडदुद्ध) **गुड़मिश्रित दूध को** (पिवता पि) **पीते हुए भी** (णिव्विसा) **विषरहित** (ण होति) **नही होते।**

अर्थ - अभव्य जीव शास्त्रो को भलीभाँति पढ़कर भी प्रकृति स्वभाव को नही छोडता। जैसे सर्प गुडमिश्रित दूध को पीते हुए भी विषरहित नही होते।

ज्ञानी कर्म-फल का नही भोगता -

णिव्वेयसमावण्णो णाणी कम्मप्फलं वियाणादि ।
महुरं कडुयं बहुविहमवेदगो तेण सो होदि ।।१०-११-३१८

सान्वय अर्थ - (णिव्वेयसमावण्णो) वैराग्य को प्राप्त (णाणी) ज्ञानी (महुर) मधुर (कडुय) कटुक (बहुविह) अनेक प्रकार के (कम्मप्फलं) कर्मफल को (वियाणादि) जानता है (तेण) इसलिए (सो) वह (अवेदगो) अवेदक - कर्म-फल का भोक्ता नहीं (होदि) है।

अर्थ - वैराग्य को प्राप्त ज्ञानी मधुर, कटुक अनेक प्रकार के कर्मफल को जानता है; इसलिए वह कर्म-फल का भोक्ता नही है।

ज्ञानी पुण्य, पाप को जानता है -

ण वि कुव्वदि ण वि वेददि णाणी कम्माइ बहुप्पयाराइं ।
जाणदि पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च ।।१०-१२-३१९

सान्वय अर्थ - (णाणी) **ज्ञानी** (बहुप्पयाराइ) **बहुत प्रकार के** (कम्माइ) **कर्मो को** (ण वि कुव्वदि) **न तो करता है** (ण वि वेददि) **न भोगता ही है** (पुण) **किन्तु वह** (पुण्णं च पाव च) **पुण्य और पापरूप** (बध) **कर्मबन्ध को** (कम्मफल) **और कर्मफल को** (जाणदि) **जानता है।**

अर्थ - ज्ञानी बहुत प्रकार के कर्मों को न तो करता है, न भोगता ही है, किन्तु वह पुण्य और पापरूप कर्म-बन्ध को और कर्म-फल का जानता है।

ज्ञानी कर्त्ता भोक्ता नहीं है -

दिट्ठी सयं पि णाण अकारय तह अवेदय चेव ।
जाणदि य बधमॉक्खं कम्मुदय णिज्जर चेव ॥१०-१३-३२०

सान्वय अर्थ - जैसे (दिट्ठी) **नेत्र-दृश्य से भिन्न होने से वह दृश्य को न करता है, न अनुभव करता है** (तह) **उसी प्रकार** (णाण) **ज्ञान-कर्म से भिन्न होने के कारण** (सय पि) **स्वयं** (अकारय) **कर्मों का कर्त्ता नही है** (अवेदय चेव) **और उनका भोक्ता भी नही है - वह तो** (बध मॉक्ख) **बन्ध, मोक्ष** (य) **और** (कम्मुदय) **कर्म के उदय** (णिज्जर चेव) **और निर्जरा को** (जाणदि) **जानता है।**

अर्थ - (जैसे) नेत्र (दृश्य से भिन्न होने से वह दृश्य को न करता है, न अनुभव करता है) उसी प्रकार ज्ञान (कर्म से भिन्न होने के कारण) स्वय कर्मों का कर्त्ता नही है और उनका भोक्ता भी नही है (वह तो) बन्ध, मोक्ष, कर्म के उदय और निर्जरा को जानता है।

विशेष - *अब इससे आगे ग्रन्थ के अन्त तक चूलिका का व्याख्यान करते है। (विशेष व्याख्यान, उक्त, अनुक्त व्याख्या अथवा उक्तानुक्त अर्थ का सक्षिप्त व्याख्यान (सार) चूलिका कहलाती है।)*

कर्तृत्व मानने वालों को मोक्ष नहीं -

लोगस्स कुणदि विण्हू सुरणारय तिरियमाणुसे सत्ते ।
समणाणं पि य अप्पा जदि कुव्वदि छव्विहे काये ।।१०-१४-३२१

लोगसमणाणमेवं सिद्धंत पडि ण दिस्सदि विसेसो ।
लोगस्स कुणदि विण्हू समणाण अप्पओ कुणदि ।।१०-१५-३२२

एवं ण को वि मोंक्खो दिस्सदि लोगसमणाणं दोण्ह पि ।
णिच्चं कुव्वताणं सदेवमणुयासुरे लोगे ।।१०-१६-३२३

सान्वय अर्थ - (लोगस्स) **लोक के मत मे** (सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते) **सुर, नारक, तिर्यञ्च और मनुष्य प्राणियो को** (विण्हू) **विष्णु** (कुणदि) **करता है** (य) **और** (जदि) **यदि** (समणाण पि) **श्रमणो के मतानुसार भी** (अप्पा) **आत्मा** (छव्विहे काये) **छह काय के जीवो को** (कुव्वदि) **करता है - तो** (एव) **इस प्रकार** (लोगसमणाण) **लोक और श्रमणो मे** (सिद्धत पडि) **सिद्धान्त की दृष्टि से** (विसेसो) **अन्तर** (ण दिस्सदि) **नही दीखता** (लोगस्स) **लोक के मत मे** (विण्हू) **विष्णु** (कुणदि) **करता है और** (समणाण) **श्रमणो के मत मे** (अप्पओ) **आत्मा** (कुणदि) **करता है** (एव) **इस प्रकार** (सदेवमणुयासुरे लोगे) **देव, मनुष्य और असुर लोको को** (णिच्च कुव्वताण) **सदा करते हुए** (लोगसमणाण दोण्ह पि) **लोक और श्रमण दोनो का भी** (को वि मोंक्खो) **कोई मोक्ष** (ण दिस्सदि) **नही दिखाई देता।**

अर्थ - लोक के मत मे सुर, नारक, तिर्यञ्च और मनुष्य प्राणियो को विष्णु करता है और यदि श्रमणो के मतानुसार भी आत्मा छह काय के जीवो को (जीवो के कार्यो को) करता है तो इस प्रकार लोक और श्रमणो मे सिद्धान्तों की दृष्टि से कोई अन्तर नही दीखता। लोक के मत में विष्णु करता है और श्रमणो के मत मे आत्मा करता है। इस प्रकार देव, मनुष्य और असुर लोको को सदा करते हुए (कर्त्ताभाव से प्रवर्त्तमान) लोक और श्रमण दोनो का भी कोई मोक्ष दिखाई नही देता।

ज्ञानी की मान्यता -

ववहारभासिदेण दु परदव्वं मम भणंति विदिदत्था ।
जाणंति णिच्छयेण दु ण य इह परमाणुमेत्तमवि ।।१०-१७-३२४

सान्वय अर्थ - **अज्ञानी जन** (ववहारभासिदेण दु) **व्यवहार नय से** (परदव्व मम) **परद्रव्य मेरा है, ऐसा** (भणति) **कहते हैं** (य) **और** (विदिदत्था) **पदार्थ के स्वरूप को जानने वाले - ज्ञानीजन** (दु) **तो** (जाणति) **जानते है कि** (णिच्छयेण) **निश्चय नय से** (इह) **इस संसार में** (परमाणुमेत्त) **परमाणुमात्र** (अवि) **भी** (ण) **मेरा नहीं है।**

अर्थ - (अज्ञानी जन) व्यवहार नय से 'परद्रव्य मेरा है' ऐसा कहते हैं और पदार्थ के स्वरुप को जानने वाले ज्ञानी जन तो जानते हैं कि निश्चयनय से इस ससार मे परमाणुमात्र कुछ भी मेरा नही है।

परद्रव्य को अपना मानने वाला ज्ञानी मिथ्यादृष्टि है -

जह को वि णरो जपदि अम्हाणंगामविसयणयररट्ठं ।
ण य होति ताणि तस्स दु भणदि य मोहेण सो अप्पा ।।१०-१८-३२५

एमेव मिच्छादिट्ठी णाणी णिस्संसय हवदि एसो ।
जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणदि ।।१०-१९-३२६

तम्हा ण मे त्ति णच्चा दोण्ह एदाण कत्तिववसाओ ।
परदव्वे जाणतो जाणेज्जा दिट्ठिरहिदाण ।।१०-२०-३२७

सान्वय अर्थ - (जह) **जैसे** (को वि णरो) **कोई मनुष्य** (जपदि) **कहता है - कि यह** (अम्हाण) **हमारा** (गाम विसयणयर रट्ठ) **ग्राम, जनपद, नगर और राष्ट्र है** (दु) **किन्तु** (ताणि) **वे** (तस्स) **उसके** (ण य होति) **नही है** (य) **और** (सो अप्पा) **वह आत्मा** (मोहेण) **मोह से** (भणदि) **ऐसा कहता है** (एमेव) **इसी प्रकार** (जो णाणी) **जो ज्ञानी** (परदव्व मम) **परद्रव्य मेरा है** (इदि जाणतो) **यह जानता हुआ** (अप्पय कुणदि) **परद्रव्य को निजरूप कर लेता है** (एसो) **वह ज्ञानी** (णिस्ससय) **असदिग्धरूप से** (मिच्छदिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि** (हवदि) **होता है** (तम्हा) **इस कारण से** (ण मे त्ति) **ये परद्रव्य मेरे नही हैं यह** (णच्च) **जानकर** (एदाण दोण्ह) **लोक और श्रमण इन दोनो के** (परदव्वे) **परद्रव्य मे** (कत्तिववसाओ) **कर्त्तृत्व के व्यवसाय को** (जाणतो) **जानते हुए** (जाणेज्जा) **समझो कि यह व्यवसाय** (दिट्ठिरहिदाण) **मिथ्यादृष्टियो का है।**

अर्थ - जैसे कोई पुरुष कहता है कि यह हमारा ग्राम, जनपद, नगर और राष्ट्र है किन्तु वस्तुत वे उसके नही है, तथापि वह आत्मा मोह से ऐसा कहता है। इसी प्रकार जो ज्ञानी 'परद्रव्य मेरा है' यह जानता हुआ परद्रव्य को निजरूप कर लेता है, वह ज्ञानी नि सन्देह मिथ्यादृष्टि है, इसलिए 'ये परद्रव्य मेरे नही है' यह जानकर लोक और श्रमण इन दोनों के परद्रव्य मे कर्त्तृत्व के व्यवसाय को जानते हुए समझो कि यह व्यवसाय मिथ्यादृष्टियो का है।

भाव कर्म का कर्त्ता जीव है -

मिच्छत्तं जदि पयडी मिच्छादिट्ठी करेदि अप्पाण ।
तम्हा अचेदणा दे पयडी णणु कारगा पत्ता ॥१०-२१-३२८

अहवा एसो जीवो पॉग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्त ।
तम्हा पॉग्गलदव्वं मिच्छादिट्ठी ण पुण जीवो ॥१०-२२-३२९

अह जीवो पयडी तह पॉग्गलदव्व कुणति मिच्छत्तं ।
तम्हा दोहि कद त दोण्हि वि भुजंति तस्स फलं ॥१०-२३-३३०

अह ण पयडी ण जीवो पॉग्गलदव्व करेदि मिच्छत्तं ।
तम्हा पॉग्गलदव्व मिच्छत्त त तु ण हु मिच्छा ॥१०-२४-३३१

सान्वय अर्थ - (जदि) **यदि** (मिच्छत्त पयडी) **मोहनीय कर्म की मिथ्यात्व प्रकृति** (अप्पाण) **आत्मा को** (मिच्छादिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि** (करेदि) **करती है** (तम्हा) **इस मान्यता से** (दे) **तेरे मतानुसार** (अचेदणा पयडी) **अचेतन प्रकृति** (णणु) **निश्चय ही** (कारगा पत्ता) **मिथ्यात्व भाव की कर्त्ता हो गई।**

(अहवा) **अथवा** (एसो जीवो) **यह जीव** (पॉग्गलदव्वम्म) **पुद्गल द्रव्य के** (मिच्छत्त) **मिथ्यात्व को** (कुणदि) **करता है** (तम्हा) **ऐसा माना जाए तो** (पॉग्गल दव्व) **पुद्गल द्रव्य** (मिच्छादिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि सिद्ध होगा** (ण पुण जीवो) **जीव नही।**

(अह) **अथवा** (जीवो) **जीव** (तह) **तथा** (पयडी) **प्रकृति - ये दोनो** (पॉग्गलदव्व) **पुद्गलद्रव्य को** (मिच्छत्त) **मिथ्यात्वरूप** (कुणति) **करते है** (तम्हा) **ऐसा मानने से** (दोहि कद त) **दोनो के द्वारा किये हुए मिथ्यात्व** (तम्स फल) **उसके फल को** (दोण्हि वि) **वे दोनो ही** (भुजति) **भोगेगे।**

(अह) **अथवा** (ण पयडी) **न तो प्रकृति ही और** (ण जीवो) **न जीव ही** (पॉग्गलदव्व) **पुद्गलद्रव्य को** (मिच्छत्त) **मिथ्यात्वरूप** (करेदि) **करता है** (तम्हा) **ऐसा मानने से** (पॉग्गलदव्व) **पुद्गलद्रव्य को - मिथ्यात्वभाव का प्रसंग आ जाएगा** (त तु ण हु मिच्छा) **क्या वह वास्तव मे मिथ्या नही है?**

अर्थ - यदि (मोहनीय कर्म की) मिथ्यात्व प्रकृति आत्मा को मिथ्यादृष्टि करती है, इस मान्यता से तेरे मतानुसार अचेतन प्रकृति निश्चय ही मिथ्यात्व भाव की कर्त्ता हो गई; अथवा यह जीव पुद्गल द्रव्य के मिथ्यात्व को करता है, ऐसा माना जाए तो पुद्गल द्रव्य मिथ्यादृष्टि सिद्ध होगा, जीव नहीं; अथवा जीव तथा प्रकृति - ये दोनो पुद्गल द्रव्य को मिथ्यात्वरूप करते है, ऐसा मानने से दोनों के द्वारा किये हुए मिथ्यात्व के फल को वे दोनो ही भोगेगे, अथवा न तो प्रकृति और न जीव पुद्गल द्रव्य को मिथ्यात्वरूप करता है, ऐसा मानने से पुद्गल द्रव्य को (मिथ्यात्व भाव का प्रसग आ जाएगा), क्या वह वास्तव मे मिथ्या नही है?

कर्म ही कर्त्ता है, जीव नही, यह मिथ्या है -

कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जदि णाणी तहेव कम्मेहि ।
कम्मेहि सुवाविज्जदि जग्गाविज्जदि तहेव कम्मेहि ।।१०-२५-३३२

कम्मेहि सुहाविज्जदि दुक्खाविज्जदि तहेव कम्मेहि ।
कम्मेहि य मिच्छत्त णिज्जदि य असंजम चेव ।।१०-२६-३३३

कम्मेहि भमाडिज्जदि उड्ढमहं चावि तिरियलोयं च ।
कम्मेहि चेव किज्जदि सुहासुह जेत्तिय किंचि ।।१०-२७-३३४

जम्हा कम्म कुव्वदि कम्म दे दि हरदि त्ति जं किंचि ।
तम्हा सव्वे जीवा अकारगा होंति आवण्णा ।।१०-२८-३३५

सान्वय अर्थ - (कम्मेहि दु) कर्मों के द्वारा जीव (अण्णाणी) अज्ञानी (किज्जदि) किया जाता है (तहेव) उसी प्रकार (कम्मेहि) कर्मों के द्वारा (णाणी) ज्ञानी होता है (कम्मेहि) कर्मों के द्वारा (सुवाविज्जदि) सुलाया जाता है (तहेव) उसी प्रकार (कम्मेहि) कर्मों के द्वारा (जग्गाविज्जदि) जगाया जाता है (कम्मेहि) कर्मों का द्वारा जीव (सुहाविज्जदि) सुखी होता है (तहेव) उसी प्रकार (कम्महि) कर्मों के द्वारा (दुक्खाविज्जदि) दुखी होता है (य) और (कम्मेहि) कर्मों के द्वारा जीव (मिच्छत्त) मिथ्यात्व को (णिज्जदि) प्राप्त होता है (असजम चेव) और असयम को प्राप्त होना है (य) और (कम्मेहि) कर्मों के द्वारा जीव (उड्ढ) ऊर्ध्वलोक (अह चावि) अधोलोक (तिरियलोय च) और तिर्यग्लोक मे (भमाडिज्जदि) भ्रमण करता है (च) और (कम्मेहि एव) कर्मों के द्वारा ही (जेत्तिय किंचि) जो कुछ जितना (सुहासुह) शुभ और अशुभ है वह (किज्जदि) होता है (जम्हा) क्योकि (कम्म) कर्म (कुव्वदि) करता है (कम्म) कर्म (देदि) देता है (त्ति ज किंचि) इस प्रकार जो कुछ है उसे कर्म ही (हरति) हरता है (तम्हा) इसलिए (सव्वे जीवा) सभी जीव (अकारगा आवण्णा होति) अकर्त्ता सिद्ध होते है।

अर्थ - (पूर्व पक्ष) "कर्मों के द्वारा जीव अज्ञानी किया जाता है, उसी प्रकार कर्मों के द्वारा ज्ञानी होता है। कर्मों के द्वारा जीव सुलाया जाता है, उसी प्रकार कर्मों के द्वारा जगाया जाता है। कर्मों का द्वारा जीव सुखी होता है, उसी प्रकार कर्मों के द्वारा दुखी होता है। कर्मों के द्वारा जीव मिथ्यात्व और असयम को प्राप्त होता है, और कर्मों के द्वारा जीव ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक मे भ्रमण करता है। कर्मों के द्वारा ही जो कुछ जितना शुभ और अशुभ है वह होता है, क्योंकि कर्म करता है, कर्म देता है, इस प्रकार जो कुछ है, उसे कर्म ही हरता है; इसलिए सभी जीव अकर्त्ता सिद्ध होते है।"

आत्मा को अकर्त्ता मानने का दुष्परिणाम -

पुरिसित्थियाहिलासी इत्थीकम्मं च पुरिसमहिलसदि ।
एसा आयरियपरंपरागदा एरिसी दु सुदी ॥१०-२९-३३६

तम्हा ण को वि जीवो अवभयारी दु तुम्हमुवदेसे ।
जम्हा कम्म चेव हि कम्म अहिलसदि ज भणिदं ॥१०-३०-३३७

जम्हा घादेदि पर परेण घादिज्जदे य सा पयडी ।
एदेणत्थेण दु किर भण्णदि परघादणामे त्ति ॥१०-३१-३३८

तम्हा ण को वि जीवो वघादगो अत्थि तुम्ह उवदेसे ।
जम्हा कम्म चेव हि कम्मं घादेदि ज भणिद ॥१०-३२-३३९

सान्वय अर्थ - (पुरिसित्थियाहिलासी) पुरुष वेदकर्म स्त्री की अभिलाषा करता है (च) और (इत्थीकम्म) स्त्रीवेदकर्म (पुग्सिमहिलसदि) पुरुष की अभिलाषा करता है (एमा आयरियपरपगगदा) यह आचार्य परम्परा से आई हुई (एरिमी दु सुदी) ऐसी श्रुति है (तम्हा) इस मान्यतानुसार (तुम्हमुवदेमे दु) तुम्हारे उपदेश - मत मे (को वि जीवो) कोई भी जीव (अवभयागी) अब्रह्मचारी (ण) नही है (जम्हा) क्योंकि जो (पग घादेदि) दूसरे को मारता है (य) और (परेण घादिज्जदे) दूसरे के द्वारा मारा जाता है (सा पयडी) वह भी कर्म है (एदेणत्थेण दु किर) इसी अर्थ मे (परघादणामे त्ति भण्णदि) परघात नामकर्म कहा जाता है (तम्हा) इसलिए (तुम्ह उवदेसे) तुम्हारे उपदेश - मत मे (को वि जीवो) कोई जीव (वघादगो) उपघात करने वाला (ण अत्थि) नही है (जम्हा) क्योकि (कम्म चेव हि) कर्म ही (कम्म घादेदि) कर्म को मारता है (ज भणिद) यह कहा है।

अर्थ - (पूर्वोक्त मतवाले यह भी मानते हैं कि) - "पुरुष वेदकर्म स्त्री की अभिलाषा करता है, आचार्य-परम्परा से आई हुई ऐसी श्रुति है; इसलिए तुम्हारे मत में कोई भी जीव अब्रह्मचारी नही है।

क्योंकि जो दूसरे को मारता है और दूसरे के द्वारा मारा जाता है, वह भी कर्म है। इसी अर्थ में परघात नामकर्म कहा जाता है; इसलिए तुम्हारे मत में कोई जीव उपघात करने वाला नहीं है, क्योंकि कर्म ही कर्म को मारता है, यह कहा है।"

आत्मा को अकर्त्ता मानने वाले श्रमण नही है -

एवं संखुवदेसं जे दु परूविंति एरिसं समणा ।
तेसि पयडी कुव्वदि अप्पा य अकारगा सव्वे ॥१०-३३-३४०

सान्वय अर्थ - (एव दु) **इस प्रकार** (एरिस सखुवदेस) **ऐसा साख्यमत का उपदेश** (जे समणा) **जो श्रमण-श्रमणाभास** (परुविति) **करते है** (तेसि) **उनके मत मे** (पयडी) **प्रकृति ही** (कुव्वदि) **करती है** (य) **और** (सव्वे अप्पा) **सब आत्मा** (अकारगा) **अकारक है - ऐसा सिद्ध होता है।**

अर्थ - (आचार्यदेव कहते है कि) - इस प्रकार साख्यमत का ऐसा उपदेश जो श्रमण (श्रमणाभास) करते है, उनके मत मे प्रकृति ही करती है और सब आत्मा अकारक है (ऐसा सिद्ध होता है)।

अपेक्षा-भेद से आत्मा कर्त्ता और अकर्त्ता है -

अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणदि ।
एसो मिच्छसहावो तुम्ह एवं भणंतस्स ॥१०-३४-३४१

अप्पा णिच्चासंखेज्जपदेसो देसिदो दु समयम्हि ।
ण वि सो सक्कदि तत्तो हीणो अहियो व कादुं जे ॥१०-३५-३४२

जीवस्स जीवरूव वित्थरदो जाण लोगमित्त हि ।
तत्तो सो कि हीणो अहियो य कद भणसि दव्वं ॥१०-३६-३४३

अह जाणगो दु भावो णाणसहावेण अत्थि दे दि मदं ।
तम्हा ण वि अप्पा अप्पय तु समयप्पणो कुणदि ॥१०-३७-३४४

सान्वय अर्थ - (अहवा) अथवा (मण्णसि) ऐसा मानो कि (मज्झ अप्पा) मेरा आत्मा (अप्पणो अप्पाण) अपने द्रव्यरूप आत्मा को (कुणदि) करता है (एव भणतस्स तुम्ह) ऐसा कहने वाले तेरा (एसो मिच्छसहावो) यह मिथ्यात्व भाव है - क्योंकि (समयम्हि दु) परमागम मे (अप्पा) आत्मा को (णिच्चास-खेज्जपदेसो) नित्य और असख्यात प्रदेशी (देसिदो) कहा गया है (जे सो) वह आत्मा (तत्तो हीणो व अहियो) उससे हीन अथवा अधिक (कादु ण वि सक्कदि) नही किया जा सकता (वित्थरदो) और विस्तार की अपेक्षा (जीवस्स जीवरूव) जीव का जीवरूप (हि) निश्चय से (लोगमित्त) लोकमात्र (जाण) जानो (तत्तो) उससे (सो) आत्मा (कि हीणो अहियो य) क्या हीन अथवा अधिक होता है (भणसि) जो तू कहता है कि आत्मा ने (दव्व कद) द्रव्यरूप आत्मा को किया (अह) अथवा (जाणगो दु भावो) ज्ञायक भाव तो (णाणसहावेण) ज्ञानस्वभाव से (अत्थि) स्थित है (दे दि मद) अगर तेरा ऐसा मत है (तम्हा) तो इससे भी (अप्पा सय) आत्मा स्वय (अप्पणो अप्पय तु) अपने आत्मा को (ण कुणदि) नही करता - यह सिद्ध होता है।

अर्थ - अथवा (कर्तृत्व का पक्ष सिद्ध करने के लिए) ऐसा मानो कि मेरा आत्मा अपने द्रव्यरूप आत्मा को करता है। ऐसा कहने वाले तेरा यह मिथ्यात्व भाव है, क्योंकि परमागम मे आत्मा को नित्य और असख्यात प्रदेशी कहा गया है। आत्मा उससे हीन या अधिक नही किया जा सकता। विस्तार की अपेक्षा जीव का जीवरूप निश्चय से लोकमात्र जानो। आत्मा उससे क्या हीन अथवा अधिक होता है जो तू कहता है कि आत्मा ने द्रव्यरूप आत्मा को किया, अथवा अगर तेरा ऐसा मत है कि ज्ञायक भाव तो ज्ञानस्वभाव से स्थित है तो इससे भी आत्मा स्वय अपने आत्मा को नही करता (यह सिद्ध होता है)।

वस्तु नित्यानित्यात्मक है -

केहिचि दु पज्जयेहिं विणस्सदे णेव चि दु जीवो ।
जम्हा तम्हा कुव्वदि सो वा अण्णो व णेयंतो ॥१०-३८-३४५

केहिचि दु पज्जयेहि विणस्सदे णेव केहिचि दु जीवो ।
जम्हा तम्हा वेददि सो वा अण्णो व णेयंतो ॥१०-३९-३४६

जो चेव कुणदि सो चेव[1] वेदगो जस्स एस सिद्धतो ।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥१०-४०-३४७

अण्णो करेदि अण्णो परिभुजदि जस्स एस सिद्धतो ।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥१०-४१-३४८

सान्वय अर्थ - (जम्हा) क्योंकि (जीवो) जीव (केहिचि दु पज्जयेहि) कितनी ही पर्यायो से (विणस्मदे) नष्ट होता है (केहिचि दु) और कितनी ही पर्यायो से (णेव) नष्ट नही होता (तम्हा) इसलिए (सो वा कुव्वदि) जो भोगता है, वही करता है (व अण्णो) या अन्य करता है - ऐसा (णेयतो) एकान्त नही है (जम्हा) क्योकि (जीवो) जीव (केहिचि दु पज्जयेहि) कितनी ही पर्यायो से (विणम्मदे) नष्ट होता है (केहिचि दु) कितनी ही पर्यायो से (णेव) नष्ट नही होता (तम्हा) इसलिए (मो वा वेददि) जो करता है, वही भोगता है (व अण्णो) अथवा अन्य भोगता है - ऐसा (णेयतो) एकान्त नही है (जो चेव कुणदि) जो जीव करता है (मो चेव वेदगो) वही भोगता है (जस्म) जिसका (एम सिद्धतो) यह सिद्धान्त है (मो जीवो) वह जीव (मिच्छादिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (अणारिहदो) आर्हत मत का न मानने वाला (णादव्वो) जानना चाहिये (अण्णो करेदि) कोई अन्य करता है (अण्णो परिभुजदि) कोई अन्य भोगता है (जम्स) जिसका (एस मिद्धतो) ऐसा सिद्धान्त है (मो जीवो) वह

[1] 'जो चेव कुणदि मो चिय ण वेदए' इति पाठान्तरम् ।

जीव (मिच्छादिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (अणारिहदो) **आर्हत मत का न मा॰ वाला (णादव्वो) जानना चाहिये।**

अर्थ - क्योकि जीव कितनी ही पर्यायों से नष्ट होता है और कितनी ही पर्यायो नष्ट नही होता इसलिए (जो भोगता है), वही करता है या अन्य करता है, ऐ एकान्त नही है, क्योकि जीव कितनी ही पर्यायों से नष्ट होता है और कितनी पर्यायों से नष्ट नही होता, इसलिए (जो करता है), वही भोगता है अथवा अ भोगता है, ऐसा एकान्त नहीं है।

जो जीव करता है, वही भोगता है, जिसका यह सिद्धान्त है, वह जं मिथ्यादृष्टि, आर्हत मत का न मानने वाला जानना चाहिये। कोई अन्य करता कोई अन्य भोगता है, जिसका ऐसा सिद्धान्त है, वह जीव मिथ्यादृष्टि, आर्हत ॰ का न मानने वाला जानना चाहिऐ।

जीव परिणमन करता हुआ भी अन्य द्रव्यरूप नहीं होता -

जह सिप्पिओ दु कम्मं कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि ।
तह जीवो वि य कम्मं कुव्वदि ण य तम्मओ होदि ।।१०-४२-३४९

जह सिप्पिउ करणेहि कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि ।
तह जीवो करणेहि कुव्वदि ण य तम्मओ होदि ।।१०-४३-३५०

जह सिप्पिउ करणाणि य गिण्हदि ण य सो दु तम्मओ होदि ।
तह जीवो करणाणि य गिण्हदि ण य तम्मओ होदि ।।१०-४४-३५१

जह सिप्पिउ कम्मफल भुजदि ण य सो दु तम्मओ होदि ।
तह जीवो कम्मफलं भुजदि ण य तम्मओ होदि ।।१०-४५-३५२

सान्वय अर्थ - (जह) जैसे (सिप्पिओ दु) शिल्पी-स्वर्णकार आदि (कम्म) कुण्डल आदि कर्म (कुव्वदि) करता है (सो दु) परन्तु वह (तम्मओ) तन्मय (ण य होदि) नही होता (तह) उसी प्रकार (जीवो वि य) जीव भी (कम्म) ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म को (कुव्वदि) करता है - किन्तु (तम्मओ) तन्मय (ण य होदि) नही होता (जह) जैसे (सिप्पिउ) शिल्पी-स्वर्णकार आदि (करणेहि) हथौड़ा आदि उपकरणों से (कुव्वदि) कुण्डल आदि बनाता है (सो दु) किन्तु वह (तम्मओ) तन्मय (ण य होदि) नही होता (तह) उसी प्रकार (जीवो) जीव (करणेहि) मन-वचन-कायरूप करणो के द्वारा (कुव्वदि) ज्ञानावरणादि कर्म करता है (तम्मओ) किन्तु तन्मय (ण य होदि) नही होता (जह) जिस प्रकार (सिप्पिउ) स्वर्णकार आदि शिल्पी (करणाणि य) उपकरणो को (गिण्हदि) ग्रहण करता है (सो दु) किन्तु वह (तम्मओ) तन्मय (ण य होदि) नही होता (तह) उसी प्रकार (जीवो) जीव (करणाणि य) मन-वचन-कायरूप करणो को (गिण्हदि) ग्रहण करता है (तम्मओ) किन्तु तन्मय (ण य होदि) नही होता (जह) जैसे (सिप्पिउ) स्वर्णकार आदि शिल्पी (कम्मफल) कुण्डलादि कर्मों के फल को (भुजदि) भोगता है (सो दु) किन्तु वह (तम्मओ) तन्मय (ण य होदि) नही होता (तह) उसी प्रकार (जीवो) जीव

(कम्मफलं) कर्म के सुख-दुःखरुप फल को (भुंजदि) भोगता है (तम्मओ) किन्तु उनसे तन्मय (ण य होदि) नहीं होता।

अर्थ - जैसे स्वर्णकार आदि शिल्पी कुण्डल आदि कर्म करता है, परन्तु वह उनसे तन्मय नहीं होता। उसी प्रकार जीव भी ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म को करता है, किन्तु वह उनसे तन्मय नहीं होता।

जैसे शिल्पी (स्वर्णकार आदि) हथौडा आदि उपकरणों से कुण्डल आदि बनाता है, किंतु वह उनसे तन्मय नहीं होता। उसी प्रकार जीव भी मन-वचन-कायरुप करणो के द्वारा ज्ञानावरणादि कर्म करता है; किंतु वह उनसे तन्मय नहीं होता

जैसे स्वर्णकार आदि शिल्पी उपकरणों को ग्रहण करता है, किन्तु वह उनसे तन्मय नहीं होता, उसी प्रकार जीव भी मन-वचन-कायरूप करणों को ग्रहण करता है; कितु वह उनसे तन्मय नही होता

जैसे स्वर्णकार आदि शिल्पी कुण्डलादि कर्मों के फल को भोगता है; कितु वह उस फल से तन्मय नहीं होता, उसी प्रकार जीव भी कर्म के सुख-दु खरूप फल को भोगता है, किन्तु वह उस फल से तन्मय नही होता।

सूचनिका गाथा -

एवं ववहारस्स दु वत्तव्वं दंसणं समासेण ।
सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकदं तु जं होदि ॥१०-३६-३५३

सान्वय अर्थ - (एव दु) इस प्रकार तो (ववहारस्स दसण) व्यवहार का मत (समासेण) संक्षेप में (वत्तव्व) कहने योग्य है - आगे (णिच्छयस्स) निश्चय-नय का (वयण) वचन (सुणु) सुनो (ज तु) जो (परिणामकद) अपने परिणामों के द्वारा किया हुआ (होदि) होता है।

अर्थ - इस प्रकार तो व्यवहार नय का मत सक्षेप में कहने योग्य है। आगे निश्चयनय का वचन सुनो, जो अपने परिणामों के द्वारा किया हुआ होता है।

जीव अपने भावकर्मों में तन्मय होने से दुखी होता है -

जह सिप्पिओ दु चेट्ठं कुव्वदि हवदि य तहा अणण्णो सो ।
तह जीवो वि य कम्मं कुव्वदि हवदि य अणण्णो सो ।।१०-४७-३५४

जह चेट्ठ कुव्वंतो दु सिप्पिओ णिच्चदुक्खिदो होदि ।
तत्तो सिया अणण्णो तह चेट्ठतो दुही जीवो ।।१०-४८-३५५

सान्वय अर्थ - (जह) **जैसे** (सिप्पिओ दु) **स्वर्णकार आदि शिल्पी** (चेट्ठ) **अपने परिणामरूप चेष्टा** (कुव्वदि) **करता है** (तहा य) **तथा** (सो) **वह** (अणण्णो हवदि) **उस चेष्टा से तन्मय हो जाता है** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो वि य) **जीव भी** (कम्म) **रागादि भाव कर्म** (कुव्वदि) **करता है** (य) **और** (सो) **वह** (अणण्णो) **उस भावकर्म से अनन्य-तन्मय** (हवदि) **हो जाता है** (जह) **जैसे** (सिप्पिओ दु) **स्वर्णकार आदि शिल्पी** (चेट्ठ कुव्वतो) **चेष्टा करता हुआ** (णिच्चदुक्खिदो) **नित्य दुखी** (होदि) **होता है** (तत्तो) **और उस दु ख से** (अणण्णो) **अनन्य** (सिया) **होता है** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो) **जीव** (चेट्ठतो) **हर्ष-विषादरूप चेष्टा करता हुआ** (दुही) **दुखी होता है।**

अर्थ - जैसे स्वर्णकारादि शिल्पी (कुण्डलादि ऐसे बनाऊँगा, इस प्रकार मन मे) चेष्टा करता है तथा उस चेष्टा मे वह तन्मय हो जाता है। उसी प्रकार जीव भी रागादि भावकर्म करता है और वह उस भावकर्म से तन्मय हो जाता है। जैसे स्वर्णकारादि शिल्पी चेष्टा करता हुआ नित्य दुखी होता है और उस दु ख मे अनन्य (तन्मय) होता है, उसी प्रकार जीव हर्ष-विषाद रुप चेष्टा करता हुआ दुखी होता है (और उस दु ख मे वह अनन्य है)।

जीव के ज्ञान-दर्शन-चारित्र पर्यायों का निश्चय स्वरूप -

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।
तह जाणगो दु ण परस्स जाणगो जाणगो सो दु ।।१०-४९-३५६

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।
तह पस्सगो दु ण परस्स पस्सगो पस्सगो सो दु ।।१०-५०-३५७

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।
तह सजदो दु ण परस्स संजदो संजदो सो दु ।।१०-५१-३५८

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।
तह दसण दु ण परस्स दसण दसण तं तु ।।१०-५२-३५९

सान्वय अर्थ - (जह) जैसे (सेडिया दु) सफेदी (परस्स) पर की - दीवाल आदि की (ण) नही है (सेडिया) सफेदी (सा य सेडिया होदि) वह तो सफेदी ही है (तह) उसी प्रकार (जाणगो दु) ज्ञायक-आत्मा (परस्स ण) पर का नही है (जाणगो) ज्ञायक (सो दु) वह तो (जाणगो) ज्ञायक ही है (जह) जैसे (सेडिया दु) सफेदी (परस्स ण) पर की - दीवाल आदि की नही है (सेडिया) सफेदी (सा य सेडिया होदि) वह तो सफेदी ही है (तह) उसी प्रकार (पस्सगो दु) देखने वाला - आत्मा (परस्स ण) पर का नही है (पस्सगो) दृष्टा (सो दु पस्सगो) वह तो दृष्टा ही है (जह) जैसे (सेडिया) सफेदी (दु) तो (परस्स) पर की - दीवाल आदि की नही है (सेडिया) सफेदी (सा य सेडिया होदि) वह तो सफेदी ही है (तह) उसी प्रकार (सजदो दु) सयत - आत्मा (परस्स ण) पर का नही है (सजदो) संयत (सो दु सजदो) वह तो सयत ही है (जह) जैसे (सेडिया दु) सफेदी (परस्स ण) पर - दीवाल आदि की नही है (सेडिया) सफेदी (सा य सेडिया होदि) वह तो सफेदी ही है (तह) उसी प्रकार (दसण दु) सम्यग्दर्शन (परस्स ण) पर का नहीं है (दसण) सम्यग्दर्शन (त तु दसण) वह तो सम्यग्दर्शन ही है।

अर्थ - जैसी सफेदी खड़िया पर की (दीवाल आदि रूप) नहीं है, सफेदी वह तो सफेदी ही है (वह अपने स्वरूप में ही रहती है), उसी प्रकार ज्ञायक (आत्मा) पर का (ज्ञेयरूप) नहीं है। ज्ञायक वह तो ज्ञायक ही है (पर को जानता हुआ भी अपने स्वरूप में रहता है)। जैसे सफेदी-खड़िया पर की नही है, सफेदी वह तो सफेदी ही है; उसी प्रकार दर्शक (आत्मा) पर का नही है, दर्शक (दृष्टा) वह तो दर्शक ही है। जैसे सफेदी-खड़िया पर की नही है। सफेदी वह तो सफेदी ही है, उसी प्रकार सयत (आत्मा) पर का (परिग्रहादि रुप) नहीं है। सयत वह तो सयत ही है। जैसे सफेदी-खड़िया पर की (दीवाल आदि रुप) नही है। सफेदी वह तो सफेदी ही है। उसी प्रकार दर्शन (श्रद्धान) पर का नही है। दर्शन वह तो दर्शन ही है।

सूचिका गाथा -

एवं तु णिच्छयणयस्स भासिदं णाणदंसणचरित्ते ।
सुणु ववहारणयस्स य वत्तव्वं से समासेण ।।१०-५३-३६०

सान्वय अर्थ - (एवं तु) इस प्रकार (णाणदसणचरित्ते) ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय में (णिच्छयणयस्स) निश्चय नय का (भासिद) कथन हुआ (य) और - अब (से) उसके विषय में (समासेण) संक्षेप मे (ववहारणयस्स वत्तव्व) व्यवहार नय का कथन (सुणु) सुनो।

अर्थ - इस प्रकार ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय मे निश्चय नय का कथन हुआ, और अब उसके विषय मे सक्षेप में व्यवहार नय का कथन सुनो।

सम्यग्दृष्टि स्वभाव से देखता, जानता और त्यागता है -

जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं जाणदि णादा वि सएण भावेण ।।१०-५४-३६१

जह परदव्व सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्व पस्सदि जीवो वि सएण भावेण ।।१०-५५-३६२

जह परदव्व सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्व विजहदि णादा वि सएण भावेण ।।१०-५६-६६३

जह परदव्व सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं सद्दहदि सम्मादिट्ठी सहावेण ।।१०-५७-३६४

सान्वय अर्थ - (जह) जैसे (सेडिया) **सफेदी-खड़िया** (अप्पणो सहावेण हु) **अपने स्वभाव से ही** (परदव्व) **परद्रव्य - दीवाल आदि को** (सेडिया) **सफेद करती है** (तह) **उसी प्रकार** (णादा वि) **ज्ञाता आत्मा भी** (सएण भावेण) **अपने स्वभाव से** (परदव्व) **परद्रव्य को** (जाणदि) **जानता है** (जह) **जैसे** (सेडिया) **सफेदी - खड़िया** (अप्पणो सहावेण हु) **अपने स्वभाव से ही** (परदव्व) **परद्रव्य - दीवाल आदि को** (सेडिया) **सफेद करती है** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो वि) **जीव भी** (सएण भावेण) **अपने स्वभाव से** (परदव्व) **परद्रव्य को** (पस्सदि) **देखता है** (जह) **जैसे** (सेडिया) **सफेदी - खड़िया** (अप्पणो सहावेण हु) **अपने स्वभाव से ही** (परदव्व) **परद्रव्य - दीवाल आदि को** (सेडिया) **सफेद करती है** (तह) **उसी प्रकार** (णादा वि) **ज्ञाता आत्मा भी** (सएण भावेण) **अपने स्वभाव से** (परदव्व) **परद्रव्य को** (विजहदि) **त्यागता है** (जह) **जैसे** (सेडिया) **सफेदी - खड़िया** (अप्पणो सहावेण हु) **अपने स्वभाव से ही** (परदव्व) **परद्रव्य - दीवाल आदि को** (सेडिया) **सफेद करती है** (तह) **उसी प्रकार** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (सहावेण) **अपने स्वभाव से** (परदव्व) **परद्रव्य का** (सद्दहदि) **श्रद्धान करता है।**

अर्थ - जैसे सफेदी - खड़िया अपने स्वभाव से ही परद्रव्य (दीवाल आदि) को सफेद करती है, उसी प्रकार ज्ञाता आत्मा भी अपने स्वभाव से परद्रव्य को जानता है।

जैसे सफेदी - खडिया अपने स्वभाव से ही परद्रव्य (दीवाल आदि) को सफेद करती है, उसी प्रकार जीव भी अपने स्वभाव से परद्रव्य को देखता है

जैसे सफेदी - खडिया अपने स्वभाव से ही परद्रव्य (दीवाल आदि) को सफेद करती है, उसी प्रकार ज्ञाता आत्मा भी अपने स्वभाव से परद्रव्य को त्यागता है

जैसे सफेदी - खडिया अपने स्वभाव से ही परद्रव्य (दीवाल आदि) को सफेद करती है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि अपने स्वभाव से परद्रव्य का श्रद्धान करता है।

जीव की अन्य पर्यायों का व्यवहार स्वरूप -

एव ववहारस्स दु विणिच्छओ णाणदसणचरित्ते ।
भणिदो अण्णेसु वि पज्जयेसु एमेव णादव्वो ।।१०-५८-३६५

सान्वय अर्थ - (एवं दु) इस प्रकार (णाणदसणचरित्ते) ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय मे (ववहारस्स) व्यवहार नय का (विणिच्छओ) निर्णय (भणिदो) कहा है (अण्णेसु पज्जयेसु वि) अन्य पर्यायो मे भी (एमेव णादव्वो) इसी प्रकार जानना चाहिये।

अर्थ - इस प्रकार ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय में व्यवहार नय का निर्णय कहा है। अन्य पर्यायो मे भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

आत्मा के गुण परद्रव्य में नही है -

दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे विसए ।
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तेसु विसएसु ।।१०-५९-३६६

दंसणणाणचरित्त किंचि वि णत्थि दु अचेदणे कम्मे ।
तम्हा कि घादयदे चेदयिदा तम्मि कम्मम्मि ।।१०-६०-३६७

दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे काये ।
तम्हा कि घादयदे चेदयिदा तेसु कायेसु ।।१०-६१-३६८

सान्वय अर्थ - (दसणणाणचरित्त) **दर्शन, ज्ञान और चारित्र** (अचेदणे विसए दु) **अचेतन विषय मे** (किचि वि) **किचिन्मात्र भी** (णत्थि) **नही है** (तम्हा) **इसलिए** (चेदयिदा) **आत्मा** (तेसु विसएसु) **उन विषयो मे** (कि घादयदे) **क्या घात करेगा ?**

(दसणणाणचरित्त) **दर्शन, ज्ञान और चारित्र** (अचेदणे कम्मे दु) **अचेतन कर्म मे** (किचि वि) **किचिन्मात्र भी** (णत्थि) **नही है** (तम्हा) **इसलिए** (चेदयिदा) **आत्मा** (तम्मि कम्मम्मि) **उस कर्म मे** (कि घादयदे) **क्या घात करेगा ?**

(दसणणाणचरित्त) **दर्शन, ज्ञान और चारित्र** (अचेदणे काये दु) **अचेतन काय मे** (किचि वि) **किचिन्मात्र भी** (णत्थि) **नही हैं** (तम्हा) **इसलिए** (चेदयिदा) **आत्मा** (तेसु कायेसु) **उन कायो मे** (कि घादयदे) **क्या घात करेगा ?**

अर्थ - दर्शन, ज्ञान और चारित्र अचेतन विषय मे किचिन्मात्र भी नही है, इसलिए आत्मा उन विषयों मे क्या घात करेगा ?

दर्शन, ज्ञान और चारित्र अचेतन कर्म मे किचिन्मात्र भी नही है, इसलिए आत्मा उस कर्म में क्या घात करेगा ?

दर्शन, ज्ञान और चारित्र अचेतन काय मे किचिन्मात्र भी नही है, इसलिए आत्मा उन कायों मे क्या घात करेगा ?

ज्ञानादि का घात होने पर पुद्गल का घात नहीं होता -

णाणस्स दंसणस्स य भणिदो घादो तहा चरित्तस्स ।
ण वि तम्हि को वि पोंग्गलदव्वे घादो दु णिद्दिट्ठो ।।१०-६२-३६९

सान्वय अर्थ - (णाणस्स) **ज्ञान का** (दसणस्स) **दर्शन का** (तहा य) **और** (चरित्तस्स) **चारित्र का** (घादो) **घात** (भणिदो) **कहा है** (तम्हि पोंग्गलदव्वे) **उस पुद्गल द्रव्य मे** (दु) **तो** (को वि घादो) **कोई घात** (ण वि णिद्दिट्ठो) **नही कहा।**

अर्थ - ज्ञान, दर्शन और चारित्र का घात बताया है, (किन्तु) उस पुद्गल द्रव्य मे कोई घात नहीं कहा।

सम्यग्दृष्टि को विषयों में राग नही है -

जीवस्स जे गुणा केई णत्थि ते खलु परेसु दव्वेसु ।
तम्हा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसएसु ॥१०-६३-३७०

सान्वय अर्थ - (जीवस्स) जीव के (जे केई) जो कोई (गुणा) गुण हैं (ते खलु) वे वास्तव में (परेसु दव्वेसु) पर द्रव्यों में (णत्थि) नहीं है (तम्हा) इसलिए (सम्मादिट्ठिस्स) सम्यग्दृष्टि को (विसएसु) विषयों में (रागो दु) राग (णत्थि) नही है।

अर्थ - जीव के जो कोई गुण है, वे वास्तव में परद्रव्यों में नही है, इसलिए सम्यग्दृष्टि को विषयो में राग नही है।

जीव के रागादि परिणाम परद्रव्य मे नहीं है -

रागो दोसो मोहो जीवस्स दु ते अणण्णपरिणामा ।
एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादी ।।१०-६४-३७१

सान्वय अर्थ - (रागो) राग (दोसो) द्वेष (मोहो) मोह है (ते) वे (जीवस्स दु) जीव के ही (अणण्णपरिणामा) अनन्य परिणाम हैं (एदेण कारणेण दु) इस कारण से ही (रागादी) राग आदि (सद्दादिसु) शब्द आदि मे (णत्थि) नही है।

अर्थ - राग, द्वेष, मोह वे जीव के अनन्य परिणाम है। इस कारण राग आदि (परिणाम) शब्द आदि मे नही है।

परद्रव्य जीव मे रागादि उत्पन्न नही करता -

अण्णदवियेण अण्णद वियस्स णो कीरदे गुणुप्पादो ।
तम्हा दु सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावेण ।।१०-६५-३७२

सान्वय अर्थ - (अण्णदवियेण) **अन्य द्रव्य के द्वारा** (अण्णद वियस्स) **अन्य द्रव्य के** (गुणुप्पादो) **गुणो की उत्पत्ति** (णो कीरदे) **नहीं की जा सकती** (तम्हा दु) **इसलिए** (सव्वदव्वा) **सब द्रव्य** (सहावेण) **अपने-अपने स्वभाव से** (उप्पज्जते) **उत्पन्न होते है।**

अर्थ - अन्य द्रव्य के द्वारा अन्य द्रव्य के गुणों की उत्पत्ति नही की जा सकती; इसलिए (यही कारण है कि) सब द्रव्य अपने-अपने स्वभाव से उत्पन्न होते है।

पुद्गल शब्द को सुनकर रोष-तोष करना अज्ञान है -

णिदिद संथुद वयणाणि पोंग्गला परिणमंति बहुगाणि ।
ताणि सुणिदूण रूसदि तूसदि य पुणो अहं भणिदो ।।१०-६६-३७३

पोंग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणदं तस्स जदि गुणो अण्णो ।
तम्हा ण तुमं भणिदो किंचि वि किं रूससि अबुद्धो ।।१०-६७-३७४

सान्वय अर्थ - (पोंग्गला) **पुद्गल** (बहुगाणि) **अनेक प्रकार के** (णिदिद सथुद वयणाणि) **निन्दा और स्तुति के वचनो के रूप में** (परिणमति) **परिणमित होते हैं** (ताणि) **उन वचनों को** (सुणिदूण) **सुनकर** (पुणो) **फिर** (अह भणिदो) **मुझको कहा है - यह मानकर** (रूसदि तूसदि य) **रूष्ट और तुष्ट होता है** (पोंग्गलदव्व) **पुद्गलद्रव्य** (सद्दत्तपरिणद) **शब्दरूप परिणमित हुआ है** (तस्स गुणो) **उसका गुण** (जदि) **यदि** (अण्णो) **तुझसे अन्य है** (तम्हा) **तो फिर** (अबुद्धो) **हे अज्ञानी** (तुम) **तुझको** (किचि वि) **कुछ भी** (ण भणिदो) **नही कहा है - फिर** (कि रूससि) **तू क्यो रूष्ट होता है ?**

अर्थ - पुद्गल अनेक प्रकार के निदा और स्तुति के वचनो के रूप मे परिणमित होते है। उन वचनो को सुनकर 'मुझको कहा है' यह मानकर तू रूष्ट और तुष्ट होता है

पुद्गलद्रव्य शब्दरूप परिणमित हुआ है। उसका गुण यदि तुझसे अन्य है, तो फिर हे अज्ञानी ! तुझको कुछ भी नही कहा है, फिर तू क्यों रूष्ट होता है ?

आत्मा अपने स्वरूप से शब्द को सुनता है -

असुहो सुहो व सद्दो ण तं भणदि सुणसु मं ति सो चेव ।
ण य एदि विणिग्गहिदुं सोद विसय मागदं सद्दं ।।१०-६८-३७५

सान्वय अर्थ - (असुहो सुहो व) अशुभ या शुभ (सद्दो) शब्द (त) तुझे (तिण भणदि) यह नही कहा है कि (म सुणसु) तू मुझको सुन (सो चेव) और वह आत्मा भी (सोदविसयमागद) श्रोत्र इन्द्रिय के विषय में आये हुए (सद्द) शब्द को (विणिग्गहिदु) ग्रहण करने के लिए (ण य एदि) नही जाता।

अर्थ - अशुभ या शुभ शब्द तुझे नहीं कहता है कि 'तू मुझ को सुन'। वह आत्मा भी श्रोत्र इन्द्रिय के विषय में आये हुए शब्द को ग्रहण करने के लिए नहीं जाता।

आत्मा अपने स्वरुप से रुप को देखता है -

असुहं सुहं व रुव ण त भणदि पेच्छ मं ति सोचेव ।
ण य एदि विणिग्गहिदु चक्खुविसयमागदं रुव ॥१०-६९-३७६

सान्वय अर्थ - (असुह सुह व) **अशुभ या शुभ** (रुव) **रुप** (त) **तुझको** (ति ण भणदि) **यह नही कहता कि** (म पेच्छ) **तू मुझको देख** (सो चेव) **और आत्मा भी** (चक्खुविसयमागद) **चक्षु इन्द्रिय के विषय मे आये हुए** (रुव) **रुप को** (विणिग्गहिदु) **ग्रहण करने के लिए** (ण य एदि) **नही जाता।**

अर्थ - अशुभ या शुभ रुप तुझको यह नही कहता कि 'तू मुझको देख' और आत्मा भी चक्षु इन्द्रिय के विषय मे आये हुए रुप को ग्रहण करने के लिए नही जाता।

आत्मा अपने स्वरूप से गन्ध को सूँघता है -

असुहो सुहो व गंधो ण तं भणदि जिग्घ मं ति सो चेव ।
ण य एदि विणिग्गहिदुं घाणविसयमागदं गंधं ।।१०-७०-३७७

सान्वय अर्थ - (असुहो सुहो व) **अशुभ या शुभ** (गधो) **गन्ध** (त) **तुझे** (ति ण भणदि) **यह नही कहता कि** (म) **मुझे** (जिग्घ) **तू सूँघ** (सो चेव) **और आत्मा भी** (घाणविसयमागद) **घ्राणेन्द्रिय के विषय में आये हुए** (गध) **गन्ध को** (विणिग्गहिदु) **ग्रहण करने के लिए** (ण य एदि) **नही जाता।**

अर्थ - अशुभ या शुभ गन्ध तुझको यह नही कहता कि 'तू मुझे सूँघ' और आत्मा भी घ्राणेन्द्रिय के विषय में आये हुए गन्ध को ग्रहण करने के लिए नही जाता।

आत्मा अपने स्वरूप से रस को चखता है -

असुहो सुहो व रसो ण तं भणदि रसय मं ति सो चेव ।
ण य एदि विणिग्गहिदुं रसणविसयमागदं तु रसं ।।१०-७१-३७८

सान्वय अर्थ - (असुहो सुहो व) अशुभ या शुभ (रसो) रस (त) तुझे (ति ण भणदि) यह नही कहता कि (म) मुझे (रसय) तू चख (सो चेव) और आत्मा भी (रसणविसयमागद तु रस) रसना इन्द्रिय के विषय में आये हुए रस को (विणिग्गहिदुं) ग्रहण करने के लिए (ण य एदि) नहीं जाता।

अर्थ - अशुभ या शुभ रस तुझे यह नही कहता कि तू मुझे चख और आत्मा भी रसना इन्द्रिय के विषय मे आये हुए रस को ग्रहण करने के लिए नहीं जाता।

आत्मा अपने स्वरूप से स्पर्श करता है -

असुहो सुहो व फासो ण तं भणदि फास मं ति सो चेव ।
ण य एदि विणिग्गहिदुं कायविसयमागद फासं ।।१०-७२-३७९

सान्वय अर्थ - (असुहो सुहो व) **अशुभ या शुभ** (फासो) **स्पर्श** (तं) **तुझे** (ति ण भणदि) **यह नहीं कहता कि** (म) **मुझे** (फास) **तू स्पर्श कर** (सो चेव) **और आत्मा भी** (कायविसयमागद) **स्पर्शन इन्द्रिय के विषय में आये हुए** (फास) **स्पर्श को** (विणिग्गहिदुं) **ग्रहण करने के लिए** (ण य एदि) **नहीं जाता।**

अर्थ - अशुभ या शुभ स्पर्श मुझे यह नही कहता कि 'तू मुझे स्पर्श कर' और आत्मा भी स्पर्शन इन्द्रिय के विषय में आये हुए स्पर्श को ग्रहण करने के लिए नही जाता।

आत्मा अपने स्वरूप से गुण को जानता है -

असुहो सुहो व गुणो ण तं भणदि बुज्झ मं ति सो चेव ।
ण य एदि विणिग्गहिदुं बुद्धिविसयमागदं तु गुणं ।।१०-७३-३८०

सान्वय अर्थ - (असुहो सुहो व) **अशुभ या शुभ** (गुणो) **गुण** (त) **तुझे** (ति ण भणदि) **यह नहीं कहता कि** (म) **मुझको** (बुज्झ) **तू जान** (सो चेव) **और आत्मा भी** (बुद्धिविसयमागद तु गुण) **बुद्धि के विषय में आये हुए गुण को** (विणिग्गहिदु) **ग्रहण करने के लिए** (ण य एदि) **नही जाता।**

अर्थ - अशुभ या शुभ गुण तुझे यह नही कहता कि 'तू मुझे जान' और आत्मा भी बुद्धि के विषय में आये हुए गुण को ग्रहण करने के लिए नही जाता।

आत्मा अपने स्वरूप से द्रव्य को जानता है -

असुहं सुहं व दव्वं ण तं भणदि बुज्झ मं ति सो चेव ।
ण य एदि विणिग्गहिदुं बुद्धिविसयमागद दव्वं ।।१०-७४-३८१

सान्वय अर्थ - (असुह सुह व) **अशुभ या शुभ** (दव्व) **द्रव्य** (त) **तुझे** (ति ण भणदि) **यह नही कहता** (म) **मुझे** (बुज्झ) **तू जान** (सो चेव) **और आत्मा भी** (बुद्धिविसयमागद) **बुद्धि के विषय में आये हुए** (दव्व) **द्रव्य को** (विणिग्गहिदु) **ग्रहण करने के लिए** (ण य एदि) **नहीं जाता।**

अर्थ - अशुभ या शुभ द्रव्य तुझे यह नही कहता कि 'तू मुझे जान' और आत्मा भी बुद्धि के विषय मे आये हुए द्रव्य को ग्रहण करने के लिए नहीं जाता।

पर में स्व बुद्धि का परिणाम -

एव तु जाणिदूण य उवसम णेव गच्छदे मूढो ।
णिग्गहमणा परस्स य सयं च बुद्धि सिवमपत्तो ॥१०-७५-३८२

सान्वय अर्थ - (एव तु) **इस प्रकार** (जाणिदूण य) **जानकर भी** (मूढो) **मूढ जीव** (उवसम) **उपशम - शान्ति को** (णेव गच्छदे) **प्राप्त नही होता** (य) **और** (परस्स) **पर के** (णिग्गहमणा) **ग्रहण करने का मन करता है** (सय च) **उसे स्वयं** (सिव बुद्धि) **कल्याणकारी बुद्धि - सम्यग्ज्ञान** (अपत्तो) **प्राप्त नही हुई।**

अर्थ - इस प्रकार (शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श, परगुण और द्रव्य को) जानकर भी मूढ़जीव उपशम (शान्ति) को प्राप्त नही होता। वह पर के ग्रहण करने का मन करता है और स्वय उसे कल्याणकारी बुद्धि (सम्यग्ज्ञान) की प्राप्ति नही हुई।

निश्चय प्रतिक्रमण का स्वरुप -

कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थर विसेसं ।
तत्तो णियत्तदे अप्पय तु जो सो पडिक्कमणं ।।१०-७६-३८३

सान्वय अर्थ - (पुव्वकय) पूर्व मे किये हुए (अणेयवित्थर विसेस) अनेक विस्तार वाले (ज) जो (सुहासुह) शुभ और अशुभ (कम्म) कर्म है (तत्तो) उनसे (जो तु) जो जीव (अप्पय) अपने को (णियत्तदे) दूर कर लेता है (सो) वह जीव ही (पडिक्कमण) प्रतिक्रमण है।

अर्थ - पूर्व में किये हुए (मूलोत्तर प्रकृति रुप से) अनेक विस्तार वाले जो शुभ और अशुभ कर्म है, उनसे जो जीव अपने को दूर कर लेता है, वह जीव ही प्रतिक्रमण है।

निश्चय प्रत्याख्यान का स्वरूप -

कम्मं जं सुहमसुहं जम्हि य भावम्हि बज्झदि भविस्सं ।
तत्तो णियत्तदे जो सो पच्चक्खाण हवदि चेदा ।।१०-७७-३८४

सान्वय अर्थ - (य) और (भविस्स) भविष्य काल मे (ज) जो (सुहमसुह) शुभाशुभ (कम्म) कर्म (जम्हि भावम्हि) जिस भाव के होने पर (बज्झदि) बँधता है (तत्तो) उस भाव से (जो चेदा) जो आत्मा (णियत्तदे) निवृत्त होता है (सो) वह आत्मा (पच्चकखाण) प्रत्याख्यान (हवदि) होता है।

अर्थ - और भविष्यकाल में जो शुभाशुभ कर्म जिस भाव के होने पर बँधता है, उस भाव से जो आत्मा निवृत्त होता है, वह आत्मा प्रत्याख्यान होता है।

निश्चय आलोचना का स्वरूप -

ज सुहमसुहमुदिण्णं संपडि य अणेयवित्थरविसेसं ।
त दोस जो चेददि सो खलु आलोयण चेदा ।।१०-७८-३८५

सान्वय अर्थ - (सपडि य) **वर्तमान काल में** (उदिण्ण) **उदय मे आये हुए** (ज अणेयवित्थरविसेस) **अनेक विस्तार वाला** (सुहमसुह) **शुभाशुभ कर्म है** (तदोस) **उस दोष को** (जो चेदा) **जो आत्मा** (चेददि) **अनुभव करता है** (सो) **वह आत्मा** (खलु) **वास्तव मे** (आलोयण) **आलोचना है।**

अर्थ - वर्तमान काल मे उदय मे आये हुए (मूलोत्तर प्रकृति के रूप में) अनेक विस्तार वाले जो कर्म है, उस दोष को जो जीव (भेदरूप) अनुभव करता है, वह जीव वास्तव मे आलोचना है।

निश्चय चारित्र का स्वरूप -

णिच्चं पच्चक्खाण कुव्वदि णिच्चं पि जो पडिक्कमदि ।
णिच्चं आलोचेयदि सो हु चरित्तं हवदि चेदा ।।१०-७९-३८६

सान्वय अर्थ - (जो) **जो** (चेदा) **आत्मा** (णिच्च) **हमेशा** (पच्चक्खाण) **प्रत्याख्यान** (कुव्वदि) **करता है** (णिच्च पि) **नित्य ही जो** (पडिक्कमदि) **प्रतिक्रमण करता है** (णिच्च) **नित्य ही** (आलोचेयदि) **आलोचना करता है** (सो) **वह आत्मा** (हु) **निश्चय से** (चरित्त) **चारित्र** (हवदि) **है।**

अर्थ - जो आत्मा नित्य प्रत्याख्यान करता है, नित्य ही जो प्रतिक्रमण करता है, जो नित्य आलोचना करता है, वह आत्मा निश्चय से चारित्र है।

अज्ञानचेतना ही कर्म-बध का कारण है -

वेदतो कम्मफल अप्पाणं जो दु कुणदि कम्मफल ।
सो त पुणो वि बधदि वीय दुक्खस्स अट्ठविहं ।।१०-८०-३८७

वेदतो कम्मफल मये कद जो दु मुणदि कम्मफल ।
सो तं पुणो वि बधदि वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ।।१०-८१-३८८

वेदंतो कम्मफल सुहिदो दुहिदो य हवदि जो चेदा ।
सो त पुणो वि बधदि वीय दुक्खस्स अट्ठविह ।।१०-८२-३८९

सान्वय अर्थ - (कम्मफल) **कर्म के फल का** (वेदतो) **वेदन करता हुआ** (जो दु) **जो आत्मा** (कम्मफल) **कर्म के फल को** (अप्पाण कुणदि) **निजरूप करता है** (मो) **वह** (दुक्खस्म वीय) **दु ख के बीज** (अट्ठविह त) **आठ प्रकार के कर्म को** (पुणो वि) **फिर भी** (बधदि) **बाँधता है** (कम्मफल) **कर्म के फल का** (वेदतो) **वेदन करता हुआ** (जो दु) **जो आत्मा** (कम्मफल) **कर्म का फल** (मये कद) **मैने किया ऐसा** (मुणदि) **मानता है** (सो) **वह** (दुक्खस्स वीय) **दु ख के बीज** (अट्ठविह त) **आठ प्रकार के कर्म को** (पुणो वि) **फिर भी** (बधदि) **बाँधता है** (कम्मफल) **कर्म के फल का** (वेदतो) **वेदन करता हुआ** (जो चेदा) **जो आत्मा** (सुहिदो दुहिदो य) **सुखी और दुखी** (हवदि) **होता है** (मो) **वह** (दुक्खस्म वीय) **दु ख के बीज** (अट्ठविह त) **आठ प्रकार के कर्म को** (पुणो वि) **फिर भी** (बधदि) **बाँधता है।**

अर्थ - कर्म क फल का वेदन करता हुआ जो आत्मा कर्म के फल को निजरूप करता है (मानता है) वह दु ख क बीज आठ प्रकार के कर्म को फिर भी बाँधता है।

कर्म क फल का वेदन करता हुआ जो आत्मा 'कर्म का फल मैने किया' ऐसा मानता है, वह दु ख के बीज आठ प्रकार के कर्म को फिर भी बाँधता है।

कर्म क फल का वेदन करता हुआ जो आत्मा सुखी और दुखी होता है, वह दु ख के बीज आठ प्रकार क कर्म को फिर भी बाँधता है।

शास्त्र ज्ञान से भिन्न है -

सत्थ णाण ण हवदि जम्हा सत्थं ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाण अण्ण सत्थं जिणा विति ।।१०-८३-३९०

सान्वय अर्थ - (सत्थ) **शास्त्र** (णाण) **ज्ञान** (ण हवदि) **नही है** (जम्हा) **क्योंकि** (सत्थ) **शास्त्र** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नही जानता** (तम्हा) **इसलिए** (णाण) **ज्ञान** (अण्ण) **अन्य है** (सत्थ) **शास्त्र** (अण्ण) **अन्य है - ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विति) **कहते है।**

अर्थ - शास्त्र ज्ञान नही है क्योकि शास्त्र कुछ नही जानता, इसलिए ज्ञान अन्य है, शास्त्र अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते है।

शब्द ज्ञान से भिन्न है -

सद्दो णाण ण हवदि जम्हा सद्दो ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्ण णाण अण्ण सद्द जिणा विति ।।१०-८४-३९१

सान्वय अर्थ - (सद्दो) **शब्द** (णाण) **ज्ञान** (ण हवदि) **नही है** (जम्हा) **क्योकि** (सद्दो) **शब्द** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नही जानता** (तम्हा) **इसलिए** (णाण) **ज्ञान** (अण्ण) **अन्य है** (सद्द) **शब्द** (अण्ण) **अन्य है** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव - ऐसा** (विति) **कहते हैं।**

अर्थ - शब्द ज्ञान नही है क्योकि शब्द कुछ नही जानता, इसलिए ज्ञान अन्य है, शब्द अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते है।

रूप ज्ञान से भिन्न है -

रूवं णाणं ण हवदि जम्हा रूवं ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाण अण्ण रूव जिणा विति ।।१०-८५-३९२

सान्वय अर्थ - (रूव) **रूप** (णाण) **ज्ञान** (ण हवदि) **नही है** (जम्हा) **क्योंकि** (रूव) **रूप** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नही जानता** (तम्हा) **इसलिए** (णाण) **ज्ञान** (अण्ण) **अन्य है** (रूव) **रूप** (अण्ण) **अन्य है - ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विति) **कहते है।**

अर्थ - रूप ज्ञान नही है क्योकि रूप कुछ नही जानता, इसलिए ज्ञान अन्य है, रूप अन्य है, ऐसा जिनन्द्रदेव कहते है।

वर्ण ज्ञान से भिन्न है -

वण्णो णाण ण हवदि जम्हा वण्णो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाण अण्ण वण्ण जिणा विति ॥१०-८६-३९३

सान्वय अर्थ - (वण्णो) **वर्ण** (णाण) **ज्ञान** (ण हवदि) **नही है** (जम्हा) **क्योंकि** (वण्णो) **वर्ण** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नही जानता** (तम्हा) **इसलिए** (णाण) **ज्ञान** (अण्ण) **अन्य है** (वण्ण) **वर्ण** (अण्ण) **अन्य है** (जिणा) **ऐसा जिनेन्द्रदेव** (विति) **कहते है।**

अर्थ - वर्ण ज्ञान नही है क्योंकि वर्ण कुछ नही जानता, इसलिए ज्ञान अन्य है, वर्ण अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते है।

गन्ध ज्ञान से भिन्न है -

गंधो णाणं ण हवदि जम्हा गधो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाण अण्णं गंधं जिणा विंति ।।१०-८७-३९४

सान्वय अर्थ - (गधो) **गन्ध** (णाण) **ज्ञान** (ण हवदि) **नही है** (जम्हा) **क्योंकि** (गधो) **गन्ध** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नहीं जानता** (तम्हा) **इसलिए** (णाण) **ज्ञान** (अण्ण) **अन्य है** (गध) **गन्ध** (अण्ण) **अन्य है - ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते है।**

अर्थ - गन्ध ज्ञान नही है, क्योकि गन्ध कुछ नही जानता; इसलिए ज्ञान अन्य है, गन्ध अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते है।

रस ज्ञान से भिन्न है -

ण रसो दु होदि णाणं जम्हा दु रसो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाणं रसं च अण्णं जिणा विंति ।।१०-८८-३९५

सान्वय अर्थ - (रसो दु) **रस** (णाण) **ज्ञान** (ण होदि) **नहीं है** (जम्हा) **क्योंकि** (रसो दु) **रस तो** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नहीं जानता है** (तम्हा) **इसलिए** (णाण) **ज्ञान** (अण्ण) **अन्य है** (च) **और** (रस) **रस** (अण्ण) **अन्य है** - **ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।**

अर्थ - रस ज्ञान नही है, क्योकि रस तो कुछ नही जानता, इसलिए ज्ञान अन्य है और रस अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते है।

स्पर्श ज्ञान से भिन्न है -

फासो णाणं ण हवदि जम्हा फासो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं फासं जिणा विंति ॥१०-८९-३९६

सान्वय अर्थ - (फासो) **स्पर्श** (णाणं) **ज्ञान** (ण हवदि) **नही है** (जम्हा) **क्योंकि** (फासो) **स्पर्श** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नही जानता** (तम्हा) **इसलिए** (णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है** (फासं) **स्पर्श** (अण्णं) **अन्य है - ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते है।**

अर्थ - स्पर्श ज्ञान नही है, क्योकि स्पर्श कुछ नही जानता, इसलिए ज्ञान अन्य है, स्पर्श अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते है।

कर्म ज्ञान से भिन्न है -

कम्म णाण ण हवदि जम्हा कम्मं ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाणं अण्णं कम्म जिणा विति ।।१०-९०-३९७

सान्वय अर्थ - (कम्म) **कर्म** (णाण) **ज्ञान** (ण हवदि) **नही है** (जम्हा) **क्योकि** (कम्म) **कर्म** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नही जानता** (तम्हा) **इसलिए** (णाण) **ज्ञान** (अण्ण) **अन्य है** (कम्म) **कर्म** (अण्ण) **अन्य है - ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विति) **कहते है।**

अर्थ - कर्म ज्ञान नही है, क्योकि कर्म कुछ नही जानता है, इसलिए ज्ञान अन्य है, कर्म अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते है।

धर्मद्रव्य ज्ञान से भिन्न है -

धम्मो णाण ण हवदि जम्हा धम्मो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाण अण्णं धम्म जिणा विंति ।।१०-९१-३९८

सान्वय अर्थ - (धम्मो) **धर्मद्रव्य** (णाण) **ज्ञान** (ण हवदि) **नहीं है** (जम्हा) **क्योंकि** (धम्मो) **धर्मद्रव्य** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नही जानता** (तम्हा) **इसलिए** (णाण) **ज्ञान** (अण्ण) **अन्य है** (धम्म) **धर्मद्रव्य** (अण्ण) **अन्य है - ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते है।**

अर्थ - धर्मद्रव्य ज्ञान नही है, क्योकि धर्मद्रव्य कुछ नही जानता है, इसलिए ज्ञान अन्य है, धर्मद्रव्य अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते है।

अधर्मद्रव्य ज्ञान से भिन्न है -

णाणमधम्मो ण हवदि जम्हाधम्मो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णमधम्मं जिणा विंति ।।१०-९२-३९९

सान्वय अर्थ - (अधम्मो) **अधर्म द्रव्य** (णाणं) **ज्ञान** (ण हवदि) **नही होता** (जम्हा) **क्योंकि** (अधम्मो) **अधर्म द्रव्य** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नहीं जानता है** (तम्हा) **इसलिए** (णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है** (अधम्मं) **अधर्म द्रव्य** (अण्णं) **अन्य है - ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते है।**

अर्थ - अधर्म द्रव्य ज्ञान नही है, क्योंकि अधर्म द्रव्य कुछ नही जानता है, इसलिए ज्ञान अन्य है, अधर्म द्रव्य अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

काल द्रव्य ज्ञान से भिन्न है -

कालो णाण ण हवदि जम्हा कालो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाण अण्ण काल जिणा विंति ।।१०-९३-४००

सान्वय अर्थ - (कालो) **कालद्रव्य** (णाण) **ज्ञान** (ण हवदि) **नही है** (जम्हा) **क्योंकि** (कालो) **काल द्रव्य** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नही जानता है** (तम्हा) **इसलिए** (णाण) **ज्ञान** (अण्ण) **अन्य है** (काल) **काल द्रव्य** (अण्ण) **अन्य है - ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।**

अर्थ - काल द्रव्य ज्ञान नही है, क्योकि काल द्रव्य कुछ नही जानता है, इसलिए ज्ञान अन्य है, काल द्रव्य अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते है।

आकाश द्रव्य ज्ञान से भिन्न है -

आयास पि ण णाण जम्हायास ण याणदे किंचि ।
तम्हायास अण्ण अण्ण णाण जिणा विति ।।१०-९४-४०१

सान्वय अर्थ - (आयास पि) **आकाश भी** (णाण ण) **ज्ञान नही है** (जम्हा) **क्योंकि** (आयास) **आकाश द्रव्य** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नही जानता है** (तम्हा) **इसलिए** (आयास) **आकाश द्रव्य** (अण्ण) **अन्य है** (णाण) **ज्ञान** (अण्ण) **अन्य है - ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विति) **कहते हैं।**

अर्थ - आकाश द्रव्य भी ज्ञान नही है, क्योकि आकाश द्रव्य कुछ नही जानता है, इसलिए आकाश द्रव्य अन्य है, ज्ञान अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते है।

अध्यवसान ज्ञान नही है -

णज्झवसाण णाण अज्झवसाण अचेदण जम्हा ।
तम्हा अण्ण णाण अज्झवसाणं तहा अण्णं ।।१०-९५-४०२

सान्वय अर्थ - (अज्झवमाण) **अध्यवसान** (णाण ण) **ज्ञान नहीं है** (जम्हा) **क्योंकि** (अज्झवसाण) **अध्यवसान** (अचेदण) **अचेतन है** (तम्हा) **इसलिए** (णाण) **ज्ञान** (अण्ण) **अन्य है** (तहा) **तथा** (अज्झवसाण) **अध्यवसान** (अण्ण) **अन्य है।**

अर्थ - अध्यवसान ज्ञान नही है, क्योकि अध्यवसान अचेतन है, इसलिए ज्ञान अन्य है तथा अध्यवसान अन्य है।

ज्ञान ही दीक्षा है -

जम्हा जाणदि णिच्च तम्हा जीवो दु जाणगो णाणी ।
णाणं च जाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेदव्वं ।।१०-९६-४०३

णाण सम्मादिट्ठि दु सजमं सुत्तमंग पुव्वगदं ।
धम्माधम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवें त्ति बुहा ।।१०-९७-४०४

सान्वय अर्थ - (जम्हा) **क्योकि** - **जीव** (णिच्च) **सदा** (जाणदि) **जानता है** (तम्हा) **इसलिए** (जाणगो जीवो दु) **ज्ञायक जीव** (णाणी) **ज्ञानी है** (च) **और** (णाण) **ज्ञान** (जाणयादो) **ज्ञायक से** (अव्वदिरित्त) **अभिन्न है - ऐसा** (मुणेदव्व) **जानना चाहिये** (बुहा) **ज्ञानीजन - गणधरदेव** (णाण दु) **ज्ञान को ही** (सम्मादिट्ठि) **सम्यग्दृष्टि** (सजम) **सयम** (अगपुव्वगद सुत्त) **अगपूर्वगत सूत्र** (धम्माधम्म च) **धर्म और अधर्म** (तहा) **तथा** (पव्वज्ज) **दीक्षा** (अब्भुवें त्ति) **मानते है।**

अर्थ - क्योकि जीव सदा जानता है, इसलिए ज्ञायक जीव ज्ञानी है और ज्ञान ज्ञायक से अभिन्न है, ऐसा जानना चाहिये। ज्ञानीजन (गणधरदेव) ज्ञान को ही सम्यग्दृष्टि, सयम, अगपूर्वगत सूत्र, धर्म और अधर्म तथा दीक्षा मानते है।

आत्मा अनाहारक है -

अत्ता जस्स अमुत्तो ण हु सो आहारगो हवदि एव ।
आहारो खलु मुत्तो जम्हा सो पोंग्गलमओ दु ॥१०-९८-४०५

ण वि सक्कदि घे॑त्तु ज ण विमोंत्तु चेव ज पर दव्व ।
सो को वि य तस्स गुणो पाओग्गिय विस्ससो वा वि ॥१०-९९-४०६

तम्हा दु जो विसुद्धो चेदा सो णेव गिण्हदे किंचि ।
णेव विमुञ्चदि किंचि वि जीवाजीवाण दव्वाण ॥१०-१००-४०७

सान्वय अर्थ - (एव) इस प्रकार (जस्स) जिसकी (अत्ता) आत्मा (अमुत्तो) अमूर्तिक है (सो हु) वह निश्चय ही (आहारगो) आहारक (ण हवदि) नही है (खलु) वास्तव मे (आहारो) आहार (मुत्तो) मूर्तिक है (जम्हा) क्योंकि (सो दु) वह आहार (पोंग्गलमओ) पुद्गलमय है (तम्स य) उस आत्मा का (सो को वि) वह कोई (पाओग्गिय विस्ससो वा वि) प्रायोगिक अथवा वैस्रसिक (गुणो) गुण है (ज) कि (ज पर दव्व) पर द्रव्य को - वह (ण वि घे॑त्तु सक्कदि) न ग्रहण कर सकता है (ण चेव विमोंत्तु) न छोड़ सकता है (तम्हा दु) इस कारण - अनाहारक होने के कारण (जो विसुद्धो चेदा) जो विशुद्ध आत्मा है (सो) वह (जीवाजीवाण दव्वाण) जीव-अजीव परद्रव्यो मे (किंचि वि) कुछ भी (णेव गिण्हदे) न ही ग्रहण करता है (किंचि वि) और कुछ भी (णेव विमुञ्चदि) न ही छोडता है।

अर्थ - इस प्रकार जिसकी आत्मा अमूर्तिक है, वह निश्चय ही आहारक नही है। वास्तव मे आहार मूर्तिक है क्योकि आहार पुद्गलमय है। उस आत्मा का वह कोई प्रायोगिक अथवा वैस्रसिक गुण है कि वह परद्रव्य को न ग्रहण कर सकता है, न छोड सकता है, अत (अनाहारक होने के कारण) जो विशुद्ध आत्मा है, वह जीव-अजीव परद्रव्यो मे न तो कुछ ग्रहण ही करता है और न कुछ छोडता ही है।

बाह्यलिग मोक्ष का मार्ग नही है -

पासंडिय लिगाणि य गिहिलिगाणि य बहुप्पयाराणि ।
घे`त्तुं वदंति मूढा लिगमिणं मोँक्खमग्गो त्ति ॥१०-१०१-४०८

ण दु होदि मोँक्खमग्गो लिग जं देहणिम्ममा अरिहा ।
लिग मुइत्तु दसणणाणचरित्ताणि सेवते ॥१०-१०२-४०९

सान्वय अर्थ - (बहुप्पयाराणि) **अनेक प्रकार के** (पासडिय लिगाणि य) **साधुओ के वेष** (य) **और** (गिहिलिगाणि) **गृहस्थ के वेष** (घे`त्तु) **ग्रहण करके** (मूढा) **अज्ञानीजन** (त्ति) **यह** (वदति) **कहते है कि** (इण लिग) **यह वेष ही** (मोँक्खमग्गो) **मोक्ष का मार्ग है** (दु) **किन्तु** (लिग) **द्रव्यलिंग** (मोँक्खमग्गो) **मोक्ष का मार्ग** (ण होदि) **नही है** (ज) **क्योकि** (अरिहा) **अर्हन्तदेव** (देह णिम्ममा) **देह से ममत्वहीन हुए** (लिग मुइत्तु) **बाह्य लिग को छोड़कर** (दसणणाणचरित्ताणि) **दर्शन, ज्ञान, चारित्र का** (सेवत्ते) **सेवन करते है।**

अर्थ - अनेक प्रकार के साधु-वेष और गृहस्थ-वेष धारण करके अज्ञानी जन यह कहते है कि वेष ही मोक्ष का मार्ग है, किन्तु द्रव्यलिग मोक्ष का मार्ग नही है, क्योकि अर्हन्तदेव देह से ममत्वहीन हुए (बाह्य) लिग को छोडकर दर्शन, ज्ञान, चारित्र का सेवन करते है।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है -

ण वि एस मोंक्खमग्गो पासडिय गिहिमयाणि लिगाणि ।
दंसणणाणचरित्ताणि मोंक्खमग्गं जिणा विति ।।१०-१०३-४१०

तम्हा जहित्तु लिगे सागारणगारिये हि या गहिदे ।
दंसणणाणचरित्ते अप्पाण जुञ्ज मोंक्खपहे ।।१०-१०४-४११

साम्वय अर्थ - (पासडिय गिहिमयाणि लिगाणि) **साधु और गृहस्थ के लिग** (एस वि) **यह भी** (मोंक्खमग्गो ण) **मोक्ष-मार्ग नही हैं** (दसण णाणचरित्ताणि) **दर्शन, ज्ञान और चारित्र** (मोंक्खमग्ग) **मोक्ष-मार्ग है** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव - ऐसा** (विति) **कहते है** (तम्हा) **इसलिए** (सागारणगारियेहि वा) **सागार-गृहस्थ अथवा अनगार-मुनियों द्वारा** (गहिदे) **ग्रहण किये हुए** (लिगे) **लिगो को** (जहित्तु) **छोड़कर** (अप्पाण) **अपनी आत्मा को** (दसणणाणचरित्ते) **दर्शन, ज्ञान और चारित्रस्वरुप** (मोंक्खपहे) **मोक्ष-मार्ग मे** (जुञ्ज) **लगाओ।**

अर्थ - साधु और गृहस्थ के लिग - यह भी मोक्ष-मार्ग नही है। दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्ष-मार्ग है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते है, इसलिए गृहस्थ और साधुओ द्वारा ग्रहण किये हुए लिगो को छोडकर अपनी आत्मा को दर्शन, ज्ञान और चारित्रस्वरुप मोक्ष-मार्ग में लगाओ।

मोक्षमार्ग मे विहार कर -

मोंक्खपहे अप्पाणं ठवेहि चेदयहि झायहि त चेव ।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वसु ।।१०-१०५-४१२

सान्वय अर्थ - (मोंक्खपहे) **मोक्ष-पथ में** (अप्पाण) **अपने आत्मा को** (ठवेहि) **तू स्थापित कर** (चेदयहि) **उसी का अनुभव कर** (तं चेव) **और उसी का** (झायहि) **ध्यान कर** (तत्थेव) **वही पर** (णिच्च) **सदा** (बिहर) **विहार कर** (अण्णदव्वेसु) **अन्य द्रव्यो मे** (मा बिहरसु) **बिहार मत कर।**

अर्थ - (हे भव्य) मोक्ष-पथ मे अपने आत्मा को तू स्थापित कर, उसी का अनुभव कर और उसी का ध्यान कर, वही पर सदा विहार कर, अन्य द्रव्यों में विहार मत कर।

लिग के मोही समय-सार को नही जानते -

पासडिय लिगेसु व गिहिलिगेसु व बहुप्पयारेसु ।
कुव्वंति जे ममत्तं तेहि ण णादं समयसारं ॥१०-१०६-४१३

सान्वय अर्थ - (जे) जो लोग (बहुप्पयारेसु) **बहुत प्रकार के** (पासडिय लिगेसु व) **साधु-लिगो मे** (गिहिलिगेसु व) **अथवा गृहस्थ-लिगो में** (ममत्त) **ममत्व** (कुव्वति) **करते है** (तेहि) **उन्होने** (समयसार) **समयसार-शुद्धात्म स्वरुप को** (ण णाद) **नही जाना।**

अर्थ - जो लोग बहुत प्रकार के साधु-लिगो मे अथवा गृहस्थ-लिगों में ममत्व करते है, उन्होने समय-सार को (शुद्धात्म स्वरुप को) नही जाना।

लिग के सम्बन्ध मे दोनो नया का मत -

ववहारिओ पुण णओ दोण्णि वि लिगाणि भणदि मोंक्खपहे ।
णिच्छयणओ दु णेच्छदि मोंक्खपहे सव्वलिगाणि ।।१०-१०७-४१४

सान्वय अर्थ - (ववहारिओ णओ) **व्यवहार नय** (दोण्णि वि) **दोनो ही** (लिगाणि) **लिंगों को** (मोंक्खपहे) **मोक्ष का मार्ग** (भणदि) **कहता है** (पुण) पुन· **और** (णिच्छयणओ दु) **निश्चय नय तो** (सव्व लिगाणि) **समस्त लिगो को** (मोंक्खपहे) **मोक्ष मार्ग में** (णेच्छदि) **इष्ट नही मानता।**

अर्थ - व्यवहार नय दोनो ही लिगो को मोक्ष का मार्ग कहता है और निश्चय नय तो समस्त लिगो को मोक्ष-मार्ग मे इष्ट नही मानता।

उपसहार -

जो समय पाहुडमिण पढिदूण य अत्थतच्चदो णादुं ।
अत्थे ठाहिदि चेदा सो होहिदि[1] उत्तमं सोँक्खं ।।१०-१०८-४१५

सान्वय अर्थ - (जो चेदा) **जो आत्मा** (इण समयपाहुड) **इस समय प्राभृत को** (पढिदूण) **पढ़कर** (य) **और** (अत्थतच्चदो) **उसे अर्थ और तत्त्व से** (णादुं) **जानकर** (अत्थे) **अर्थभूत शुद्धात्मा में** (ठाहिदि) **ठहरेगा** (सो) **वह** (उत्तम सोँक्ख) **उत्तम सौख्यस्वरूप** (होहिदि) **हो जाएगा।**

अन्त मे आचार्य कुन्दकुन्द उपसंहार करते हुए *समयपाहुड* ग्रन्थ का माहात्म्य बतलाते है -

अर्थ - जो भव्यात्मा इस समय प्राभृत को पढकर और इसे अर्थ और तत्त्व से जानकर अर्थभूत शुद्धात्मा मे ठहरेगा, वह उत्तम सौख्यस्वरूप हो जाएगा।

इदि दहमो सव्वविसुद्धणाणाधियारो समत्तो

इदि सिरिकुन्दकुन्दाइरिय पणीद समयपाहुड

[1] 'पावदि' इत्यपि पाठ

गाहानुक्कमणिका

		गाथा-क्रमांक
एदेसु हेदूभुदेसु	—	३-६७-१३५
एदेसु य उवओगो	—	३-२२-९०
एदेहि य संबधो	—	२-१९-५७
एद तु अविवरीद	—	६-३-१८३
एद तु असंभूद	—	१-२२-२२
एमादिये दु विविहे	—	७-२२-२१४
एमेव कम्मपयडी	—	४-५-१४९
एमेव जीवपुरिसो	—	७-३३-२२५
एमेव मिच्छदिट्ठी	—	१०-१९-३२६
एमेव य ववहारो	—	२-१०-४८
एमेव सम्मदिट्ठी	—	७-३५-२२७
एयत्त णिच्छयगदो	—	१-३-३
एवमलिये अदत्ते	—	८-२७-२६३
एवमिह जो दु जीवो	—	३-४६-११४
एव जाणदि णाणी	—	६-५-१८५
एव ण को वि मोक्खो	—	१०-१६-३२३
एव णाणी सुद्धो	—	८-४३-२७९
एव तु जाणिदूण य	—	१०-७५-३८२
एव तु णिच्छयणयस्स	—	१०-५३-३६०
एव पराणि दव्वाणि	—	३-२८-९६
एव पोॅग्गलदव्व	—	२-२६-६४
एव बधो य दोण्ह पि	—	१०-६-३१३
एव मिच्छादिट्ठी	—	८-५-२४१
एव ववहार णओ	—	८-३६-२७२
एव ववहारस्स दु	—	१०-४६-३५३
एवविहा बहुविहा	—	२-५-४३
एव सम्मादिट्ठी	—	७-८-२००
एव सम्मादिट्ठी	—	८-१०-२४६
एव सखुवदेस	—	१०-३३-३४०
एव हि जीवराया	—	१-१८-१८

गाथा-क्रमांक

ग

घ

छ

ज